राष्ट्रीय आन्दोलन–भाग दो

ब्लॉक – एक

इकाई – 1 : कैबिनेट मिशन एवं अन्तरिम सरकार

इकाई – 2 : आईएनए तथा रॉयल नेवी विद्रोह

इकाई – 3 : देशी राज्यों में आन्दोलन

ब्लॉक – दो

इकाई – 1 : माउण्टबैटन योजना, भारत का विभाजन तथा परिणाम

इकाई – 2 : राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में किसान एवं जनजातियां

इकाई – 3 : भारत में समाजवादी विचारों का विकास

ब्लॉक – तीन

इकाई – 1 : भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

इकाई – 2 : राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवासी भारतीयों की भूमिका

इकाई – 3 : राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

ब्लॉक – चार

इकाई – 1 : राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेस (समाचार पत्रों की भूमिका)

इकाई – 2 : भारत में संवैधानिक विकास (1861, 1909, 1919 तथा 1935 के अधिनियम)

इकाई – 3 : भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव

राष्ट्रीय आन्दोलन–भाग दो

ब्लॉक – एक
इकाई – 1 : कैबिनेट मिशन एवं अन्तरिम सरकार
इकाई – 2 : आईएनए तथा रॉयल नेवी विद्रोह
इकाई – 3 : देशी राज्यों में आन्दोलन

ब्लॉक परिचयः

1946 में लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स के नेतृत्व में भारत आए कैबिनेट मिशन के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथम भारत में सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए भारतीय राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की अन्तरिम सरकार का गठन तथा भारत के विभाजन को रोकने का ब्रिटिश सरकार द्वारा अन्तिम दिखावटी प्रयास। सितम्बर, 1946 में अन्तरिम सरकार के गठन से पहले मुस्लिम लीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा से देश–व्यापी साम्प्रदायिक दंगे हुए। अन्तरिम सरकार का गठन केवल परेशानियों तथा विवादों का कारण बना। भारत के विभाजन को रोकने के लिए भारत को तीन मण्डलों में बांटने तथा इन सभी मण्डलों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करने की योजना किसी भी भारतीय राजनीतिक दल ने स्वागत नहीं किया और भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा से पूर्व ही पाकिस्तान की स्थापना कर दी गई।

आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना जापान के अधिकार में भारतीय युद्ध बन्दियों में से स्वयं भारतीय युद्ध बन्दी कैप्टिन मोहन सिह ने की थी। इसमें उनका साथ मेजर फूजीवारा तथा रास बिहारी बोस ने दिया था। इस समय सुभाष चन्द्र बोस जर्मनी में थे। उनको आज़ाद हिन्द फ़ौज के सुप्रीम कमाण्डर बनने का निमन्त्रण दिया गया जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। जुलाई 1943 में सिंगापुर पहुंच कर सुभाष ने आज़ाद हिन्द फ़ौज की कमान सम्भाली तथा 21 अक्टूबर, 1943 को स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार की स्थापना की। आज़ाद हिन्द फ़ौज का अभियान भारत को सशस्त्र क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्र कराना था। इसमें उन्हें भारतीय जनता, ब्रिटिश भारतीय सेना के भारतीय सैनिक तथा धुरी राष्ट्रों से सहयोग की आशा थी।

मार्च, 1944 से जून, 1944 तक आज़ाद हिन्द फ़ौज का अभियान चला। इम्फ़ाल पर उसका कब्ज़ा हो गया परन्तु बाद में आज़ाद हिन्द फ़ौज का अभियान पूर्णतया असफल रहा। सुभाष की वायुयान दुर्घटना में मृत्यु हो गई और आज़ाद हिन्द फ़ौज ने आत्म समर्पण कर दिया। आज़ाद हिन्द फ़ौज के अधिकारी सहगल, खान तथा ढिल्लों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया। उन्हें आजन्म कारावास दिया गया पर उनके समर्थन में देश–व्यापी आन्दोलन के कारण सरकार को उन्हें मुक्त करना पड़ा।

फ़रवरी, 1946 में रॉयल इण्डियन नेवी का विद्रोह अंग्रेज़ों के शीघ्र भारत छोड़ने का एक प्रमुख कारण था। नौ–सैनिकों के विद्रोह को व्यापारियों, छात्रों, श्रमिकों तथा राजनीतिक दलों ने अपना समर्थन दिया। सरदार पटेल तथा माहममद अली जिन्ना के हस्तक्षेप से नौ–सैनिकों ने अपनी हड़ताल वापस ले ली किन्तु अब अंग्रेज़ों को विश्वास हो गया कि वो भारतीय सेना की स्वामिभक्ति पर भरोसा नही कर सकते हैं।

भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारतीय सरकार का संरक्षण प्राप्त था अतः जन–कल्याण के प्रति भारतीय शासक उदासीन थे। भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव प्रारम्भ में भारतीय रियासतों पर बहुत कम पड़ा किन्तु भारतीय शासकों की बोझिल कर नीति क विरुद्ध आन्दोलन अवश्य हुए। असहयोग आन्दोलन का प्रभाव भारतीय रियासतों पर भी पड़ा और धीरे–धीरे वहां भी स्वशासन की मांग ज़ोर पकड़ने लगी। 1927 में 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स की स्थापना हुई जिसने भारतीय रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों का नेतृत्व किया। अब कांग्रेस तथा समाजवादी व साम्यवादी दलों ने भी रियासतों में होने वाले आन्दोलनों में सक्रिय भूमिका निभाना प्रारम्भ कर दिया। त्रावनकोर, हैदराबाद, उदयपुर, टिहरी तथा कश्मीर की रियासतों में व्यापक जन– आन्दोलन हुए और आमतौर पर शासकों को जनता की मांगों के सामने झुकना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो एक बार फिर भारतीय रियासतों में राजनीतिक सरगर्मी तेज़ हो गई परन्तु भारत की स्वतन्त्रता के बाद सरदार पटेल के नेतृत्व में भारत के ओर की रियासतों का भारत में विलय हुआ और रियासतों की जनता को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई।

इकाई एकः कैबिनेट मिशन एवं अन्तरिम सरकार

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 भारत में सत्ता हस्तान्तरण हेतु कैबिनेट मिशन के प्रयास

1.3.1 1946 का राजनीतिक परिदृश्य

1.3.2 कैबिनेट मिशन का भारत आगमन

1.3.3 कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव

1.3.4 कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

1.4 भारत में अन्तरिम सरकार का गठन तथा उसके कार्य

1.4.1 अन्तरिम सरकार का गठन

1.4.2 अन्तरिम सरकार के गठन पर मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

1.4.3 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दुष्परिणाम

1.4.4 अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग की प्रविष्टि

1.4.5 अन्तरिम सरकार की कठिनाइयां

1.5 .सार संक्षेप

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत में सत्ता हस्तान्तरण अवश्यम्भावी हो गया था। 1946 में लेबर पार्टी की चुनावों में जीत का एक प्रमुख कारण इस वास्तविकता को स्वीकार करना था। इस इकाई में हम एटली के नेतृत्व में गठित नई सरकार द्वारा भारत को स्वतन्त्र किए जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ किए जाने की चर्चा करेंगे। भारत सचिव पैथिक लारेन्स के नेतृत्व में मार्च से मई, 1946 तक कैबिनेट मिशन ने विभिन्न भारतीय राजनीतिक दलों से विचार–विमर्श किया। इस इकाई में कैबिनेट मिशन द्वारा भारत में अन्तरिम सरकार के गठन की योजना तथा भारत के विभाजन को रोकने के अन्तिम प्रयास किए जाने की चर्चा करेंगे तथा सितम्बर, 1946 में गठित अन्तरिम सरकार गठन और उसमें अक्टूबर, 1946 में मुस्लिम लीग के शामिल होकर उसके कार्यों में बाधा डालने की नीति की चर्चा करेंगे और हम देखेंगे कि भारत की स्वतन्त्रता के साथ उसका विभाजन भी अवश्यम्भावी हो गया था।

1.2 इकाई के उद्देश्य

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व और विशेषकर भारत के बदले हुए राजनीतिक परिवेश में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई और मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की स्थापना की मांग को रोकने का दिखावटी प्रयास किया गया। इस इकाई में आपको कैबिनेट मिशन और उसके प्रस्तावों पर आधारित भारत में अन्तरिम सरकार के गठन की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगे:

- इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की नव गठित सरकार द्वारा भारत में सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए कैबिनेट मिशन को भारत में भेजे जाने के निर्णय के विषय में।
- विस्तार से कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों के विषय में।
- भारत में अन्तरिम सरकार की स्थापना और उससे जुड़े विवादों के विषय में
- कैबिनेट मिशन तथा अन्तरिम सरकार की असफलता के विषय में।

1.3 भारत में सत्ता हस्तान्तरण हेतु कैबिनेट मिशन के प्रयास

1.3.1 1946 का राजनीतिक परिदृश्य

19 फरवरी, 1946 को बंबई में नौसेना विद्रोह के आरंभ के अगले दिन ही कलेमेंट एटली ने एक कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित यात्रा का ऐलान कर दिया कि कैबिनेट मिशन भारत जाएगा। ताकि वाइसराय की सहायता से भारतीय नेताओं से राजनितिक मामलों पर बातचीत कर सके।

मार्च और जून 1946 के बीच तीन सदस्यों वाले जिस मिशन ने भारत का दौरा किया, उसका नेतृत्व भारत सचिव सर पेथिक लारेंस कर रहा था और बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्षा

सर स्टैफर्ड क्रिप्स और फर्स्ट लार्ड एडमिरैल्टी ए. वी. एलेक्जेंडर उसके सदस्य थे। कैबिनेट मिशन दिल्ली पहुंचने के उपरांत पहले तीन सप्ताहों में विभिन्न राजनैतिक पक्षों, सरकार के अधिकारियों आदि से विचार–विमर्श करता रहा। इसी घोषणा पर वाद–विवाद में बोलते हुए प्रधानमंत्री एटली ने कहा कि हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों से भली–भांति जागरुक हैं और चाहते हैं कि अल्पसंख्यक बिना भय के रह सके। परन्तु हम यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक लोगों की उन्नति में आड़े आए। जिन्ना को पहली बार यह अनुभव हुआ कि अंग्रेजी सरकार उसकी सहमति के बिना भी सत्ता हस्तांतरित करने को तैयार थी। चूंकि लीग और कांग्रेस में भारत की एकता अथवा विभाजन के विषय पर समझौता नहीं हो सका इसलिए कैबिनेट मिशन ने अपनी ओर से संवैधानिक समस्या का हल प्रस्तुत किया और उसे प्रकाशित कर दिए। मिशन ने सुझाया कि भारतीय संविधान इस प्रकार का होना चाहिए:–

1. भारतीय संघ की स्थापना की जाए जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासत सम्मिलित हो और इस संघ के पास प्रतिरक्षा, विदेशी संबंध तथा संचार व्यवस्था का उत्तरदायित्व रहे। संघ को स्पष्ट रूप से दिए हुए विभागों के अतिरिक्ति समस्त अधिकार प्रांतो अथवा राज्यों को उपलब्ध रहेंगे। तथा राज्यों को इन कार्यो के लिए राजस्व उगाही का अधिकार रहेगा।

2. संविधान निर्माण के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाए। प्रॉतीय विधान सभाएँ प्रत्येक दस लाख जनसंख्या पर एक सदस्य के अनुपात में प्रतिनिधि चुने।

3. प्रान्तों को पृथ्क समूह (ग्रुप) बनाने का अधिकार हो। प्रत्येक समूह को यह निर्णय करने का अधिकार हो कि कौन–कौन विषय समूह के आधिकार में रखे जाएँ।

4. प्रान्तों को केन्द्रीय विषयों को छोड़कर शेष सभी मामलों में पूर्ण स्वायतता प्राप्त हो और शेष शक्तिया उन्हीं के पास हो।

5. मद्रास, बम्बई, मध्य प्रांत, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा के छः हिन्दू बहुसंख्यक प्रांत गुट (अ) में होंगे और उत्तर पश्चिम के बहुसंख्यक मुस्लिम प्रान्त, पंजाब, सीमा प्रांत और सिंध, गुट (ब) में और बंगाल तथा आसाम गुट (स) में। मुख्य आयुक्त (चीफ कमीश्नर) के प्रांत, दिल्ली, अजमेर–मारवाड़, कुर्ग गुट (अ) में, और वलुचिस्तान गुट (ब) में सम्मिलित होंगे।

6. इस प्रस्ताव के अनुसार दस साल के अन्तराल के बाद संविधान पर पुनर्विचार भी कर सकते थे। इस बीच एक अन्तरिम सरकार रोजमर्रा का प्रशासन चलाएगी। जैसा कि पेथिक लारेंस का ऐलान था, अंतिम लक्ष्य भारतवासियों की अपनी स्वतंत्रता की इच्छा के अनुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अंदर हो या बाहर उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान करना था।

कैबिनेट मिशन ने कांग्रेस तथा लीग दोनों के दृष्टिकोण से मध्यम मार्ग निकालने का प्रयत्न किया। कांग्रेस को संतुष्ट रखने के लिए संगठित भारत की व्यवस्था की गई और मुस्लिम लीग तथा भारतीय नरेशों को संतुष्ट करने के लिए उस संघ को दुर्बल रखा गया। संविधान–सभा का जनसंख्या के अनुपात मे गठन किया गया। अन्तरिम सरकार में समस्त

उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंप दिया गया और संविधान सभा को पूर्ण स्वतंत्रता और अधिकार दिए गए। इस योजना का सबसे बड़ा दोष यह था कि प्रान्तों के समूहों के बारे में प्रस्ताव प्रर्णतया स्पष्ट न थे। इसी कारण आगे चलकर कांग्रेस और मुसलिम लीग में गहरा मतभेद हुआ। इन्हीं कारणों की वजह से कैबिनेट मिशन योजना भारत में कभी लोकप्रिय नहीं हो सकती थी। कांग्रेस ने प्रांतो के समूहीकरण और केन्द्र में अस्थायी सरकार के सम्बंध में खेद प्रकट किया। जिन्ना को इस बात का दुःख था कि इस योजना में 'बँटकर रहेगा हिन्दुस्तान और लेकर रहेंगे पाकिस्तान' की मांग को जो लीग की मांग थी अस्वीकृत कर दिया। लेकिन इन दोषों के बावजूद कांग्रेस और लीग ने मिशन की दीर्घकालीन योजना स्वीकार कर ली, यद्यपि अंतरिम सरकार के संबंध में मतभेद बना ही रहा 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व भर में साम्राज्यवाद की जड़ें कमज़ोर हो गईं। ब्रिटेन अब महाशक्ति नहीं रहा। दक्षिण पूर्वी एशिया में पराधीन राष्ट्रों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की मांग जोर पकड़ने लगी और ब्रिटिश, डच और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद की जड़ों को गहरा धक्का पहुंचा। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण भयंकर विनाश हुआ था। पराधीन राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। औपनिवेशिक शासकों के स्वयं के संसाधन कमजोर पड़ गए थे अतः वे असन्तुष्ट पराधीन जातियों पर नियन्त्रण करने में कठिनाई का सामना कर रहे थे। औपनिवेशिक साम्राज्य अब स्वयं अंग्रेज़ों के लिए बोझ बनता जा रहा था। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की जीत और एटली के प्रधान मंत्री बनने से भारत के स्वतन्त्र होने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

फ़रवरी, 1946 तक भारत का राजनीतिक वातावरण पूरी तरह बदल चुका था। अब सरकारी और गैर सरकारी, सभी व्यक्ति भारत की स्वतन्त्रता के लिए व्यग्र थे। अब ब्रिटेन की ओर से भी नीति परिवर्तन के संकेत मिल रहे थे। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की नवगठित सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही थी। सत्तारूढ़ होते ही नई सरकार ने 1945–46 के जाड़ों में ब्रिटिश सांसदों का एक शिष्टमण्डल भारत भेजा जिसने भारत में विभिन्न दलों के नेताओं से बातचीत की। इस शिष्ट मण्डल को यह बात समझ में आ गई कि भारत की स्वतन्त्रता को अब बहुत दिनों तक टाला नहीं जा सकता और उसने सरकार के समक्ष प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में शान्तिपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण में सत्ता हस्तान्तरण की सिफ़ारिश की। ।

1.कैबिनेट मिशन ने किस प्रकार का भारतीय संविधान सुझाया था, लिखें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.3.2 कैबिनेट मिशन का भारत आगमन

17 फ़रवरी, 1946 को ही वाइसराय ने कैबिनेट मिशन के भारत आगमन के कार्यक्रम की सूचना दी। इस कैबिनेट मिशन का नेतृत्व भारत सचिव लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स कर रहे थे और उनके अतिरिक्त इसमें बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स, फ़र्स्ट लॉर्ड ऑफ़ एडमिरैलिटी (नौ–सेना प्रमुख) ए0 वी0 एलैक्ज़ेण्डर शामिल थे। 24 मार्च, 1946 को कैबिनेट मिशन भारत पहुंचा और उसने तुरन्त भारतीय राजनीतिक दलों के नेताओं से सत्ता हस्तान्तरण के विषय में विचार–विमर्श प्रारम्भ कर दिया। कैबिनेट मिशन ने भारतीय नेताओं से लम्बे दौर तक बातचीत की। कैबिनेट मिशन की कोशिश थी कि भारत का विभाजन न हो और विभिन्न राजनीतिक दल किसी समझौते पर राज़ी हो जाएं। एकीकृत भारत ब्रिटेन के लिए एक मित्र देश के रूप में अधिक उपयोगी हो सकता था। अब अंग्रेज़ अपनी फूट डाल कर शासन करने की नीति को अपने लाभ के लिए बदलना चाहते थे इसलिए कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में सुलह कराना चाहते थे।

लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स

कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आज़ाद ने यह मांग की कि केन्द्र के पास कुछ अनिवार्य विषय होने चाहिए और इसके अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक विषय भी होने चाहिए। गांधीजी की दृष्टि में भारत में केवल संघीय शासन ही कारगर सिद्ध हो सकता था। सरदार पटेल विदेशी मामले, रक्षा और संचार के अतिरिक्त उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य के विकास के लिए इन विभागों पर भी केन्द्र के नियन्त्रण काा सुझाव दे रहे थे। किन्तु 1940 से ही मुस्लिम लीग की ओर से पाकिस्तान की मांग को लेकर आक्रामक रुख अपना रहे मोहम्म्द अली जिन्ना की हठधर्मिता के कारण यह वार्ता सफल नहीं हो सकी। जिन्ना मुस्लिम बहुमत के प्रदेशों (पंजाब, सिंध, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, बंगाल और आसाम) के सम्पूर्ण क्षेत्रों को मिलाकर पाकिस्तान की स्थापना करना चाहते थे। कांग्रेस की दृष्टि में पाकिस्तान की स्थापना जहां भारत के गैर–मुस्लिमों के लिए हानिकारक होती वहीं मुसलमानों को भी इससे कोई लाभ नहीं होता और धर्म के नाम पर देश का विभाजन इस्लाम की शिक्षाओं के विरुद्ध था। मुसलमान केवल उत्तर–पश्चिम तथा पूर्वी भारत के मुस्लिम बहुल प्रान्तों में ही निवास नहीं कर रहे थे अतः केवल इन क्षेत्रों को लेकर पाकिस्तान की स्थापना करना उनके लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकता था और यदि वे अपना घर–बार, अपने पुराने संगी–साथी छोड़कर नवगठित पाकिस्तान में बसने जाते तो खुद को हमेशा अलग–थलग और असुरक्षित पाते। मुस्लिम लीग की आशंकाओं के समाधान के लिए कांग्रेस ने प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता दिए जाने

का सुझाव रखा था। तीन केन्द्रीय विषयों – विदेश, रक्षा तथा संचार के अतिरिक्त प्रान्तों को शेष सभी विषयों में अपना निर्णय लेने का अधिकार दिया जा सकता था। कैबिनेट मिशन के सदस्य ए0 वी0 एलेक्ज़ेण्डर जिन्ना की मांगों के साथ सहानुभूति रखते थे किन्तु मिशन उनकी महत्वाकांक्षी मांगों को स्वीकार नहीं कर सकता थे। जिन्ना मुसलमानों के अधिकारों और उनकी आकांक्षाओं की पैरवी तो कर रहे थे परन्तु पश्चिमी बंगाल, आसाम और पूर्वी पंजाब के हिन्दू बहुल क्षेत्र की जनता को वह अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करने का अधिकार नहीं देना चाहते थे और इस हठधर्मिता को कैबिनेट मिशन स्वीकार करने की स्थिति में नहीं था। आत्म–निर्णय का अधिकार केवल मुस्लिम बहुल प्रान्तों के मुसलमानों को दिया जाना उसकी दृष्टि में उचित नहीं था और यदि यह अधिकार इन क्षेत्रों के निवासियों को भी दिया जाता तो फिर इन प्रान्तों के दो–दो खण्ड हो जाते जब कि इन क्षेत्रों में भौगोलिक तथा भाषायी भिन्नता नहीं थीं जिनके कि आधार पर आमतौर पर किसी प्रान्त का विभाजन किया जाता है। मई, 1946 के मध्य तक विचार–विमर्श चलता रहा। विवादों तथा मतभेदों के कारण कैबनेट मिशन की बातचीत विफल रही परन्तु उसके सदस्यों ने आपस में परामर्श कर अपनी ओर से एक योजना प्रस्तुत की।

1.3.3 कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव

पाकिस्तान की स्थापना से इंकार

मुस्लिम लीग की इच्छानुसार पाकिस्तान की स्थापना निम्न कारणों से नहीं की जा सकती–

(क) देश के विभाजन के कारण बंगाल और पंजाब का विभाजन अनिवार्य रूप से होगा जो कि इन प्रान्तों के निवासियों की इच्छा और उनके हितों के विरुद्ध होगा।

(ख) भारत की यातायात, डाक सेवा तथा टेलीग्राफ़ सेवा एकीकृत भारत को ध्यान में रखकर बनाई गई है अतः भारत का विभाजन करने से दोनों ही नव गठित देशों की यातायात तथा संचार व्यवस्था को भारी नुक्सान पहुंचेगा।

(ग) भारतीय सेनाओं का गठन समस्त भारत की रक्षार्थ किया गया है और उसको दो खण्डों में विभाजित करने से भारतीय सेना की परम्परागत उच्च क्षमता को अपार क्षति पहुंचेगी जिससे दोनों ही नवगठित राष्ट्रों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी।

(घ) भारतीय रियासतों के लिए देश का विभाजन बहुत परेशानी का कारण बनेगा क्योंकि उनमें से अनेक के लिए विभाजित भारत के किसी एक खण्ड में शामिल होने का निर्णय लेना बहुत कठिन होगा।

(ङ) मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तावित पाकिस्तान के दो खण्डों (पश्चिमी तथा पूर्वी भाग) में परस्पर सात सौ मील की दूरी है और उन दोनों क्षेत्रों के मध्य संचार तथा यातायात के लिए यह आवश्यक होगा कि पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्ध मधुर हों परन्तु यदि कभी दोनों देश के मध्य कभी युद्ध की स्थिति आती है तो पाकिस्तान के दोनों भागों का आपस में सम्पर्क पूरी तरह टूट जाएगा।

भारतीय संघ का गठन

मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करते हुए भी कैबिनेट मिशन ने भारतीय संघ में मुसलमानों की संस्कृति, उनके राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का लोप न होने देने तथा उनके संरक्षण के लिए निम्न सुझाव दिए –

(क) भारतीय संघ का गठन हो जिसमें कि ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतें दोनों ही सम्मिलित हों और यह संघ विदेशी मामले, रक्षा और संचार के दायित्व का निर्वाहन करेगा।

(ख) ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों से भारतीय संघ की एक कार्यकारी परिषद तथा विधान सभा का गठन हो।

(ग) संघीय विषयों (विदेशी मामले, रक्षा और संचार) को छोड़कर शेष सभी विषय तथा सभी शक्तियां प्रान्तों के अधिकार में हों।

(घ) प्रान्तों को परस्पर मण्डल बनाने की छूट होगी जिसकी कि एक सामान्य विधान सभा और कार्यकारी परिषद हो और इस प्रकार का हर मण्डल प्रान्तों को आवंटित विषयों का एकल रूप में संचालन कर सकता है।

(ङ) कैबिनेट मिशन यह आशा करता है कि स्वतन्त्र भारत कॉमनवैल्थ की सदस्यता गहण करेगा परन्तु इसका सदस्य बनने या न बनने का फ़ैसला लेने का अधिकार भारत का होगा।

संविधान सभा

संविधान के निर्माण हेतु एक संविधान सभा का गठन किया जाएगा जिसमें 389 सदस्य होंगे। इनमें से 292 ब्रिटिश भारत का और 93 भारतीय रियासतों का और 4 चीफ़ कमिश्नर के प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करेंगे।

प्रान्तों के मण्डल

कैबिनेट मिशन ने प्रान्तों के तीन मण्डलों के गठन का प्रस्ताव रखा। पहले मण्डल में गैर–मुस्लिम बहुमत के प्रान्त – बम्बई, मद्रास,उड़ीसा, बिहार, संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त थे।

दूसरे मण्डल में पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, सिंध और बलूचिस्तान थे।

तीसरे मण्डल में उत्तर पूर्व में स्थित आसाम और बंगाल थे।

प्रत्येक प्रान्त को दस–दस वर्ष के अन्तराल पर संविधान पर पुनर्विचार करने का अधिकार था।

पृथक संविधानों का गठन

संविधान सभा को प्रत्येक मण्डल के अनुरूप तीन खण्डों में विभाजित किया जाना था। प्रत्येक खण्ड के प्रतिनिधियों को अपने–अपने मण्डलों के लिए संविधानों का निर्माण करना था और सामान्य (सभी मण्डलों के लिए) विषयों का चयन भी करना था, शेष विषयों का कार्य–निष्पादन प्रान्तीय विधानमण्डलों को करना था।

अन्तरिम सरकार का गठन

कैबिनेट मिशन ने यह प्रस्ताव रखा कि जब तक नये संविधान का निर्माण नहीं होता तब तक सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के सहयोग से एक अन्तरिम सरकार का गठन किया जाए। इस अन्तरिम सरकार के सभी विभागों का दायित्व जनता के प्रति उत्तरदायी भारतीय मन्त्रियों को सौंपा जाएगा।

भारतीय संघ से पृथक होने का अधिकार

प्रत्येक प्रान्त को भारतीय संघ से पृथक होने का अधिकार होगा (यह व्यवस्था मुस्लिम लीग को रियायत देने के उद्देश्य से की गई थी)।

1. संघीय संविधान सभा और यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैण्ड) के मध्य सन्धि

सत्ता हस्तान्तरण के कारण उत्पन्न मुद्दों के निबटारे के लिए संघीय संविधान सभा और यूनाइटेड किंगडम के मध्य सन्धि होना आवश्यक होगा।

2. भारतीय रियासतों पर सम्प्रभुता की समाप्ति

कैबिनेट मिशन ने सत्ता हस्तान्तरण के बाद भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश सम्प्रभुता को बनाए रखना असम्भव बताया और नई भारत सरकार को इस सम्प्रभुता को हस्तान्तरित भी नहीं किया जा सकता था।

2. कैबिनेट मिशन के क्या प्रस्ताव थे?लिखिये

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

1.3.4 कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन की योजना को 6 जून, 1946 को तथा कांग्रेस ने 25 जून, 1946 को स्वीकार किया परन्तु जब कांगेस को जुलाई, 1946 के चुनाव में संविधान सभा में शानदार जीत हासिल हुई तो मुस्लिम लीग की परेशानी बढ़ गई। 292 सीटों पर चुनाव हुआ जिसमें कांग्रेस को 201 तथा मुस्लिम लीग को 73 स्थान मिले। कांग्रेस ने सामान्य स्थानों में 9 को छोड़कर सब पर विजय प्राप्त की और मुस्लिम लीग ने 5 को छोड़कर मुसलमानों

के लिए आरक्षित सभी स्थानों पर विजय प्राप्त की। कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन के देश के तीन मण्डलों में वर्गीकरण के प्रस्ताव को खारिज करते हुए शेष सभी प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने मौके का फ़ायदा उठाकर 29 जुलाई, 1946 को कैबिनेट मिशन योजना को दी गई अपनी स्वीकृति वापस ले ली।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) विश्व तथा भारत के सन्दर्भ में 1946 का राजनीतिक परिदृश्य।

(ख) कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों के मुख्य बिन्दु।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) कैबिनेट मिशन का नेतृत्व कौन कर रहा था?

(ii) क्या कैबिनेट मिशन ने पाकिस्तान की स्थापना की मांग को स्वीकार किया था?

1.4 भारत में अन्तरिम सरकार का गठन तथा उसके कार्य

1.4.1 अन्तरिम सरकार का गठन

मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्ताव को पूरी तरह खारिज किए जाने और कांग्रेस द्वारा उसे स्वीकार किए जाने पर वाइसराय लॉर्ड वेवेल ने 12 अगस्त, 1946 को जवाहर लाल नेहरू को अन्तरिम सरकार के गठन के लिए आमन्त्रित किया। 14 सदस्यों के प्रस्तावित मन्त्रिमण्डल में 5 मुसलमान रखे जाने थे। 24 अगस्त को नई सरकार के 12 सदस्यों की घोषणा हुई जो कि निम्न थे –

1.जवाहर लाल नेहरू
2. वल्लभ भाई पटेल
3. राजेन्द्र प्रसाद
4. आसफ़ अली
5. सी0 राजगोपालाचारी
6. शरत चन्द्र बोस
7. जॉन मथाइ
8. बलदेव सिंह
9. शफ़ात अहमद खान
10. जगजीवन राम
11. अली ज़हीर
12. सी0 एच0 भाबा

बाद में दो मुसलमान सदस्यों के नाम और घोषित होने थे। अन्तरिम सरकार का गठन 2 सितम्बर, 1946 को हुआ। वाइसराय ने अपने रेडियो प्रसारण में यह घोषित किया कि मुस्लिम लीग के लिए 14 में से 5 स्थान अब भी सुरक्षित हैं और उसके लिए सरकार में शामिल होने

का निमन्त्रण अभी भी खुला हुआ है। मुस्लिम लीग ने 2 सितम्बर को अन्तरिम सरकार के गठन के विरोध में शोक दिवस के रूप में मनाया।

1.4.2 अन्तरिम सरकार के गठन पर मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

वाइसराय द्वारा कांग्रेस को अन्तरिम सरकार के गठन के लिए निमन्त्रण देना मुस्लिम लीग को सहन नहीं हुआ। 14 सदस्यों के मन्त्रिमण्डल में 6 स्थान कांग्रेस को तथा 5 स्थान मुस्लिम लीग को मिलने थे। शेष 3 अन्य अल्प संख्यकों के लिए रखे गए थे जिनकी नियुक्ति वाइसराय को करनी थी। जवाहर लाल नेहरू ने जिन्ना को अन्तरिम सरकार में शामिल होने का अनुरोध किया, दोनों नेता बम्बई में 15 अगस्त, 1946 को मिले किन्तु उनकी बातचीत का कोई हल नहीं निकला।

16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग को स्वीकार न किए जाने को अंग्रेज़ सरकार का अन्याय और कांग्रेस की साज़िश बताया। मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा इस दिन भारतीय मुसलमानों के साथ होने वाले अन्याय के विरोध में प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा की गई। 16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग को स्वीकार न किए जाने को अंग्रेज़ सरकार का अन्याय और कांग्रेस की साज़िश बताया। मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा इस दिन भारतीय मुसलमानों के साथ होने वाले अन्याय के विरोध में प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा की गई। प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की व्याख्या करते हुए 'ऑल इण्डिया जमैतुल उलमा–ए–इस्लाम' के अध्यक्ष शब्बीर अहमद उस्मानी ने कहा–

वाइसराय तथा कैबिनेट मिशन कांग्रेस के साथ मिलकर अपने पुराने वादे से पीछे हट रहे हैं। इसके कारण भारत के 10 करोड़ मुसलमानों को साहस कर के सीधी कार्यवाही के लिए आगे आना पड़ रहा है ताकि दुनिया को पता चल जाए कि अपने लक्ष्य को पाने के लिए मुसलमान किस हद तक बलिदान दे सकते हैं और अपनी बात से मुकरने वाले उनके विरोधियों को वो अपनी गतिविधियों के माध्यम से एक सबक सिखाना चाहते हैं।

साम्प्रदायिक वैमनस्य, असहिष्णुता तथा संकुचित दृष्टिकोण ने घृणा, अलगाव तथा अनियन्त्रित आक्रोश को बढ़ावा दिया और भारत के एकीकरण के प्रयास को सदियों पीछे ढकेल दिया।

3. अंतरिम सरकार के गठन में मुस्लिम लीग का क्या कहना था? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4.3 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दुष्परिणाम

16 अगस्त, 1946 के इस प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर विरोध हेतु सभाओं का आयोजन हुआ। मुसलमानों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सरकार को पूर्ण सहयोग दिया था और सरकार उनके द्वारा उठाई गई पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करके यह चाहती थी कि वो कांग्रेस के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार में शामिल हो जाएं। शब्बीर अहमद उस्मानी ने इसे मुसलमानों के लिए आर या पार का धर्मयुद्ध कहा। या तो मुसलमान इसमें विजयी होकर ग़ाज़ी कहलाएंगे या इसमें लड़ते–लड़ते मरकर शहीद हो जाएंगे। मुस्लिम लीग के नेतृत्व वाली बंगाल की सरकार के मुख्य मन्त्री सुहरावर्दी ने इस दिन अवकाश की घोषणा कर दी जिसके कारण और भी अधिक लोग जमा हो गए। इस प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर कलकत्ते में हड़ताल रही और फिर साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। अराजकतावादी तत्वों ने स्थिति को और बिगाड़ दिया। चार दिनों तक कलकत्ते में विनाशलीला चलती रही और पुलिस बिलकुल नाकाम तथा उदासीन रही। सेना बुलाए जाने बाद 20 अगस्त को स्थिति नियन्त्रण में आ पाई। कलकत्ते के दंगे में लगभग 5000 लोग मारे गए और 15000 घायल हुए। सम्पत्ति के नुक्सान का तो आकलन करना भी कठिन था। साम्प्रदायिक दंगों की आग टिपेरा तथा नोआखाली जिलों भी फैल गई। बिहार में छपरा और पटना में भी साम्प्रदायिक दंगे हुए। संयुक्त प्रान्त में गढ़मुक्तेश्वर में दंगे हुए। कांग्रेस ने बंगाल के दंगों के लिए सुहरावर्दी की सरकार तथा मुस्लिम लीग को ज़िम्मेदार ठहराया। जिन्ना ने इसके लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया। कांग्रेस पर आरोप लगाया गया कि सरकार की दृष्टि में मुस्लिम लीग को गिराने सरकार द्वारा भारत विभाजन न करने के अपने फैसले पर पुनर्विचार न किए जाने के उद्देश्य से उसने दंगे भड़काए थे। मौलाना आज़ाद ने 16 अगस्त को भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदियों में गिना है और उसको इतिहास का काला दिन कहा है।

1.4.4 अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग की प्रविष्टि

साम्प्रदायिक दंगों के बावजूद मुस्लिम लीग को अन्तरिम केन्द्रीय सरकार में शामिल किए जाने के प्रयास जारी रहे। अन्त में मोहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से सरकार में शामिल होने की और अपने 5 नामजद सदस्यों के नाम देने की हामी भर दी। उन्होंने 13 अक्टूबर, 1946 को लॉर्ड वेवेल को भेजे गऐ पत्र में जिन्ना ने लिखा – *प्रशासन की बागडोर पूरी तरह से कांग्रेस के हाथों में सौंप देना घातक होगा, इसके अतिरिक्त आप ऐसे मुसलमानों को अन्तरिम सरकार में शामिल करने के लिए बाध्य हो सकते हैं जो कि भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में सम्मान और विश्वास के पात्र नहीं हैं और ऐसे लोगों के मन्त्री बनने के गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी गम्भीर कारण*

हैं जो स्वतः स्पष्ट हैं इसलिए उनकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में हम अपने 5 प्रतिनिधियों को नामांकित कर रहे हैं।

कांग्रेस ने मुस्लिम लीग द्वारा अन्तरिम सरकार में शामिल होने के निर्णय का स्वागत किया। पूरे देश में कुछ समय के लिए आशायुक्त हर्ष का वातावरण छा गया किन्तु यह सब कुछ क्षणिक था। अभी भारत के दुर्दिन समाप्त नहीं हुए थे। मौलाना आज़ाद ने *इण्डिया विन्स फ्रीडम* में लिखा है –

कैबिनेट मिशन की योजना को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों के ही द्वारा स्वीकार किया जाना भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास का एक गौरवशाली अध्याय था। इससे यह बात सामने आई कि साम्प्रदायिकता की कठिन समस्या का समाधान हिंसा और संघर्ष से नहीं बल्कि वार्तालाप तथा समझौते में निकल सकता है। यह भी प्रतीत हुआ कि साम्प्रदायिकता की समस्या का हल ढूंढ़कर अब भारत आगे निकलने के लिए चल पड़ा है। अब पूरे देश में उल्लास का वातावरण था और देशवासी एकजुट होकर स्वतन्त्रता की मांग कर रहे थे। हम आनन्द मना रहे थे परन्तु हमको यह मालूम नहीं था कि हम आनन्द मनाने में जल्दबाज़ी कर रहे थे और घोर निराशा हमारी प्रतीक्षा कर रही थी।

कांग्रेस की ओर से अन्तरिम सरकार में जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, आसफ़ अली, सी0 एच0 भाभा और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉक्टर जॉन मथाइ नामांकित किए गए। बाद में जनवरी, 1947 में मौलाना आज़ाद को शिक्षा मन्त्रालय का दायित्व सौंपा गया। मुस्लिम लीग की ओर से –

1. लियाक़त अली
2. आई0 आई0 चुन्द्रीगर
3. अब्दुर रब निश्तर
4. गज़नफ़र अली
5. जोगेन्द्र नाथ मण्डल

इसके अतिरिक्त तीन और व्यक्ति नामांकित किए गए। जोगेन्द्रनाथ मण्डल जैसे गैर–मुस्लिम का नाम इस लिए शामिल किया गया था कि मुस्लिम लीग भी कांग्रेस की तरह खुद को अखिल भारतीय राजनीतिक दल सिद्ध कर सके।

1.4.5 अन्तरिम सरकार की कठिनाइयां

लॉर्ड वेवेल ने यह स्पष्ट कर दिया था कि एक महत्वपूर्ण विभाग मुस्लिम लीग को दिया जाएगा अतः मुस्लिम लीग को वित्त विभाग का दायित्व दिया गया। जिन्ना ने लियाक़त अली को मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग का प्रमुख प्रतिनिधि नियुक्त किया और उनको ही वित्त विभाग सौंप दिया। वित्त मन्त्री को अपरिमित शक्तियां प्रदान की गईं। छोटे से छोटे पद पर नियुक्ति के लिए वित्त मन्त्री का अनुमोदन आवश्यक था। अन्तरिम सरकार में शामिल होकर मुस्लिम लीग ने उसके कामों में यथा सम्भव बाधाएं डालना शुरू कर दिया। मुस्लिम

लीग के लियाक़त अली को महत्वपूर्ण वित्त विभाग का दायित्व सौंपा गया किन्तु उन्होंने अपनी सारी शक्ति यह दिखाने में खर्च की कि मुस्लिम लीग अपने असहयोग से सरकार की कार्य प्रणाली को कितना गतिहीन बना सकती है। गृह मन्त्री सरदार पटेल की ओर से रखे गए हर प्रस्ताव को वित्त मन्त्री लियाक़त अली ने खारिज कर दिया और यही नीति उन्होंने कांग्रेस के अन्य मन्त्रियों के विभागों के साथ अपनाई। लियाक़त अली ने भारतीय औद्यौगिक घरानों और बड़े व्यापारियों का अहित करने वाली कर प्रणाली का प्रस्ताव रखा जिसे भारतीय उद्योग घरानों और बड़े व्यापारियों की समर्थक कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। मुस्लिम लीग चाहती थी कि रक्षा मन्त्रालय किसी हिन्दू को न दिया जाए इसलिए यह विभाग एक सिख सरदार बलदेव को सौंपा गया।

उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त कांग्रेस समर्थकों तथा मुस्लिम लीग समर्थकों में बटा हुआ था और हिन्दू–बहुल आसाम बंगाल के साथ एक मण्डल में जोड़े जाने का विरोध कर रहा था। इन समस्याओं ने अन्तरिम सरकार की मुश्किलें और बढ़ा दीं।

वाइसराय द्वारा 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक निश्चित की गई थी परन्तु इससे बहुत पहले मुस्लिम लीग ने इसके बहिष्कार की घोषणा कर दी। 9 दिसम्बर को हुई बैठक में मुस्लिम लीग के सदस्य अनुपस्थित रहे। राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए और उन्होंने सभा की कार्यवाही का संचालन करना प्रारम्भ भी कर दिया परन्तु यह स्पष्ट हो गया कि संविधान सभा तथा अन्तरिम सरकार के निर्बाध संचालन की कोई सम्भावना नहीं रह गई है। इस प्रकार मुस्लिम लीग की बाधा डालने की नीति से संविधान सभा तथा अन्तरिम सरकार की असहायता खुलकर सामने आ गई और कैबिनेट मिशन का अभियान असफल सिद्ध हो गया। अन्तरिम सरकार कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के खेमों में बट गई और नौकरशाही ने भी उसी का अनुकरण किया। इन खेमों के आपसी टकराव ने प्रशासनिक सक्षमता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव डाला। लॉर्ड वेवेल के मुस्लिम लीग समर्थक व्यवहार ने स्थिति और विषम कर दी। देश भर में भड़क उठे साम्प्रदायिक दंगों ने अन्तरिम सरकार का काम और मुश्किल कर दिया। अनेक बार दंगों से निपटने के लिए सरकार को सेना बुलानी पड़ी। कुल मिलाकर अन्तरिम सरकार हर क्षेत्र में असफल रही। प्रशासनिक अराजकता, अशान्ति और हिंसा और साम्प्रदायिक वैमनस्य ने अन्तरिम सरकार पर कभी न मिटने वाला कलंक लगा दिया। अब भारत का विभाजन अवश्यम्भावी हो गया। यदि इन सब गतिविधियों से किसी को लाभ हुआ तो वह मुस्लिम लीग को और उसकी पाकिस्तान की स्थापना की मांग को। सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे दिग्गज को यह कहना पड़ा कि मुस्लिम लीग को पाकिस्तान दे दिया जाए ताकि शेष भारत में विकास की प्रक्रिया को शान्तिपूर्ण वातावरण में आगे बढ़ाया जा सके।

4. अंतरिम सरकार की क्या कठिनाइयां थीं? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग की प्रविष्टि।

(ख) अन्तरिम सरकार की कठिनाइयां।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) अन्तरिम सरकार का गठन कब हुआ?

(ii) अन्तरिम सरकार में वित्त विभाग का दायित्व किसके पास था?

1.5 सार संक्षेप

1946 में इंग्लैण्ड में सत्तारूढ़ होते ही एटली के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार द्वारा फ़रवरी, 1946 में भारत सचिव लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स के नेतृत्व में कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया जिसमें बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स और फ़र्स्ट लॉर्ड ऑफ़ एडमिरैलिटी ए0 वी0 एलैक्ज़ेण्डर शामिल थे। कैबिनेट मिशन ने भारतीय राजनीतिक दलों के नेताओं से सत्ता हस्तान्तरण के विषय में विचार–विमर्श प्रारम्भ कर दिया। मुस्लिम लीग की ओर से पाकिस्तान की मांग को लेकर यह वार्ता सफल नहीं हो सकी परन्तु उसके सदस्यों ने आपस में परामर्श कर अपनी ओर से एक योजना प्रस्तुत की –

1. पाकिस्तान की स्थापना से इंकार। 2. भारतीय संघ का गठन। 3. संविधान सभा का गठन। 4. प्रान्तों के तीन मण्डलों के गठन का प्रस्ताव। 5. प्रत्येक मण्डल के लिए पृथक संविधानों का गठन। 6. अन्तरिम सरकार का गठन। 7. प्रान्तों को भारतीय संघ से पृथक होने का अधिकार। 8. संघीय संविधान सभा और यूनाइटेड किंगडम के मध्य सन्धि की अनिवार्यता।

9. भारतीय रियासतों पर सम्प्रभुता की समाप्ति।

मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन की योजना जून, 1946 में स्वीकार कर लिया। परन्तु जब कांग्रेस को जुलाई, 1946 के चुनाव में संविधान सभा में शानदार जीत हासिल

हुई तो मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन योजना को दी गई अपनी स्वीकृति वापस ले ली। 16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों की पाकिस्तान की स्थापना मांग को लेकर प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा की। इसके कारण देश भर में साम्प्रदायिक दंगे हुए।

अन्तरिम सरकार का गठन 2 सितम्बर, 1946 को हुआ। कांग्रेस की ओर से अन्तरिम सरकार में जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, आसफ़ अली, सी0 एच0 भाभा और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉक्टर जॉन मथाइ नामांकित किए गए। मुस्लिम लीग ने अक्टूबर, 1946 में सरकार में शामिल होने की और अपने नामजद सदस्यों के नाम देने की हामी भर दी। मुस्लिम लीग की ओर से लियाक़त अली, आई0 आई0 चुन्द्रीगर, अब्दुर रब निश्तर, गज़नफ़र अली और जोगेन्द्र नाथ मण्डल तथा तीन और व्यक्ति नामांकित किए गए। मुस्लिम लीग की बाधा डालने की नीति से संविधान सभा तथा अन्तरिम सरकार की असहायता खुलकर सामने आ गई और कैबिनेट मिशन का अभियान असफल सिद्ध हो गया। अब भारत का विभाजन अवश्यम्भावी हो गया।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

सत्ता हस्तान्तरणः भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने की तैयारी में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा भारतीयों को स्वशासन हेतु अपनी शक्तियां प्रदान करना।

यूनाइटेड किंगडमः यूनाइटेड किंगडम ऑफ इंग्लैण्ड एण्ड स्कॉटलैण्ड अर्थात् इंग्लैण्ड

फ़र्स्ट लॉर्ड ऑफ एडमिरैलिटीः नौ–सेनाध्यक्ष

कॉमनवैल्थः इंग्लैण्ड तथा पहले उसके अधीनस्थ किन्तु बाद में स्वतन्त्र हुए राष्ट्रों का संघ।

अन्तरिमः अस्थायी ।

अनुमोदनः स्वीकृति, सहमति।

1.7 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959

सीतारमैया, पी0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1936

काश्यप, सुभाष – *भारत का सांविधानिक विकास और संविधान*, दिल्ली, 1997

चन्द्रा, बिपन – *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*, दिल्ली, 1997

हसन, मुशीरुल – *इण्डिया पार्टीशन्ड: दि अदर फ़ेस ऑफ फ्रीडम*, नई दिल्ली, 1995

प्रसाद, राजेन्द्र – *एन ऑटोबायोग्राफ़ी*, बम्बई, 1957

बैनर्जी ए0 सी0 (सम्पादक) – *इण्डियन कॉन्सटीट्यूशनल डॉक्यूमेन्ट्स* (भाग 4), कलकत्ता, 1961

1.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 1.3.1 1946 का राजनीतिक परिदृश्य।

   (ख) देखिए 1.3.3 कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव।

2. (i) भारत सचिव लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स।

   (ii) नहीं।

1. (क) देखिए 1.4.3 अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग की प्रविष्टि।

   (ख) देखिए 1.4.4 अन्तरिम सरकार की कठिनाइयां।

2. (i) 2 सितम्बर, 1946 को।

   (ii) मुस्लिम लीग के लियाक़त अली के पास।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. 1946 में लेबर पार्टी की सरकार ने सत्ता सम्भालने के बाद भारत के भविष्य के विषय में क्या निर्णय लिया?
2. कैबिनेट मिशन की सिफ़ारिशों पर कांग्रेस की प्रतिक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. प्रारम्भ में मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में शामिल क्यों नहीं हुई?
4. अन्तरिम सरकार में शामिल किए जाने के लिए कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा नामांकित सदस्यों की चर्चा कीजिए।
5. अन्तरिम सरकार की कार्यवाही में मुस्लिम लीग ने किस प्रकार बाधाएं डालीं?

इकाई दो : आई.एन.ए. तथा रॉयल नेवी विद्रोह

2.1 प्रस्तावना

2.2. इकाई के उद्देश्य

2.3 आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना तथा उसका भारत–मुक्ति अभियान

2.3.1 इण्डियन नेशनल आर्मी अर्थात् आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना

2.3.2 सुभाष चन्द्र बोस का आईएनए प्लाटून को सम्बोधन

2.3.3 21 अक्टूबर, 1943 को आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार की घोषणा

2.3.4 आईएनए का भारत मुक्ति अभियान

2.3.5 आई.एन.ए. पर मुकदमा

2.4 रॉयल इण्डियन नेवी विद्रोह

2.4.1 बम्बई में नौ–सैनिकों की हड़ताल

2.4.2 नौ–सैनिक हड़ताल का विद्रोह के रूप में विकास

2.4.3 नौ–सैनिक विद्रोह का शान्त होना

2.5 सार संक्षेप

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रंथ

2.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

1941 में सुभाष चन्द्र बोस द्वारा अपने कलकत्ते के घर में नज़रबन्दी से भारत से निकलकर अफ़गानिस्तान, रूस और इटली के रास्ते जर्मनी पहुंचकर बर्लिन रेडियो से राष्ट्र के नाम सन्देश ने भारतीयों में उत्साह भर दिया था। पिछली इकाइयों में यह चर्चा की जा चुकी है कि जापान दिसम्बर, 1941 में जर्मनी और इटली के गुट में शामिल हो गया था। जापान की कैद में भारतीय युद्धबन्दियों से गठित आज़ाद हिन्द फ़ौज का नेतृत्व सम्भालने के लिए सुभाष जर्मनी से सिंगापुर पहुंचे। इस इकाई में सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार के गठन और आईएनए द्वारा भारत की मुक्ति हेतु अभियान की चर्चा की जाएगी। इस अभियान की असफलता के बाद सुभाष के लापता होने, आईएनए के अधिकारियों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाए जाने तथा उनको रिहा किए जाने की चर्चा भी इस इकाई में की जाएगी। आईएनए के भारत मुक्ति अभियान से प्रेरित रॉयल इण्डियन नेवी के 1946 के विद्रोह के विस्तार तथा अंग्रेज़ों द्वारा भारत छोड़े जाने के पीछे इस विद्रोह के योगदान का आकलन भी इसी इकाई में किया जाएगा।

सुभाषचन्द्र बोस

2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान की तथा उसकी समाप्ति के ठीक बाद की उन अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय गतिविधियों की जानकारी दी जाएगी जो कि अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने का कारण बनीं। इसमें आईएनए तथा 1946 के नौ–सैनिक विद्रोह की विस्तृत चर्चा की जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- आईएनए की स्थापना और फिर सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में उसके भारत–मुक्ति अभियान के विषय में।
- आईएनए के सैनिकों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाए जाने पर उनके समर्थन में देश–व्यापी समर्थन के विषय में।
- फ़रवरी, 1946 के नौ–सैनिक विद्रोह के विषय में तथा देशवासियों पर उसके व्यापक प्रभाव के विषय में।

2.3 आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना तथा उसका भारत–मुक्ति अभियान

2.3.1 इण्डियन नेशनल आर्मी अर्थात् आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के निर्मम दमन के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने भारत से बाहर रहकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपना साहसिक अभियान चलाया। 1941 में वह अफ़गानिस्तान के रास्ते रूस और इटली होते हुए जर्मनी पहुंचे थे। जर्मनी में सुभाष ने 1941

में एक सेना गठित की थी किन्तु जर्मन उसका प्रयोग रूस के विरुद्ध करना चाहते थे इसलिए उन्होंने दक्षिण–पूर्व एशिया जाने का फैसला किया। दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रीतम सिंह ने 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की थी। द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल होने से पहले ही जापान भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगा था। जापान ने मेजर फ़ूजीवारा को दक्षिण पूर्व एशिया भेजकर 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' से सम्बद्ध प्रवासी भारतीयों से सम्पर्क करने के लिए भेजा। दिसम्बर, 1941 में मलाया के जंगल में ब्रिटिश भारतीय सेना के भारतीय सैनिकों ने जापानी फ़ौज के सामने आत्म समर्पण किया था जिनमें एक कैप्टिन मोहन सिंह भी थे। मोहन सिंह और फूजीवारा ने मिलकर जापान के अधिकार में भारतीय युद्धबन्दियों में से एक सेना, भारत को स्वतन्त्र करने के लिए बनाने का समझौता किया और मार्च, 1942 में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की टोक्यो में स्थापना की। बैंकाक में जून, 1942 में रास बिहारी बोस की अध्यक्षता में दक्षिण–पूर्वी एशिया में बसे भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में 'यूनाइटेड इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की गई और यहीं कैप्टिन मोहन सिंह ने इण्डियन नेशनल आर्मी की स्थापना की और वही इसके कमाण्डर बनाए गए। कैप्टिन मोहन सिंह आज़ाद हिन्द फ़ौज का विस्तार चाहते थे जब कि जापानी उसको केवल एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त करना चाहते थे। कैप्टिन मोहन सिंह से मतभेद होने के बाद उन्हें इसके कमाण्डर पद से हटाकर बन्दी बना लिया गया। 1943 तक आज़ाद हिन्द फ़ौज का पहला प्रयोग असफल रहा। आज़ाद हिन्द फ़ौज को एक करिश्माई नेतृत्व की आवश्यकता थी और वह इस समय जर्मनी में मौजूद सुभाष दे सकते थे। सुभाष के नेतृत्व वाला प्रस्ताव जापानियों को भी पसन्द आया। वह जर्मनी से एक पनडुब्बी में सवार होकर 2 जुलाई, 1943 को जापान द्वारा अधिकृत सिंगापुर पहुंचे जहां से उन्होंने 'दिल्ली चलो' का आह्वान किया और 21 अक्टूबर, 1943 को आईएनए तथा आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार का गठन किया। इस अनन्तिम सरकार को जापान ने तुरन्त मान्यता दे दी और बाद में जर्मनी तथा इटली सहित आठ और राष्ट्रों ने उसका अनुकरण किया। इस अनन्तिम सरकार में उन्होंने 1915 से जापान में रह रहे वरिष्ठ क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस को सम्मान देते हुए 'सुप्रीम एडवाइज़र' नियुक्त किया। गांधीजी से वैचारिक मतभेद होते हुए भी सुभाष ने अपने अभियान की सफलता के लिए उनका आशीर्वाद मांगा। जापानी शिविर में भारतीय युद्ध बन्दियों में से आईएनए के सैनिकों की भर्ती सहज रूप में हो गई। 60000 भारतीय युद्ध बन्दियों में से 20000 आईएनए में भर्ती हो गए। सुभाष के अभियान को वित्तीय सहायता दक्षिण–पूर्व में बसे भारतीय व्यापारियों ने प्रदान की। आईएनए एक धर्मनिर्पेक्ष राष्ट्रीय सेना थी। इसके अनेक अधिकारी और जवान मुसलमान थे। सुभाष ने आईएनए में महिलाओं की सहभागिता को महत्व देते हुए झांसी की रानी के नाम से एक महिला टुकड़ी का गठन किया।

1. आजाद हिन्द फौज की स्थापना के बारे में आप क्या जानते हैं? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.3.2 सुभाष चन्द्र बोस का आईएनए प्लाटून को सम्बोधन

यदि हम यह आशा करेंगे कि ब्रिटेन अपनी इच्छा से भारत पर अपना आधिपत्य छोड़ देगा तो यह हमारी भूल होगी। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने इस बात को समझ लिया था और 1929 में ही उन्होंने पूर्ण स्वराज्य अथवा पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना लिया था। मेरी दृष्टि में पूर्वी एशिया और भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की प्रकृति एक जैसी है। भारतीयों का पूर्ण स्वराज का लक्ष्य और पूर्वी एशिया के भारतीय समुदाय की इण्डिपेन्डेन्स लीग का लक्ष्य भी एक है। अखिल एशिया सहयोग के लिए भारत–जापान मैत्री अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और आईएनए का लक्ष्य उसे प्राप्त करना है।

हम जानते हैं कि भारत के नागरिकों और उसके सैनिकों में विद्रोह तथा प्रतिरोध की भावना पहले से विद्यमान है। भारतीय सेना में कभी भी विद्रोह हो सकता है। अराकान में तैनात सैनिक टुकड़ियां ब्रिटिश सत्ता के प्रति विद्रोह करके जापान की सेना के साथ जा मिली हैं और भारतीय जनता भी अपने कष्टों का निवारण करने हेतु विद्रोह पर आमादा है। इस तरह भारत में क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां हैं। हमको साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और विदेशी आधिपत्य को समाप्त करना है।

इस निर्णायक दौर में हमको धर्म, जाति के अपने सारे मतभेद, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ आदि को भुलाकर देश को आज़ाद कराने के अभियान में जुट जाना चाहिए। हम पूर्व एशिया में आईएनए के अधिकारी और जवान वास्तव में क्रान्तिकारी हैं और हमने अपने लक्ष्य को पाने या फिर मर जाने की शपथ ली है।

2. अपने शब्दों में बताइये कि नेताजी सुभाष बोस ने आईएनए प्लाटून को क्या कहा?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.3.3 21 अक्टूबर, 1943 को आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार की घोषणा

1757 में अंग्रेज़ों से पराजित होने के बाद से भारतीय अपनी स्वतन्त्रता के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष और बलिदान कर रहे हैं। 1857 में हमने बहादुर शाह के झण्डे तले स्वतन्त्रता के लिए संग्राम लड़ा पर कुशल नेतृत्व के अभाव में हम हार गए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद पुनः जागृति आई। हमने अपने खोए हुए अधिकारों को पाने के लिए आन्दोलन, बहिष्कार, आतंक और क्रान्ति, सारे तरीके अपनाए। 1920 में महात्मा गांधी असहयोग और सविनय अवज्ञा के नए अस्त्र लेकर आए। इस युद्ध के दौरान जर्मनी ने यूरोप में हमारे शत्रु पर भीषण प्रहार किए जब कि जापान ने अपने सहयोगियों के साथ पूर्वी एशिया में हमारे शत्रु को निष्कासित कर दिया। पूर्वी एशिया के बीस लाख से भी अधिक भारतीय सम्पूर्ण लामबन्दी के नारे से प्रेरित होकर संगठित हो गए हैं और उनके सामने 'दिल्ली चलो' का नारा लगाती मुक्ति सेना तैयार खड़ी है।

अपनी लूटमार की नीति के कारण अंग्रेज़ भारतीयों कीसद्भावना खो चुके हैं। अब भारत में उनकी स्थिति संकटपूर्ण है। मुक्ति सेना का काम इस असन्तोष की चिंगारी को विद्रोह की ज्वाला में बदलना है। उसे भारतीय जनता तथा ब्रिटिश भारतीय सेना के एक बड़े हिस्से के सहयोग का पूरा भरोसा है और साथ में अपने अजेय विदेशी साथियों के सहयोग का। भारत के सभी बड़े नेता जेल में हैं और हमारी जनता निहत्थी है अतः भारत में सशस्त्र क्रान्ति करना अथवा अनन्तिम सरकार का गठन करना असम्भव है। अतः पूर्वी एशिया में इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग का यह कर्तव्य बनता है कि वह भारतवासियों तथा विदेशों में रह रहे देशभक्त भारतीयों के सहयोग से आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार की स्थापना करे। हम शपथ लेते हैं कि हम अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए, उसके कल्याण के लिए और उसे दुनिया के देशों में सम्मानित स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे।

इस अनन्तिम सरकार का पहला लक्ष्य होगा अंग्रेज़ों तथा उसके सहयोगियों को भारत की धरती से खदेड़ना फिर उसका कार्य होगा भारतीयों की इच्छानुसार आज़ाद हिन्द की एक स्थायी राष्ट्रीय सरकार का गठन।यह सरकार सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता, समान अधिकार और समान अवसर का आश्वासन देती है।

हस्ताक्षर

सुभाष चन्द्र बोस (राज्याध्यक्ष, प्रधान मन्त्री, युद्ध तथा रक्षा मन्त्री)

कैप्टिन श्रीमती लक्ष्मी (महिला संगठन)

एस0 ए0 अय्यर (प्रचार)

लेफ़्टिनेन्ट कर्नल ए0 सी0 चटर्जी (वित्त)

लेफ़्टिनेन्ट कर्नल भगत, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल भोसले, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल गुलज़ारा सिंह, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल कियानी, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल लोगनाथन, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल क़ादिर, लेफ़्टिनेन्ट कर्नल शाह नवाज़ खान, रास बिहारी बोस (सुप्रीम एडवाइज़र), ए0 एन0 सरकार (कानूनी सलाहकार)।

अनन्तिम सरकार की इस घोषणा में सुभाष की नीतियों तथा भविष्य के लिए उनकी योजनाओं की विस्तृत जानकारी मिलती है। उनका विश्वास था कि उनका मुक्ति अभियान शीघ्र ही जन–आन्दोलन में विकसित हो जाएगा और भारतीय सेना उनका इसमें भरपूर साथ देगी।

3. **अनन्तिम सरकार की घोषणा के कुछ प्रमुख बिन्दुओं को लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

2.3.4 आईएनए का भारत मुक्ति अभियान

सुभाष चन्द्र बोस के 'दिल्ली चलो' के आह्वान ने दक्षिण–पूर्वी एशिया में बसे भारतीयों में तथा भारत की जनता में उत्साह भर दिया। उन्होंने *तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा* के उद्बोधन ने देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने की भावना का विकास किया। मार्च, 1944 से जून, 1944 तक आईएनए ने भारत की धरती पर अपना अभियान चलाया। जापानी सैनिकों के साथ इसने इम्फ़ाल पर अधिकार कर लिया। इम्फ़ाल से आज़ाद हिन्द फ़ौज का इरादा आसाम पहुंचने का था जहां उन्हें अपने समर्थन में जन–आन्दोलन की आशा थी। परन्तु यह अभियान पूर्णतया असफल रहा। आज़ाद हिन्द फ़ौज के पास लड़ाकू वायुयान नहीं थे, नेतृत्व की श्रृंखला बाधित हो गई थी, रसद आपूर्ति में व्यवधान आ चुका था, मित्र राज्यों की सेना अत्यन्त शक्तिशाली थी और जापानियों ने आज़ाद हिन्द फ़ौज का खुलकर साथ नहीं दिया था। 1945 में जापान की पराजय से आईएनए के सैनिकों को आत्म समर्पण करना पड़ा और सुभाष अब अपने अभियान में रूस की सहायता प्राप्त करने के लिए हवाई जहाज में रवाना हुए पर फिर रहस्यमयी परिस्थितियों में फिर लौट कर नहीं आए। ऐसा बताया गया कि वह 18 अगस्त, 1945 को ताइवान में एक वायुयान दुर्घटना में मारे गए हैं परन्तु बहुत लोगों ने उनकी मृत्यु के समाचार पर विश्वास नहीं किया।

सुभाष चन्द्र बोस के मुक्ति अभियान को सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं माना जा

सकता। यदि यह अभियान सैनिक दृष्टि से अधिक साधन सम्पन्न भी होता तो इसके गठन का समय प्रतिकूल परिस्थितियों में किया गया था। 1944 से मित्र राज्यों को हर मोर्चे पर सफलता मिल रही थी और धुरी शक्तियां हर मोर्चे पर पीछे हट रही थीं। सुभाष के दल भूमिगत फ़ारवर्ड ब्लॉक को जो कि इम्फ़ाल–कोहिमा आक्रमण के बाद सुभाष के अभियान में मदद कर सकता था, उसे पहले ही निष्क्रिय कर दिया गया था। परन्तु हम सुभाष के इस असफल सैनिक अभियान द्वारा भारतीय जन–मानस पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव को नकार नहीं सकते। इस अभियान ने भारतीयों के हृदय में देशभक्ति की भावना और अपूर्व उत्साह का संचार किया।

2.3.5 आईएनए पर मुकदमा

आईएनए के 20000 बन्दियों में से सैकड़ों पर सरकार ने नवम्बर, 1945 में दिल्ली के लाल किले में सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाने का फ़ैसला किया। इसी लाल किले में सुभाष ने स्वतन्त्र भारत का तिरंगा फहराने का स्वप्न देखा था। आईएनए के 7000 सैनिकों को बिना मुकदमा चलाए बन्दी बनाया गया और उनको ब्रिटिश भारतीय सेना से बगावत करने के आरोप में बर्खास्त कर दिया गया।

लाल किले पर हुए मुकदमे के बाद बरी किए गए शाह नवाज़, जी.एस.ढिल्लों तथा प्रेम कुमार सहगल

आईएनए के तीन सैनिक अधिकारी, हिन्दू – पी0 के0 सहगल, मुसलमान – शाहनवाज़ खां, सिख – गुरुबख्श सिंह ढिल्लों का फ़ौजी अदालत में कोर्ट मार्शल किया गया। उनके ऊपर ब्रिटिश सम्राट के प्रति षडयन्त्र रचने का आरोप लगाया गया। उनकी पैरवी भूलाभाई देसाई, सर तेजबहादुर सप्रू, आसफ़ अली और जवाहर लाल नेहरू ने की। जवाहर लाल नेहरू ने लगभग 29 साल बाद बैरिस्टर के रूप में अदालत में कदम रखा था। नवम्बर, 1945 में जब आईएनए के बन्दी अधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया तो पूरे देश में व्यापक विरोध प्रदर्शन हुए। मुस्लिम लीग ने भी इस देश–व्यापी आन्दोलन में भाग लिया। 20 नवम्बर, 1945 के इंटैलीजेन्स ब्यूरो की एक टिप्पणी में यह स्वीकार किया गया कि शायद ही कभी जनता ने किसी मुकदमे में इतनी दिलचस्पी दिखाई हो और आरोपियों के प्रति इतनी अधिक सहानुभूति का प्रदर्शन किया हो। इन आरोपियों का साथ देने वालों में सभी धर्मों और सभी वर्गों के भारतीय शामिल थे। अंग्रेज़ों को आईएनए की विद्रोही भावना का भारतीय सेना में प्रसार का खतरा परेशान करने लगा था। जनवरी, 1946 में पंजाब के गवर्नर ने यह सूचना दी कि लाहौर में आईएनए के मुक्त बन्दियों के स्वागत समारोह में अनेक वर्दीधारी फ़ौजी शामिल थे। कांग्रेस के नेताओं ने जनता का रुख देखकर आईएनए के सैनिकों को मुक्त किए जाने के लिए किए जा रहे आन्दोलन में भाग लिया था

क्योंकि वो जानते थे कि इस समय सुभाष या आईएनए की आलोचना को जनता किसी भी मूल्य पर सहन नहीं करेगी। 21 से 23 नवम्बर, 1945 तक कलकत्ते में आईएनए के सैनिकों की रिहाई के लिए कलकत्ते में फ़ॉरवर्ड ब्लॉक ने छात्रों के जुलूस निकाले जिसमें कम्युनिस्ट फ़ेडरेशन तथा इस्लामिया कॉलेज के छात्र भी शामिल हो गए। जब पुलिस की गोलीबारी में दो लोग मारे गए तो पूरे शहर में सिख टैक्सी ड्राइवरों तथा कम्युनिस्ट ट्रामवे चालकों ने हड़ताल कर दी। विरोध आन्दोलन के दौरान पुलिस की गोलियों से 33 लोग मारे गए, सैकड़ों घायल हुए। जवाब में आन्दोलनकारियों 150 पुलिस तथा सैनिक वाहनों को क्षति पहुंचाई तथा 100 से अधिक ब्रिटिश तथा अमेरिकन सैनिक घायल हुए।

फ़रवरी, 1946 में आईएनए के अब्दुल रशीद को सात वर्ष के कठोर कारवास दिए जाने के विरोध में छात्रो, श्रमिकों, हिन्दू तथा मुसलमानों ने मिलकर आन्दोलन किया। पुलिस से मुठभेड़ में 84 लोग मारे गए और 300 से अधिक घायल हुए।

सरकार को जन–आन्दोलन के दबाव में आकर आईएनए के अधिकांश बन्दियों को मुक्त करना पड़ा। सरकार को यह आशा नहीं थी कि आईएनए के सैनिक गद्दार न समझे जाकर पूरे देश में जन–नायक की तरह पूजे जाने लगेंगे और सभी राजनीतिक दल उनकी रिहाई की मांग करेंगे। सहगल, खान तथा ढिल्लों को दोषी ठहराया गया। इन अधिकारियों को आजन्म कारावास की सजा सुनाई गई। आईएनए में भाग लेने वालों को सेना से बर्खास्त कर दिया गया। किन्तु सेनाध्यक्ष ऑचिनलेग ने सहगल, खान तथा ढिल्लों की सज़ा माफ़ कर दी क्योंकि उन्हें दण्डित करने में पूरे देश में आन्दोलन और सेना में विद्रोह फैलने का खतरा था।

आज़ाद हिन्द फ़ौज का अभियान भारतीयों के लिए स्वप्नलोक के किसी साहसिक अभियान से कम नहीं था। गांधीजी जैसा अहिंसा का पुजारी भी सुभाष का प्रशंसक बन गया था। 1946 में उनके हिन्दी पत्र *हरिजन सेवक* में नेताजी को जन–नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। इससे स्पष्ट था कि सुभाष से वैचारवैभिन्य रखने वाले भी उनके अभियान की आलोचना करने का साहस नहीं कर रहे थे। यह बात और है कि बाद में सुभाष तथा आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्वतन्त्रता आन्दोलन में भूमिका को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि उन्हें मिलना चाहिए था।

4. आईएनए मुकदमे पर एक संक्षिप्त टिप्पणी करिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार।

(ख) आज़ाद हिन्द फ़ौज के भारत–मुक्ति अभियान की असफलता।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना किसने की थी?

(ii) सुभाष चन्द्र बोस ने अनन्तिम सरकार का गठन कब किया ?

2.4 रॉयल इण्डियन नेवी विद्रोह

2.4.1 बम्बई में नौ–सैनिकों की हड़ताल

अंग्रेज 1945 के मध्य से ही भारत में एक उथल–पुथल की आशा करते आ रहे थे लेकिन जिस बात ने उन्हें परेशान किया, वह सेना की वफादारी पर आजाद हिंद फौज के मुकद्दमों का प्रभाव थी, और भारत छोड़ो आंदोलन के बाद तो यह सेना ही उनके शासन का एकमात्र भरोसेमन्द सहारा थी। युद्ध के दौरान और बाद में सैरयरकर्मियों में बढ़ती राजनीतिक चेतना अधिकारियों के लिए पहले ही चिंता का विषय बनी हुई थी। उसमें आजाद हिन्द फौज के मुकद्दमों ने और योगदान किया। जनवरी 1946 में वायु सेना के लोग अपनी विभिन्न शिकायतों और तकलीफों को

लेकर हड़ताल में उतरे। लेकिन अंग्रेजी राज के लिए सचमुच गंभीर खतरा फरवरी 1946 में राजकीय भारतीय नौसेना की खुली बग़ावत ने किया। सबसे बड़ा खतरा, राजकीय भारतीय नौसेना की बग़ावत था जो बम्बई में 18– 23 फरवरी 1946 में हुआ। औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह सबसे खतरनाक बग़ावत थी। दुर्भाग्य से भरतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसे समुचित महत्व नहीं मिला हैं। युद्ध के समय राजकीय भारतीय नौसेना का विस्तार किया गया जिसमें देश के हर भाग से लोगों को इसमें नियुक्त किया गया।जिससे पुराने सैनिक रिवाज कमज़ोर हुआ। क्योंकि पहले राजनीतिक रूप से अविकसित सैनिक नस्लोंज की सेना में भर्ती की जाती थी। इस विद्रोह की शुरूआत 18 फरवरी 1946 में हुई जो कि जलयान में समुद्र से बाहर स्थित नौसेना के ठिकानों पर भी हुआ। यद्यपि यह बम्बई से आरम्भ हुआ किन्तु करांची से लेकर कलकत्ता तक पूरे ब्रिटिश भारत में इसे भरपूर समर्थन मिला। यह विद्रोह एच0 एम0 आई0 एस0 तलवार के नौसेनिकों ने खराब भोजन और नस्ली भेदभाव के खिलाफ भूख हड़ताल द्वारा शुरू किया । हड़ताल के अगले ही दिन हैसल फोर्ट बैरकों और बम्बई बन्दरगाह के 22 जहाजों तक फैल गयी। 19 फरवरी को एक हड़ताल कमेटी का चुनाव किया गया। नाविकों की माँग निम्न थी–

- बेहतर खाना,
- भारतीय और अंग्रेज नौसेनिक के लिए समान वेतन,
- आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों की रिहाई,
- राजनीतिक बन्दियों की रिहाई,
- सैनिकों के साथ सभ्य बर्ताव एवं व्यवहार,
- हिन्द–चीन तथा जावा से सैनिकों की वापसी इत्यादि,

विद्रोही बेड़े के मस्तूलों पर कम्यूनिस्ट पार्टी, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के झंडे एक साथ फहरा दिये गये। 20 फरवरी को विद्राहे को कुचलने के लिए सैनिक टुकड़िया बम्बई लाई गयीं। नौसेनिकों ने अपनी कार्रवाईयों के तालमेल के लिए पांच सदस्यीय कार्यकारिणी चुनी। 20 फरवरी को उन्होंने अपने अपने जहाजों पर लौटने के आदेश का पालन किया जहां सेना गार्डो ने उन्हें घेर लिया। अगले दिन कैसल बैरको में नाविकों द्वारा घेरा तोड़ने की कोशिश करने पर लड़ाई शुरू हो गई और दोपहर चार बजे युद्ध विराम घोषित कर दिया गया। एडमिरल गॉडफ्रे अब बम्बारी करके नौसेना को नष्ट करने की धमकी दे रहा था। इसी समय लोगों की भीड़ गेटवे ऑफ इण्डिया पर नौसैनिकों के लिए खाना तथा अन्य मदद लेकर उमड़ पड़ी। विद्रोह की खबर फैलते ही कराची, कलकता, मद्रास और विशाखापटनम के भारतीय नौसैनिकों तथा दिल्ली, ठाणे और पूणे स्थित कोस्ट गार्ड भी हड़ताल में शामिल हो गये। 22 फरवरी हड़ताल का चरम बिन्दु था, जब 78 जहाज 120 तटीय प्रतिष्ठान और 20000 नौसैनिक इसमें शमिल हो चुके थे। इसी दिन कम्युनिस्ट पार्टी के आह्वान पर बम्बई में आम हड़ताल हुई। नौसैनिकों के समर्थन में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे मजदूर प्रदर्शनकारियों पर सेना और पुलिस की टुकडियों ने बर्बर हमला किया, जिससे करीब तीन सौ लोग मारे गये और 1700 घायल हुए। इसी दिन सुबह कराची में भारी लड़ाई के बाद ही 'हिन्दुस्तान' जहाज से आत्मसमर्पण कराया जा सका। ठीक इसी समय बम्बई के वायु सेना के पायलट और हवाई अड्डे के कर्मचारी भी नस्ली भेदभाव के विरूद्ध हड़ताल पर थे तथा कलकता और दूसरे कई हवाई अड्डों के पायलटों ने भी उनके समर्थन में हड़ताल कर दी थी। कैन्टोनमेंट क्षेत्रों में सेना के भीतर भी असन्तोष और विद्रोह की सम्भावना की खुफिया रिपोर्टो ने अंग्रेजों को भयाक्रान्त कर दिया था। ऐसे हालात में कांग्रेस तथा लीग के नेता आगे आये, क्योंकि सेना के सशस्त्र विद्रोह, मजदूरों द्वारा उसके समर्थन तथा कम्युनिस्टों की सक्रिय भूमिका से भारतीय पूँजीपति वर्ग और राष्ट्रीय आन्दोलन का बुर्जुआ नेतृत्व स्वयं आतंकित हो गया था। जिन्ना की सहायता से पटेल ने काफी कोशिशों के बाद 23 फरवरी को नौसैनिकों को समर्पण के लिए तैयार कर लिया। इन्हें आश्वासन दिया गया कि कांग्रेस और लीग उन्हें अन्याय व प्रतिशोध का शिकार नहीं होने देंगें। बाद में पटेल ने यह वादा तोड़ दिया। सेना में अनुशासन पर बल देने के कारण पटेल ने यह कहा था कि स्वतन्त्र भारत में भी हमें सेना

की आवश्यकता होगी। उल्लेखनीय है कि 22 फरवरी को कम्युनिस्ट पार्टी ने जब हड़ताल का आह्वान किया था तो कांग्रेसी समाजवादी अच्युत पटवर्धन और अरूणा आसफ अली ने तो उसका समर्थन किया था लेकिन पटेल ने लोगों से सामान्य ढंग से काम करने की अपील की थी। नेहरू और गाँधी ने सेना द्वारा हिंसात्मक रवैये की निन्दा की ।कांग्रेस और लीग के नौसेना विद्रोह के प्रति रवैये ने उनके वर्ग चरित्र को उजागर कर दिया। साम्राज्यवादियों के द्वारा इस विद्रोह के दमन पर लीग और कांग्रेस खामोश रहे। जन आन्दोलनों की जरूरत उन्हें बस साम्राज्यवाद पर दबाव बनाने के लिए और समझौते की बेहतर शर्त हासिल करने के लिए थी। इस प्रकार नौसैनिकों का विद्रोह ज्यादा दिन नहीं चल पाया इसके दो प्रमुख कारण सम्भवत समझे जा सकते हैं । प्रथम, ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सेना की ताकत इनसे कहीं ज्यादा थी। द्वितीय, बल्लभ भाई पटेल और जिन्ना ने 23 फरवरी को नौसैनिकों को समर्पण के लिए तैयार कर लिया। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासकों को यह बात समझा दी कि अब सेना की वफादारी पर भारत में ज्यादा समय तक शासन नहीं कर सकते। दूसरी तरफ नौसैनिक इस विद्रोह को लेकर गौर्वान्वित थे राष्ट्र के

जीवन में यह एक ऐतिहासिक घटना है पहली बार सेना और आम आदमी का खून राष्ट्रहित में एक थे और एक साथ बहाया गया था ।18 फ़रवरी से 23 फ़रवरी, 1946 को बम्बई में रॉयल इण्डियन नेवी का विद्रोह हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में इस विद्रोह को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रॉयल इण्डियन नेवी में भर्ती किए जाने के समय राजनीतिक दृष्टि से कम जागरूक लड़ाकू जातियों में से ही भर्ती किए जाने की पुरानी परम्परा के विपरीत सभी क्षेत्रों के अनेक जवानों की भर्ती की गई थी। इन जवानों की विचारधारा लड़ाकू जातियों के जवानों की तुलना में अधिक उन्मुक्त और प्रगतिशील थी। विश्वयुद्ध के दौरान भी अंग्रेज़ों का जातीय अहंकार तथा जातिभेद का भारतीय नौ–सैनिकों को सामना करना पड़ा था। अब भारतीय नौ–सैनिक युद्ध के दौरान विदेश में हो रही गतिविधियों से भी अवगत हो रहे थे और देश में आईएनए के सैनिकों पर चल रहे मुकदमे की तथा युद्धोपरान्त भारतीयों द्वारा स्वतन्त्रता की मांग किए जाने की भी उनको जानकारी मिल रही थी। 18 फ़रवरी, 1946 को सिग्नल्स प्रशिक्षण संस्थान 'तलवार' में खराब खाने तथा जातीय अपमान को लेकर नौ–सैनिकों के द्वारा भूख हड़ताल कर दी गई। अगले दिन यह हड़ताल तट पर स्थित कैसल तथा फ़ोर्ट बैरक्स और बाम्बे हार्बर में मौजूद 22 जहाजों में भी फैल गई। इस हड़ताल में कांग्रेस के तिरंगे, मुस्लिम लीग के अर्धचन्द्र वाले झण्डे और

बम्बई में नौ–सेना का विद्रोह

कम्युनिस्टों के हंसिया और हथौड़े वाले झण्डे विद्रोही जहाजों के मस्तूलों पर एक साथ फहरा दिए गए। नौ–सैनिकों ने एम0 एस0 खान के नेतृत्व में नौ–सैनिकों की केन्द्रीय हड़ताल समिति चुनी और राजनीतिक नारे लगाते हुए अपनी मांगे रखीं।

5. **बम्बई में नौ–सैनिकों की मांगें व उनकी हड़ताल के विषय में आप क्या जानते हैं? लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.4.2 नौ–सैनिक हड़ताल का विद्रोह के रूप में विकास

हड़ताल कर रहे नौ–सैनिकों ने इस विद्रोह में हिंसा का मार्ग नहीं अपनाया और 20 फ़रवरी, 1946 के अपराह्न तक शान्त होकर उन्होंने अपने अधिकारियों का आदेश मानकर अपने–अपने जहाजों तथा अपनी–अपनी बैरकों में जाना प्रारम्भ भी कर दिया पर वहां सेना के सुरक्षा सैनिकों ने घेर लिया। 21 फ़रवरी, 1946 को कैसल बैरकों में नौ–सैनिकों ने सुरक्षा सैनिकों के घेरे को तोड़ने का प्रयास किया और जहाजों को तथा यूरोपियन अधिकारियों को अपने कब्ज़े में कर लिया। विद्रोही नौ–सैनिकों ने आत्म समर्पण करने के स्थान पर शस्त्र उठाना उचित समझा। एडमिरल गॉडफ्रे ने बम वर्षक विमान मंगवा कर विद्रोही बेड़े को बमबारी कर नष्ट करने की धमकी दी। इसी अपराह्न जनता ने विद्रोही नौ–सैनिकों के साथ अपना समर्थन जताते हुए गेट वे ऑफ इण्डिया पर उन्हें भोजन उपलब्ध कराया और दुकानदारों ने उन्हें अपनी आवश्यकता का सभी सामान अपने यहां से ले जाने का न्यौता दिया। इस नौ–सैनिक विद्रोह तथा 1905 की रूसी क्रान्ति के समय हुए ब्लैक सी फ़्लीट पर हुए विद्रोह में बहुत समानता थी। उस विद्रोह में भी नौ–सैनिकों के खराब खाने को लेकर विद्रोह हुआ था और नौ–सैनिकों को जनता का पूर्ण समर्थन मिला था। 22 फ़रवरी, तक नौ–सैनिक हड़ताल पूरे भारत के नौ–सैनिक ठिकानों में तथा समुद्र में तैनात जहाजों में भी फैल गई।

अपने चरम शिखर पर यह विद्रोह 78 जहाजों, 20 तटीय नौ–सैनिक केन्द्रों तक पहुंचा जिसमें लगभग 20000 नौ–सैनिक शामिल हुए। कराची में 'हिन्दुस्तान' बेड़े ने विद्रोह किया और मुठभेड़ में गोलीबारी करने के बाद ही आत्म समर्पण किया। कराची शहर में छात्रों तथा श्रमिकों ने खुलकर विद्रोही नौ–सैनिकों का साथ दिया। विद्रोही नौ–सैनिकों के समर्थकों की पुलिस तथा सेना से हिंसक मुठभेड़ भी हुई। बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया ने विद्रोही नौ–सैनिकों के समर्थन में 22 फ़रवरी को आम हड़ताल का आह्वान किया जिसका कांग्रेस के समाजवादी नेता अच्युत पटवर्धन तथा अरुणा आसफ़ अली ने समर्थन किया किन्तु सरदार पटेल तथा बम्बई कांग्रेस के प्रान्तीय अध्यक्ष एस0 के0 पाटिल ने जनता को इस विद्रोह से दूर रहकर अपने काम पर वापस जाने की सलाह दी। बम्बई मुस्लिम लीग के प्रान्तीय अध्यक्ष चुन्द्रीगर ने भी शान्ति व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने में सहयोग देने का प्रस्ताव रखा। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के विरोध के बावजूद 300000 श्रमिकों ने 22 फ़रवरी को हड़ताल रखी और बम्बई क लगभग समस्त मिलों में काम बन्द हो गया। दो दिन तक अशान्ति और पुलिस व सेना से झड़पों का दौर चलता रहा। बम्बई में शान्ति व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के लिए सेना की दो बटालियनों की मदद लेनी पड़ी तब जाकर दो दिन बाद स्थिति नियन्त्रण में आ सकी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस आन्दोलन के दौरान 228 नागरिक मारे गए और 1046 घायल हुए। पुलिस की ओर से 3 जवान मारे गए और 91 घायल हुए।

2.4.3 नौ–सैनिक विद्रोह का शान्त होना

सरदार पटेल और मुहम्मद अली जिन्ना ने मिलकर विद्रोही नौ–सैनिकों को 23 फ़रवरी को आत्म समर्पण करने के लिए इस आश्वासन पर राज़ी किया कि उनके साथ बदले की भावना से कार्यवाही नहीं होने दी जाएगी पर शीघ्र ही इस वादे को भुला दिया गया क्योंकि सरदार पटेल की दृष्टि में सेना में अनुशासन के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता था। गांधीजी की दृष्टि में भी यह नौ–सैनिक विद्रोह अनुचित था और नौ–सैनिकों को चाहिए था कि हिंसा का मार्ग अपनाने के स्थान पर वो अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए त्यागपत्र दे सकते थे। अरुणा आसफ़ अली ने गांधीजी के दृष्टिकोण की कटु आलोचना की।

फ़रवरी, 1946 के नौ–सैनिक विद्रोहियों को आज़ाद हिन्द फ़ौज के सेनानियों के बराबर सम्मान नहीं मिला और न ही उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी माना गया। सुमीत सरकार अपनी पुस्तक *मॉडर्न इण्डिया: 1885–1947* में आईएनए के जवानों की तुलना में नौ–सैनिक के विद्रोह को अधिक साहसिक मानते हैं। आज़ाद हिन्द फ़ौज के अनेक सैनिक जापानी युद्ध शिविर में कैदी जीवन की यातनाओं से बचने के लिए उसमें शामिल हुए थे जब कि नौ–सैनिक विद्रोहियों के लिए के लिए ऐसी कोई विवशता नहीं थी। नौ–सैनिक केन्द्रीय हड़ताल समिति के भारतीय जनता के नाम अन्तिम सन्देश का उल्लेख आवश्यक है –

हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना है। पहली बार सेना के

जवान और आम जनता किसी सार्वजनिक मसले पर विरोध के लिए एकजुट होकर सड़कों पर आए हैं। हम सैनिक इसको कभी नहीं भूलेंगे और हमको विश्वास है कि हमारे भाई–बहन भी इसको नहीं भूलेंगे। हमारे महान देशवासी ज़िन्दाबाद! जयहिन्द!

भारतीय इतिहास में 1946 के नौ–सैनिक विद्रोह को राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वर्णिम अध्याय के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। वास्तव में आईएनए के भारत–मुक्ति अभियान तथा नौ–सैनिक विद्रोह के अन्तः सम्बन्ध ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आधार – 'ब्रिटिश भारतीय सेना की निष्ठा और स्वामिभक्ति' पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न लगा दिया था। अब भारतीय सेना की पूरी मदद के बिना दो–ढाई लाख अंग्रेज़ों का चालीस करोड़ भारतीयों पर राज करना कठिन था और सम्भवतः इसीलिए उन्हें अब स्वयं भारत छोड़ने की और भारत को स्वतन्त्रता देने की व्यग्रता हो रही थी। गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसक आन्दोलन का देश को स्वतन्त्रता दिलाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है किन्तु स्वतन्त्रता आन्दोलन के इस उपेक्षित अध्याय का पुनर्मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) नौ–सैनिकों की हड़ताल के कारण और उनकी मांगे।

(ख) नौ–सैनिक विद्रोह का विस्तार।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) नौ–सैनिक विद्रोह कहां और कब शुरू हुआ ?

(ii) हड़ताली नौ–सैनिकों को किन नेताओं ने आत्म समर्पण के लिए तैयार किया?

2.5 सार संक्षेप

कैप्टिन मोहन सिंह, मेजर फूजीवारा और रासबहारी बोस ने मिलकर जापान के अधिकार में भारतीय युद्धबन्दियों में से मार्च, 1942 में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की। कैप्टिन मोहन सिंह ने इण्डियन नेशनल आर्मी की स्थापना की। जर्मनी में मौजूद सुभाष चन्द्र बोस को आज़ाद हिन्द फ़ौज का सुप्रीम कमाण्डर बनने का निमन्त्रण दिया गया। सुभाष ने 21 अक्टूबर, 1943 को आईएनए तथा आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार का गठन किया। जापानी शिविर में भारतीय युद्ध बन्दियों में से 20000 आईएनए में भर्ती हो गए। आईएनए एक धर्मनिर्पेक्ष राष्ट्रीय सेना थी। सुभाष ने आईएनए में महिलाओं की सहभागिता को महत्व देते हुए झांसी की रानी के नाम से एक महिला टुकड़ी का गठन किया। सुभाष के 'दिल्ली चलो' के आह्वान तथा *तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा* के उद्बोधन ने देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने की भावना का विकास किया। मार्च, 1944 से जून, 1944 तक आईएनए ने भारत की धरती पर अपना अभियान चलाया। परन्तु यह अभियान पूर्णतया असफल रहा। 1945 में जापान की पराजय से आईएनए के सैनिकों को आत्म समर्पण करना पड़ा। ऐसा बताया गया कि सुभाष एक वायुयान दुर्घटना में मारे गए हैं। सुभाष के इस असफल सैनिक

अभियान ने भारतीयों के हृदय में देशभक्ति की भावना और अपूर्व उत्साह का संचार किया। आईएनए के 20000 बन्दियों में से सैकड़ों पर सरकार ने नवम्बर, 1945 में दिल्ली के लाल किले में सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाने का फ़ैसला किया। आईएनए के तीन सैनिक अधिकारी सहगल, खां और ढिल्लों का फ़ौजी अदालत में कोर्ट मार्शल किया गया। सरकार को जन–आन्दोलन के दबाव में आकर आईएनए के अधिकांश बन्दियों को मुक्त करना पड़ा। 18 फ़रवरी, 1946 को सिग्नल्स प्रशिक्षण संस्थान 'तलवार' में खराब खाने तथा जातीय अपमान को लेकर नौ–सैनिकों के द्वारा भूख हड़ताल कर दी गई। अपने चरम शिखर पर यह विद्रोह 78 जहाजों, 20 तटीय नौ–सैनिक केन्द्रों तक पहुंचा जिसमें लगभग 20000 नौ–सैनिक शामिल हुए। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के विरोध के बावजूद 300000 श्रमिकों ने 22 फ़रवरी को हड़ताल रखी। सरदार पटेल और मुहम्मद अली जिन्ना ने मिलकर विद्रोही नौ–सैनिकों को 23 फ़रवरी को आत्म समर्पण करने के लिए राज़ी किया। इस विद्रोह के कारण अंग्रेज़ों भारतीय सेना की निष्ठा पर विश्वास नहीं रहा जो कि उनके शीघ्र भारत छोड़ने का एक प्रमुख कारण बना।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

करिश्माईः जादुई

सुप्रीम एडवाइज़रः सर्वोच्च सलाहकार

धुरी शक्तियांः जर्मनी, इटली और जापान

इंटैलीजेन्स ब्यूरोः खुफ़िया कार्यालय

लड़ाकू जातियांः वे जातियां जिनमें पीढ़ियों से सैनिक सेवा को प्रधानता दी जाती है।

चरम शिखरः उत्कर्ष

2.7 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969
सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

2.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 2.3.3 21 अक्टूबर, 1943 को आज़ाद हिन्द की अनन्तिम सरकार की घोषणा।

(ख) देखिए 2.3.5 आईएनए का भारत मुक्ति अभियान।

2. (i) कैप्टिन मोहन सिंह ने।

(ii) 21 अक्टूबर, 1943 को।

1. (क) देखिए 2.4.1 बम्बई में नौ–सैनिकों की हड़ताल।

(ख) देखिए 2.4.2 नौ–सैनिक हड़ताल का विद्रोह के रूप में विकास।

2. (i) 18 फ़रवरी, 1946 को बम्बई में।

(ii) सरदार पटेल तथा मुहम्मद अली जिन्ना के कहने पर।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. आईएनए के गठन में मुख्य रूप से किन–किन व्यक्तियों की भूमिका थी?
2. सुभाष चन्द्र बोस द्वारा आईएनए प्लाटून को किए गए सम्बोधन पर प्रकाश डालिए।
3. आईएनए के भारत मुक्ति अभियान के समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में क्या बदलाव आया?
4. दिल्ली के लाल किले में चलाए गए मुकदमे में आईएनए के अधिकारियों पर क्या आरोप लगाए गए?
5. अंग्रेज़ों द्वारा भारत को स्वतन्त्र किए जाने में रॉयल इण्डियन नेवी के 1946 के विद्रोह की क्या भूमिका रही?

इकाई तीनः देशी राज्यों में आन्दोलन

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 1927 से पूर्व भारतीय रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों का विकास

3.3.1 भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अविवेकपूर्ण संरक्षण दिए जाने के कुपरिणाम

3.4 देशी राज्यों में आन्दोलन

3.4.1 भारतीय रियासतों में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रारम्भिक विकास

3.4.2 भारतीय रियासतों में प्रजा मण्डलों की स्थापना

3.5 भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अविवेकपूर्ण संरक्षण दिए जाने के कुपरिणाम

3.5.1 भारतीय रियासतों में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रारम्भिक विकास

3.5.2 भारतीय रियासतों में प्रजा मण्डलों की स्थापना

3.6 भारतीय रियासतों में स्वतन्त्रता संग्राम

3.6.1 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' का गठन

3.6.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतीय रियासतों में सुधार तथा स्वतन्त्रता की स्थापना

3.7 सार संक्षेप

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ

3.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.11 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम 1858 के महारानी के घोषणा पत्र में भारतीय शासकों को अभयदान दिए जाने की चर्चा कर चुके हैं। अभयदान प्राप्त कर चुके भारतीय शासकों ने अपने–अपने राज्यों में अपनी प्रजा के अधिकारों का हनन किया। भारत में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का भारतीय रजवाड़ों की जनता पर भी प्रभाव पड़ा, विशेषकर गांधीजी के आन्दोलनों से रजवाड़ों की जनता भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित हुई। इस इकाई में भारतीय रियासतों की जनता में राजनीतिक चेतना के विकास और उसके फलस्वरूप विभिन्न आन्दोलनों तथा संगठनों के उदय की चर्चा की जाएगी।

3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको भारतीय रियासतों की प्रजा द्वारा अपने अधिकारों के लिए किए गए संघर्ष की जानकारी दी जाएगी और यह बताया जाएगा कि किस प्रकार देशी राज्यों की जनता मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़ी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- भारतीय रियासतों को ब्रिटिश संरक्षण दिए जाने के कारण भारतीय शासकों के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हो जाने की तथा भारतीय रियासतों में 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' की 1927 में स्थापना होने से पूर्व तक हुए राजनीतिक आन्दोलनों के विषय में।
- भारतीय रियासतों में 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' की स्थापना से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक हुए राजनीतिक आन्दोलनों के विषय में।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से भारतीय राज्यों के भारत में विलय हो जाने तक हुए राजनीतिक आन्दोलनों के विषय में।

3.3 1927 से पूर्व भारतीय रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों का विकास

3.3.1 भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अविवेकपूर्ण संरक्षण दिए जाने के कुपरिणाम

1858 के महारानी के घोषणा पत्र में भारतीय शासकों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। भारत में लगभग 600 छोटी–बड़ी रियासतें थीं। इनका कुल भौगोलिक क्षेत्र भारत का लगभग 40 प्रतिशत भाग और इनकी आबादी भारत की कुल आबादी की एक तिहाई थी। 1858 के महारानी के घोषणा पत्र में भारतीय शासकों को सन्तुष्ट करने के लिए व्यपगत के सिद्धान्त का परित्याग कर उन्हें तथा उनके राज्य को वाह्य एवं आन्तरिक खतरों से पूर्ण सुरक्षा प्रदान की गई थी किन्तु भारतीय रियासतों से यह अपेक्षा अवश्य की गई थी वह ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा और स्वामिभक्ति बनाए रखेंगे और सामान्यतः कृतज्ञ भारतीय शासकों ने अधीनस्थ मित्रों के रूप में भारत में ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ बनाने अपना सहयोग दिया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारतीय रियासतों में नागरिकों को अभिव्यक्ति की

स्वतन्त्रता और राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधारों के लिए आन्दोलन करने का अधिकार नहीं दिया गया। नागरिक अधिकार शब्द का उच्चारण तक करना इन रियासतों में एक अपराध माना जाता था। इसलिए ब्रिटिश भारत में राजनीतिक आन्दोलन का जिस गति से विकास हुआ वह गति, वह व्यापकता भारतीय रियासतों में नहीं दिखाई पड़ी। आन्तरिक एवं वाह्य खतरों से सुरक्षा प्राप्त कर अधिकांश भारतीय शासकों ने पहले से भी अधिक विलासिता का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। भारतीय शासकों की विलासिता और अपव्ययता के किस्से यूरोप तक मशहूर थे। उनमें अपनी प्रजा के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता की नितान्त कमी थी। उनकी विदेश यात्राएं आमतौर पर केवल सैर–सपाटों के लिए होती थीं। लॉर्ड कर्ज़न ने उनके गैर–ज़िम्मेदाराना व्यवहार से क्षुब्ध होकर उनकी विदेश यात्राओं पर प्रतिबन्ध लगाने के प्रयास किए थे। भारतीय शासकों ने यथा सम्भव अपने राज्यों में विरोध का हर स्वर कुचलने का प्रयास किया। उनके निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन में उनके राज्यों में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक विकास नहीं हो सका। दासता तथा बन्धुआ मजदूरी एवम् बेगार प्रथा से आम आदमी पीड़ित व समाज कलंकित था। इसके लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा आँख मूंदकर उन्हें संरक्षण देने की नीति प्रत्यक्ष रूप से ज़िम्मेदार थी।

3.4 देशी राज्यों में आन्दोलन

आजादी के पूर्व भारत में अनेक देशी राज्य थे। 1941 ई० में इनकी कुल संख्या 562 थी। इन देशी राज्यों के अधीन देश का 45 प्रतिशत क्षेत्रफल भाग तथा देश की कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत भाग निवास करता था। देशी राज्यों में आंदोलन आंतरिक राजनैतिक स्थिति, शासकों की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता, अत्यधिक भू – राजस्व तथा किसान समस्याएँ एवं रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली को लेकर प्रारंभ हुए। ब्रिटिश भारत की राजनैतिक स्थिति एवं राजनैतिक आंदोलनों ने देशी राज्यों को सीधे तौर पर प्रभावित किया। इससे देशी राज्यों की जनता ने अपने विभिन्न अधिकारों और समस्याओं के समाधान के लिए जोरदार आंदोलन करने प्रारंभ कर दिये। ब्रिटिश भारत में राजनैतिक सुधारों और उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले आंदोलनों से देशी राज्यों की जनता भी अछूती नहीं रह सकी।

देशी राज्यों की जनता भी ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेनी लगी। जिससे देशी राज्यों की जनता में भी अपनी रियासतों में राजनैतिक एवं अन्य सुधारों की भावना जागृत होने लगी। उन्होंने भी शनैः – शनैः अपनी आवाज राजा – महाराजाओं तक दबी जुबान से करनी प्रारंभ कर दी। ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के प्रयासों का प्रभाव देशी राज्यों की जनता पर भी पड़ा। उन्होंने भी देशी राज्यों में उत्तरदायी सरकारों के गठन की ओर कदम उठाने के लिए मांग करनी प्रारंभ कर दी।

देशी राज्यों की जनता और ब्रिटिश भारत की जनता के मध्य मेल – मिलाप और राजनैतिक जागरण का कार्य ब्रिटिश सरकार और देशी राज्यों की नीतियों ने भी किया। दोनों की नीतियों में भारी अंतर था तथा दोनों ही राजनैतिक आंदोलनों के समय एक –

दूसरे की मदद करते थे अर्थात् जब किसी भी प्रश्न पर देशी राज्यों की जनता आंदोलन करती थी, तब उस आंदोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार फौजी मदद प्रदान करके आंदोलन को कुचल देती थी और इसी प्रकार ब्रिटिश भारत में होने वाले आंदोलनों को आंतरिक रूप से ध्वस्त करने तथा प्रत्यक्ष रूप से कुचलने के लिए देशी राज्यों की फौजें ब्रिटिश शासन का भरपूर सहयोग करती थी। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की इस जुगबंदी को आम जनता समझ गयी और इसी कारण ब्रिटिश भारत की जनता और देशी राज्यों की जनता एक दूसरे के नजदीक आ गयी तथा उनमें राजनैतिक मेल – मिलाप का सिलसिला प्रारंभ होने से साझा उद्देश्यों ने एक – दूसरे को एकजुट होने के लिए प्रेरित किया।

देशी राज्यों में राजनैतिक हलचल को स्पष्ट देखा जाने लगा और 1921 ई0 के बाद देशी राज्यों में प्रजा मण्डल आंदोलन आकार लेने लगे। प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राजाओं के कान खड़े कर दिये। उन्होंने बड़ी बेदर्दी से इन आंदोलनों को कुचलना प्रारंभ किया। जिसमें अंग्रेजों ने उनका पूरा सहयोग किया। प्रजा मण्डल आंदोलन फिर भी विभिन्न देशी राज्यों में जोर शोर से चलने लगे। जिनका उद्देश्य रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली तथा देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था।

प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राज्यों को राजनैतिक सुधारों के लिए मजबूर कर दिया। शनैः – शनैः अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों का गठन हुआ और उन्हें राजनैतिक मान्यता भी प्रदान कर दी गयी। कतिपय देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन के गठन की ओर कदम भी उठाये। हालांकि देशी राज्यों के शासक स्वभाव एवं कर्म से निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक थे। उत्तरदायी शासन की स्थापना करना उन्हें मंजूर नहीं था। अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों की स्थापना होने के बाद भी उन्हें पर्याप्त राजनैतिक मर्यादा प्रदान नहीं थी। अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डल राजा – महाराजाओं के मात्र सलाहाकार बनकर रह गये थे। फिर भी इन प्रजा मण्डलों ने देशी राज्यों की रियाया के अधिकारों और सुविधाओं के लिए संघर्ष किया।

1. **देशी राज्यों में आन्दोलन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

देशी राज्यों में मैसूर, त्रावणकोर, पोरबंदर, कोचीन ने प्रगतिशील कदम उठाते हुए अपने राज्यों में रियाया के चुने हुए प्रतिनिधियों को शासन में पर्याप्त अधिकार प्रदान किये। इन देशी राज्यों ने अपने यहाँ होने वाले सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का पर्याप्त सम्मान करते हुए उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। इन देशी रियासतों ने अपनी रियाया की धार्मिक समानता की मांगों को भी पूर्ण किया। त्रावणकोर में 1921 ई0 से, पुडुकोट्टाई में 1924 ई0 से तथा कोचीन में 1925 ई0 से विधान परिषदों में जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य बहुमत से कार्य कर रहे थे। इन देशी राज्यों की वैधानिक कार्य विधि ब्रिटिश भारत की वैधानिक कार्य विधि के समान ही थी।

ग्वालियर इन्दौर, बड़ौदा, बीकानेर, हैदराबाद आदि देशी राज्यों के शासकों ने विधान मण्डलों का गठन किया था तथा जनता के प्रतिनिधियों को परिषदों में नियुक्त भी किया था, किन्तु इन्हें अधिक आजादी प्राप्त नहीं थी। इनकी बैठकें भी अनियमित होती थीं तथा ये स्वतंत्र कार्य करने की अपेक्षा राजा – महाराजाओं की सलाहकार परिषदों के रूप में ही कार्य कर रही थी। देश के अधिकांश देशी राज्य परिपाला, कश्मीर, हैदराबाद आदि अपनी जनता को राजनैतिक अधिकार देना नहीं चाहते थे, वे निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन के पक्षधर थे। इन रियासतों में जो भी राजनैतिक परिवर्तन हुए वे मात्र दिखावे के लिए ही थे वास्तविक सत्ता यहाँ राजा – महाराजाओं में ही विद्यमान रही।

देशी राज्यों के आंतरिक मामलों में अंग्रेजी सरकार मात्र अपने हितों को छोड़कर कभी हस्तक्षेप नहीं करती थी और नहीं किसी प्रकार के राजनैतिक सुधारों से ही उसे कोई मतलब था। फिर भी कुछ गवर्नर – जनरलों एवं अंग्रेजों ने देशी राज्यों को अपनी रियाया को सुविधाएँ देने और आधुनिक संसाधनों के विकास के लिए प्रेरित किया। लॉर्ड मेयो, नॉर्थबूक, रिपन, कर्जन हार्डिंग, चेम्सफोर्ड, रीडिंग, इर्बिन आदि ने देशी राज्यों के राजा – महाराजाओं को अपने राज्यों में प्रशासनिक सुधार करने तथा आधुनिक शिक्षा आवागमन के साधनों संचार की व्यवस्था के लिए प्रेरित किया। कुछ ने तो राजा – महाराजाओं की फिजुलखर्ची एवं देश – विदेश में पर्यटन की प्रवृत्ति की आलोचना तक की तथा कहा कि राजा–महाराजाओं को जनता के धन का अपव्यय नहीं करना चाहिए। लॉर्ड कर्जन तो इस मामले में शासन सख्त था। कुछ गवर्नरों ने देशी राज्यों में सभी जनता को समान अवसर देने तथा समान प्रगति का अधिकार देने तक की बात कही।

2. **मैसूर, त्रावणकोर, पोरबंदर, कोचीन के देशी राज्यों ने अपने नागरिकों को कौन सी सुविधाएं दी थीं? लिखिये–**

....

....

....

....

....

बहरहाल, 1921 ई0 के बाद देशी राज्यों में राजनैतिक जागृति पैदा होने लगी। देशी राज्यों की जनता ने प्रजा मण्डल आन्दोलनों के द्वारा राजनैतिक जनजागरण का शंखनाद किया। कतिपय राजनीतिज्ञों ने देशी राज्यों के प्रजा मण्डलों को अखिल भारतीय आधार प्रदान करने के प्रयास करते हुए दिसंबर, 1927 ई0 में बम्बई में 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस' (ए0 आई0 एस0 पी0 सी0) का गठन किया। इस संस्था के द्वारा देशी राज्यों के प्रजा मण्डल आंदोलनों को संगठित करने वैचारिक आधार प्रदानकरने तथा राजनैतिक नेतृत्व प्रदान करने की मंशा प्रगट की गयी। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को ''अखिल भारतीय राज्य जन कॉन्फ्रेन्स'' के नाम से भी जाना जाता है। इसके गठन में मणिलाल कोठारी, जी0 आर0 अभ्यंकर, बलबंतराय मेहता आदि ने प्रमुख भूमिका निभाई।

दिसंबर, 1927 ई0 में बम्बई अखिल भारतीय राज्यजन कॉन्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें 700 से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस प्रथम अधिवेशन में ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित किया गया। जिनमें प्रमुख थे देशी राज्यों के प्रशासन में सुधार प्रशासन में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का हस्तक्षेप, देशी राज्यों में उत्तरदायी प्रतिनिधि शासन की स्थापना जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का वित्त एवं प्रशासन पर नियंत्रण, देशी राज्यों के राजस्व का राजा के निजी व्यय एवं राज्य में स्पष्ट विभाजन स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना देशी राज्यों एवं अंग्रेजी सरकार के मध्य स्पष्ट संवैधानिक संबंध हो। देशी राज्यों की जनता को भावी भारतीय संविधान में उचित स्थान प्रदान करने की बात भी की गयी।

ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 ने नेताओं ने संस्था को मान्यता दिलाने के लिए आवेदन किया। किन्तु अंग्रेजी सरकार ने इसे मान्यता देने से यह कहकर मना कर दिया कि, देशी राज्यों के राजनैतिक संगठनों को हम मान्यता नहीं दे सकते हैं, इसका अधिकार देशी राज्यों के राजे – महाराजाओं का है। अब संस्था के नेताओं ने अपना पक्ष रखने एवं समर्थन जुटाने के लिए लंदन (इंग्लैण्ड) का रूख किया। जुलाई, 1928 ई0 को संस्था के प्रमुख नेता दीवान बहादुर रामचंद्र राव (अध्यक्ष), अमृतलाल सेठ, पी0 एल0 चुदगर, जी0 आर0 अभ्यंकर आदि लंदन पहुंचे। संस्था के इस प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश जनता और संसद को अपनी बात प्रभावी ढंग से बतायी। किन्तु इसका कोई विशेष सकारात्मक परिणाम नहीं निकला।

देशी राज्यों में आंदोलनों का प्रमुख कारण भूमि और भू – राजस्व संबंधित समस्याओं से प्रारंभ हुए। कृषि प्रधान देशी राज्यों में भूमि और भू – राजस्व आम आदमी को सीधे प्रभावित करते थे। ज्ञातव्य रहे कि देशी राज्यों में भूमि और भू – राजस्व की दशा ब्रिटिश भारत की

अपेक्षा अत्यधिक खराब थी। देशी राज्यों में भू – राजस्व की दर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा काफी ऊँची थी तथा भू–राजस्व को कठोरता से बसूलने की भी प्रथा थी। भूमि और भू – राजस्व संबंधी मामलों पर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी राज्यों का रूख सख्त था और इस विषय पर ब्रिटिश भारत में अपेक्षाकृत अधिक अच्छी व्यवस्था थी। देशी राज्यों में भू – राजस्व की ऊँची दरों और राजस्व वृद्धि के प्रश्न पर आंदोलन प्रारंभ हुए। देशी राज्यों में कृषक आंदोलनों के माध्यम से जन जागरण हुआ।

3. **ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस पर टिप्पणी लिखें–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

कृषक आंदोलनों में बिजौलियां कृषक आंदोलन ने सर्वाधिक प्रसिद्धी पायी। राजस्थान के मेवाड़ में बिजौलियाँ एक बड़ी देशी जागीर थी। बिजौलिया में कृषकों ने जागीरदार की भू – राजस्व वृद्धि एवं कठोर वसूली के विरूद्ध एक लंबा घोर संघर्ष किया। 1905 ई0 में प्रारंभ यह कृषक आंदोलन, समय – समय पर एक लंबे समय तक चलता रहा। 1913 ई0 में बिजौलिया के कृषकों ने राज्य द्वारा आरोपित सामूहिक कृषि की प्रथा के विरूद्ध आक्रोश प्रगट करते हुए सामूहिक कृषि करने से मना कर दिया और अपने ग्रामों को छोड़कर चले गये। इस समय बिजौलियाँ के इस कृषक आंदोलन को नेतृत्व सीताराम दास ने प्रदान किया। इसके कारण आंदोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। आंदोलन को अधिक दशा – दिशा विजय सिंह पाथिक के नेतृत्व ने प्रदान की। 1915 ई0 में विजय सिंह पाथिक ने आंदोलन का नेतृत्व संभाला और राज्य में तीव्र और सशक्त कृषक आंदोलन खड़ा कर दिया। 1916 ई0 में विजय सिंह पाथिक ने उदयपुर राज्य के विरूद्ध कर नहीं अदायगी का आंदोलन चलाया। बिजौलियाँ कृषक आंदोलन असहयोग आंदोलन के समय भी चलता रहा और इसी कारण शीघ्र ही महात्मा गाँधी का ध्यान इस आंदोलन की ओर गया और बहुत से आंदोलनकारियों ने महात्मा गांधी से मुलाकात करके अपनी व्यथा उन्हें बतायी।

असहयोग आंदोलन के बाद मेवाड़ के बिजौजियाँ में पुनः संघर्ष प्रारंभ हुआ। इस बार माणिकलाल वर्मा एवं विजय सिंह पाथिक ने संयुक्त नेतृत्व ने बिजौजियाँ के कृषकों के संघर्ष

को आगे बढ़ाया। इस आंदोलन का कृषकों को खासा लाभ हुआ। इससे कृषि भूमि पर चुंगियों और बेगार प्रथा में कमी आयी। 1927 ई0 में बिजौजियाँ में फिर से माणिकलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, विजय सिंह पथिक ने कृषक आंदोलन छेड़ा। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप चुंगी की नई दरों और बेगार के विरूद्ध घोर जन संघर्ष हुआ और सीधा लाभ कृषकों को मिला।

वर्तमान राजस्थान की अनेक देशी राजपूत राज्यों में कृषकों ने अपने भूमि संबंधी अधिकारों तथा भू – राजस्व संबंधित समस्याओं को लेकर घोर संघर्ष किये। गांधी जी के असहयोग आंदोलन से इन्हें खासी ऊर्जा मिली। क्योंकि संघर्ष का अब नया तरीका आम जनता को पता चल गया था। अलवर राज्य में भील आंदोलन एवं कृषक आंदोलन ने सभी का ध्यान खींचा। अलवर राज्य के नीमूचना में भू – राजस्व की दुगनी वृद्धि पर कृषकों में भयानक रोष व्याप्त हो गया। राज्य प्रशासन और कृषकों में भारी संघर्ष छिड़ गया। जिसमें एक हजार से अधिक लोग मारे गये तथा छः सौ से अधिक घायल हो गये। अलवर राज्य में ही मोतीलाल तेजावत ने भील आंदोलन को अपना नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने भीलों की भेशभूषा धारण करके भीलों को संगठित किया। इस आंदोलन ने भारी जनसमर्थन जुटाया और गंभीर रूप से बड़ते आंदोलन को दबाने के लिए अलवर राज्य को अंग्रेजी फौजों का सहयोग प्राप्त हुआ। तब जाकर कहीं आंदोलन को कुचला जा सका।

उधर राजस्थान के मेवाड़ में भील आन्दोलन को संगठित मोतीलाल तेजावत ने किया। उन्होंने अपने आपको महात्मा गाँधी का प्रतिनिधि बताया। जिससे इन्हें भारी जन समर्थन मिला। मेवाड़ राज्य की पुलिस ने बड़ी बेदर्दी से आंदोलन को कुचलना प्रारंभ किया। भीलों के गांवों में आग लगा दी गयी। किन्तु फिर भी भील आंदोलन ने अपनी प्रचंडता का परिचय दिया और राज्य सरकार को अपनी ताकत का एहसास करा दिया तथा स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस आंदोलन का खास प्रभाव अन्य राज्यों पर पड़ा तथा जन जागृति का अलख आंदोलन की प्रमुख उपलब्धि थी। राजस्थान के मारवाड़ में कृषक आंदोलन को नेतृत्व जयनारायण व्यास ने प्रदान किया। जयनारायण व्यास ने कर न देने का आंदोलन चलाया। जिससे कृषकों में भारी जन आक्रोश फूटा और सारे मारवाड़ में कृषि कर न देने का आंदोलन व्याप्त हो गया।

देशी राज्यों में कृषक आंदोलन मात्र राजस्थान तक ही सीमित नहीं था, यह आंदोलन देश के अन्य देशी राज्यों में भी व्याप्त था। इनसे पंजाब भी अछूता नहीं रहा। पंजाब की फरीदकोट मालेर, कोटला, कालसिया आदि देशी राज्यों में कृषकों की समस्याओं को लेकर आंदोलन राज्य प्रजा मण्डल के द्वारा किये गये। राज्य प्रजा मण्डल ने अपनी प्रगतिशील मांगों को लेकर आंदोलन किये। भू–राजस्व में कमी जनता पर अन्य करों को कम करना ग्रामों में शिक्षा के प्रचार के लिए विद्यालयों की स्थापना आधुनिक अस्पतालों की ग्रामों में स्थापना, ग्रामों को यातायात के साधनों से जोड़ना कृषकों के ऋण माफ करना आदि मांगों को लेकर आंदोलन किये। प्रजा मण्डल राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तथा राजा

की निरंकुश सत्ता की समाप्ति भी चहते थे।

4. **देशी राज्यों में कृषक आंदोलन के विषय में लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

कश्मीर में भी विभिन्न मांगों को लेकर आंदोलन हुए। इनमें सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीति सभी प्रकार की मांगें सम्मिलित थी। कश्मीर की डोंगर देशी राज्य के विरूद्ध बहुसंख्यक मुसलमान जनता ने धार्मिक प्रश्नों को उठाकर आंदोलन किया। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'नेशनल कॉन्फ्रेंस' ने जुलाई, 1931 ई0 को घोर संघर्ष छेड़ा। सारे कश्मीर राज्य में तीव्र साम्प्रदायिक आंदोलन फैलाने लगा। मुसलमानों ने श्रीनगर जेल पर आक्रमण कर दिया। जिसके फलस्वरूप गोलियाँ चली और अनेक लोग मारे गये। साम्प्रदायिक रंग में रंगें लोगों ने सरकारी कर्मचारियों पर हमले करना प्रारंभ कर दिये। मजबूरी में कश्मीर नरेश को ब्रिटिश फौज बुलाकर आंदोलन को शांत करना पड़ा। कश्मीर राज्य ने आंदोलनकारियों की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करते हुए एक आयोग गठित किया। जिसकी सिफारिश पर मुस्लिम शिक्षा के राज्य में प्रसार–प्रचार धार्मिक भवनों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना, चराई कर निलंबित करना, श्रमिकों का बकाया भुगतान करना आदि को मंजूर किया गया। कश्मीर राज्य में आंदोलनकारियों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर साम्प्रदायिक दायरे तक ही सीमित था।

दक्षिण के देशी राज्यों में भी राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रश्नों को लेकर जन आंदोलन हुए। मैसूर राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जन आंदोलन हुआ। अप्रैल, 1938 ई0 को मैसूर राज्य के विदुरास्वथ ग्राम में उग्र राजनैतिक आंदोलनकारियों एवं राज्य शासन के मध्य घोर तनाव उत्पन्न हो गया और इसी प्रक्रिया में आंदोलनकारियों को नियंत्रित करने के लिए पुलिस ने गोलियाँ चलायी। जिसमें अनेक आंदोलनकारी मारे गये। सरदार पटेल के सक्रिय हस्तक्षेप के बाद ही आंदोलन शांत हो सका था।

पूर्वी भारत के उड़ीसा प्रान्त के देशी राज्यों में भी आंदोलनों ने जोर पकड़ा। यहाँ भी आंदोलनकारी महात्मा गांधी के असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलनों से वैचारिक उर्वरा शक्ति प्राप्त कर रहे थे। उड़ीसा के देशी राज्य में 1938–39 ई0 में समाजवादी कांग्रेस के

नेताओं ने खासा प्रभाव आम जनता पर डाला और सारे उड़ीसा राज्य में आम जनता एवं जनजातियों को जागृत कर घोर आंदोलन किया। उड़ीसा राज्य में आंदोलनकारियों की प्रमुख मांगों में बेगार प्रथा समाप्त करना वनोत्पादों पर कर माफी उपहार कर से मुक्ति किराया संबंधी अधिकार उत्तरदायी सरकार जनता के राजनैतिक अधिकारों की बहाली आदि थी। उड़ीसा में समाजवादी एवं साम्यवादी दोनों आम जनता के लिए संघर्ष कर रहे थे, कृषकों की मांगों को लेकर भी भारी संघर्ष हुआ और इस संघर्ष से देशी राज्यों में राजनैतिक एवं कृषक समस्याओं को लेकर भारी जनांदोलन हुए।

दक्षिण भारत में त्रावणकोर, कोचीन और मालाबार में भारी राजनैतिक आंदोलन हुए। यहाँ 1935 – 38 ई0 में मध्य कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने सक्रिय राजनैतिक भूमिका का निर्वहन किया। 1938 ई0 में त्रावणकोर राज्य के दीवान के विरूद्ध भारी राजनैतिक आंदोलन हुआ। आंदोलन इतना प्रबल था कि, सारे केरल के लोग इसमें कूद पड़े। केरल के छात्रों ने भी भारी संख्या में इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभायी।

दक्षिण भारत के ही त्रावणकोर राज्य में सामाजिक समानता के लिए निम्न जातियों ने जबरदस्त आंदोलन किये। निम्न जातियों के सामाजिक एवं शैक्षणिक उत्थान, सार्वजनिक मांगों पर निम्न जातियों को चलने का अधिकार, हिन्दू मंदिरों में निम्न जातियों के प्रवेश संबंधी अनेक ऐसी समस्याओं और अधिकारों को लेकर त्रावणकोर के वायकोम नामक ग्राम से आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसी कारण इस आंदोलन को वायकोम सत्याग्रह का नाम दिया गया। त्रावणकोर राज्य के वायकोम ग्राम में एक बड़ा मंदिर था और मंदिर की चार दीवारों के चारों ओर मंदिर की ही सड़के थीं। इन सड़कों पर और मंदिर पर निम्न जातियों के लोग प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए केरल राज्य कांग्रेस ने छुआछूत के विरूद्ध सशक्त आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया। मार्च, 1924 ई0 को केरल कांग्रेस के नेतृत्व में संवर्ण और अछूत हिन्दुओं ने मिलकर एक जूलूस लेकर मंदिर में पहुंचे। इसकी खबर से सारा राज्य सन्न रह गया। तुरंत ही अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक संगठनों ने इसको अपना समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। मंदिर प्रबंध को एवं सरकार ने आंदोलनकारियों की गतिविधियों पर रोक लगाने का प्रयास किया। अनेक सत्याग्राहियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

अगस्त, 1924 ई0 में महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी ने सिंहासन संभाला और वायकोम आंदोलन के सत्याग्राहियों को मुक्त कर दिया। अक्टूबर, 1924 ई0 में पुनः मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन प्रारंभ हुआ और अनेक लोगों ने जत्थों में एकत्रित होकर महारानी से मंदिर प्रवेश की मांग की किन्तु महारानी ने इन्कार कर दिया। मार्च, 1925 ई0 में महात्मा गांधी ने केरल पहुंचकर एक मध्यम मार्गीय समझौता कराया और निम्न वर्ग के लोगों के लिए मंदिर की सड़कों पर चलना स्वीकार कर लिया। किन्तु मंदिर प्रवेश की इजाजत अभी निम्न वर्गो को नहीं मिली।

केरल में ही 'केरल कांग्रेस' ने के0 केलप्पण की मांग पर 1931 ई0 में मंदिर प्रवेश आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय लिया। यह आंदोलन गुरूवायूर में मंदिर प्रवेश को लिए सत्याग्रह छेड़ने से प्रारंभ होना था। इसीलिए इस आंदोलन को 'गुरूवायूर सत्याग्रह' आंदोलन के नाम से जाता है। केरल के अनेक भागों से जत्थों और जुलूसों के रूप में अनेक नेताओं ने मंदिर प्रवेश के लिए पैदल यात्राऐं निकालना प्रारंभ कर दिया। सारे केरल में सभी जातियों ने इसका समर्थन किया और आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन लगातार पकड़ता गया और 21 सितम्बर, 1932 ई0 को के0 केलप्पण आमरण अनश्न पर बैठ गये। महात्मा गांधी के अनेक बार अनुरोध करने पर ही 2 अक्टूबर, 1932 को केलप्पण ने अनशन तोड़ा इसके बाद भी आंदोलन जारी रहा। इन प्रयासों के बाद भी निम्न जातियों के लिए मंदिरों के द्वार नहीं खुले। किन्तु फिर भी यह आंदोलन सकारात्मक प्रभाव छोड़ने में सफल रहा। जिसके परिणाम कालान्तर में सकारात्मक निकले।

दक्षिण भारत में ही देश का सबसे बड़ा देशी राज्य हैदराबाद राजनैतिक आंदोलनों का केन्द्र बना। यहाँ के निजाम शासकों ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू जनता को जबरन धार्मिक एवं भाषायी रूप से प्रताड़ित किया। हिन्दुओं पर जबरन इस्लाम और उर्दू भाषा लादी गयी। इसके विरूद्ध जोरदार धार्मिक एवं राजनैतिक आंदोलन हैदराबाद राज्य में हुए।

5. **इस काल में दक्षिण भारत में हुए आंदोलनों के विषय में लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.4.1 भारतीय रियासतों में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रारम्भिक विकास

1905, 1913 तथा 1915 में मेवाड़ के अधीन परमारों द्वारा शासित जागीर बिजौलियां में किसानों ने सामूहिक खेती करने की बाध्यता के विरुद्ध आन्दोलन कर दिया। 1913 में इस

आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीताराम दास तथा 1915 में सचिन सान्याल के दल से सम्बद्ध रह चुके भूतपूर्व क्रान्तिकारी भूप सिंह उर्फ़ विजय पथिक ने किया। विजय पथिक और माणिकलाल वर्मा ने 1916 में उदयपुर राज्य में कर अदायगी न करने वाले आन्दोलन का नेतृत्व किया।

कुछ प्रगतिशील रियासतों (जैसे मैसूर, त्रावनकोर, कोचीन, ग्वालियर, इंदौर, बड़ौदा, बीकानेर आदि) को छोड़कर लगभग सभी क्षेत्रों में भारतीय रियासतें ब्रिटिश भारत की तुलना में अधिक पिछड़ी हुई रहीं। अपनी प्रजा पर करों का बोझ लादने में भारतीय रियासतों ने अंग्रेज़ों की शोषक कर नीति को भी पीछे छोड़ दिया था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारतीय रियासतों की राजनीतिक परिस्थितियों में कुछ बदलाव आया। ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र से बचने के लिए कुछ क्रान्तिकारी आतंकवादियों ने छुपकर भारतीय रियासतों में शरण ली थी और वो वहीं से अपना आन्दोलन चलाने लगे थे जिसके कारण पहली बार भारतीय रियासतों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध वातावरण विकसित होने लगा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय रियासतों की सेनाएं लड़ाई के मोर्चों पर विदेश भेजी गई जहां कि उनके सैनिकों को पहली बार वाह्य विश्व की गतिविधियों की जानकारी मिली और फिर इन सैनिकों ने लौटकर अपने–अपने राज्यों में राजनीतिक चेतना का प्रसार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों ने घोषणा की थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए युद्ध में भाग ले रहे हैं। अगस्त, 1917 में मॉन्टेग्यू की घोषणा में भारत में स्वशासन स्थापित किए जाने की मांग को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया था। अब भारतीय रजवाड़ों की प्रजा में भी राजनीतिक सुधार की मांग करने का साहस विकसित होने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान रूस के सदियों पुरानी ज़ारशाही का दर्दनाक तरीके से उन्मूलन हो गया और सर्वहारा वर्ग की साम्यवादी सरकार स्थापित हो गई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी, ऑस्ट्रिया, तुर्की में राजतन्त्र की जगह लोकतन्त्र स्थापित हो गया। इन परिस्थितियों में भारतीय रजवाड़े अपनी प्रजा की सुधार की मांगों की नितान्त उपेक्षा नहीं कर सकते थे और उनकी संरक्षक ब्रिटिश भारतीय सरकार और इंग्लैण्ड की गृह सरकार भी आँख मूंद कर और कान बन्द कर उनके द्वारा अनवरत राजनीतिक दमन की गतिविधियों को अनदेखा और अनसुना नहीं कर सकती थी। देश के सबसे लोकप्रिय नेता महात्मा गांधी खुद गुजरात की एक छोटी सी रियासत के दीवान के बेटे थे। इन परिस्थितियों भारतीय रियासतों की जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्पर्क में आना स्वाभाविक था।

3.4.2 भारतीय रियासतों में प्रजा मण्डलों की स्थापना

असहयोग आन्दोलन के दौरान तथा उसके बाद के काल में भारतीय रियासतों में प्रजा मण्डलों की स्थापना की गई। इन प्रजा मण्डलों का उद्देश्य देशी राज्यों में राजनीतिक उदारीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करना तथा नागरिक अधिकारों में वृद्धि कराना था।

1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में हकीम अज़मल खां की अध्यक्षता में भारतीय रियासतों में स्वशासन स्थापित किए जाने मांग की गई। अनेक भारतीय रियासतों ने समय का रुख पहचानते हुए अपनी रियासतों में राजनीतिक दलों को अपनी गतिविधियां करने की छूट दे दी। खिलाफ़त और असहयोग आन्दोलन के समय भारतीय रियासतों में भी वहां की प्रजा ने राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया। बड़ौदा, जामनगर, इंदौर, नवानगर, काठियावाड़, मैसूर और हैदराबाद के शासकों ने अपने–अपने राज्यों में प्रजामण्डलों की स्थापना में कोई बाधा नहीं डाली परन्तु कुछ समय के बाद सरकार के दबाव में आकर भारतीय शासकों ने अपने राज्यों में राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। कांग्रेस जैसे राष्ट्रीय दलों ने प्रजा मण्डलों की गतिविधियों पर नियन्त्रण लगाने की भारतीय शासकों की नीति को उनके राज्य का आन्तरिक मामला समझकर उसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। प्रशासनिक सक्षमता के प्रति बहुत कम भारतीय शासक अपने दायित्व का निर्वाह करते थे। अनेक गवर्नर–जनरलों ने भारतीय शासकों को समय–समय पर अपनी प्रजा के कल्याण के प्रति उनके कर्तव्यों का बोध कराया था। नागरिकों को शान्ति और सुरक्षा प्रदान करना और कानून की दृष्टि में सबको समान समझना एक कुशल शासक के लिए अनिवार्य होना चाहिए था। शासन के स्तर में सुधार अधिक से अधिक लोकतान्त्रिक मूल्यों के समावेश से ही यह सम्भव हो सकता था।

मेवाड़ के विजय पथिक और माणिक लाल वर्मा दोनों ही कांग्रेस से सम्बद्ध रहे। इन दोनों के प्रयास से बिजौलियां में 1922 में खालसा ज़मीन पर अतिरिक्त करों तथा बेगार में कमी की गई। मोतीलाल तेजावत ने मेवाड़ के भीलों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संगठित किया। मारवाड़ में जयनारायण व्यास के नेतृत्व में कर अदायगी न करने वाला आन्दोलन हुआ और अलवर राज्य के नीमूचना में 1925 में किसानों ने भूमिकर में 50 प्रतिशत वृद्धि का विरोध करते समय राजा की सेना तथा ब्रिटिश पुलिस की गोलीबारी में 1000 से भी अधिक लोग मारे गए और 600 से अधिक घायल हुए। जयनारायण व्यास की एक कविता *क्या चाहते हैं* में उनकी ग्रामस्वराज्य सम्बन्धी योजनाओं, स्वायत्त शासन तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग और भारतीय रियासतों की प्रजा की आकांक्षाओं की प्रतिध्वनि है –

बतावें तुम्हें हम कि क्या चाहते हैं,
हकूमत का ढंग कुछ नया चाहते हैं।
मुकर्रर करें पंच हर गांव में हम,
उन्हें इन्तज़ाम हम, दिया चाहते हैं।
हो हर ही जिले में हमारी हुकूमत,
दे मत, हम उसे, चुन लिया चाहते हैं।
मुकम्मिल रहे, हम पे ही जिम्मेवारी,

प्रजा की हुकूमत किया चाहते हैं।
न रिश्वत रहे और बेगार मिट जाए,
किसानों को राहत दिया चाहते हैं।
सही बात लिखने, व कहने व मिलने,
की आज़ादी हासिल, किया चाहते हैं।

1927 में बिजौलियां में नए चुंगी कर तथा बेगार को लेकर विजय सिंह पथिक, माणिकलाल वर्मा तथा हरिभाऊ उपाध्याय ने सत्याग्रह किया। विजय सिंह पथिक एक श्रेष्ठ हिन्दी कवि भी थे। उनकी कविताओं में राणा प्रताप के संकल्प की प्रतिध्वनि है और त्याग–बलिदान की भावना का सन्देश है। उनकी एक कविता *राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानियों का संकल्प* का यहां उल्लेख समीचीन है –

रेशम समझकर रेजियों को ही सदा अपनाएंगे,
वे भी न यदि हमको मिली तो भस्म देह रमाएंगे।
सूखे चने खाने पड़ें, पकवान गिनकर खाएंगे,
आसन न होगा, घास–पत्ते या पयाल बिछाएंगे।
क्या विघ्न के राक्षस हमें, भय का प्रपंच दिखाएंगे,
हम देश हित, यमराज से भी, मुदित, हाथ मिलाएंगे।
तिल–तिल अगर कटना पड़े, निर्भय, खड़े कट जाएंगे,
पर वीर राजस्थान का, हरगिज़ न नाम डुबाएंगे।।

त्रावनकोर में 1921 में विधान परिषद में निर्वाचित सदस्य बहुमत में थे। पुडुकोट्टाइ तथा कोचीन में भी जन–प्रतिनिधियों को स्वशासन का दायित्व प्रदान किया गया था। ग्वालियर, हैदराबाद, इंदौर, बड़ौदा, बीकानेर आदि राज्यों में विधान परिषदों की भूमिका केवल राज्य की सलाहकार के रूप में भी शासन में उनकी हिस्सेदारी या उनका कोई दायित्व नहीं था।

6. देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों की स्थापना पर लेख लिखिये–

....
....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) भारतीय रियासतों में कुशासन के लिए ब्रिटिश भारतीय सरकार का दायित्व।

(ख) बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में राजपूताना की रियासतों में किसान आन्दोलन।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार द्वारा कब संरक्षण और सुरक्षा प्रदान की गई थी?

(ii) 1921 में किस भारतीय रियासत की विधान परिषद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत था?

3.4 भारतीय रियासतों में स्वतन्त्रता संग्राम

3.4.1 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' का गठन

दिसम्बर, 1927 में गुजरात के बलवन्त राय मेहता तथा मणिलाल कोठारी और बम्बई के जी0 आर0 अभयन्कर ने भारतीय रियासतों के नागरिकों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया जिसके परिणामस्वरूप 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' का गठन हुआ। इससे भारतीय रियासतों की प्रजा की राजनीतिक जागृति में उल्लेखनीय विकास हुआ। 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' के प्रथम सत्र में ही भारतीय रियासतों को अपने यहां जनता को स्वशासन प्रदान करने की दिशा में ठोस कदम उठाने तथा राजनीतिक सुधार करने के लिए प्रेरित किया गया। विधान परिषद के निर्वाचित सदस्यों को शासन में दायित्वपूर्ण भूमिका दिए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट ने जिस प्रकार प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की थी कुछ वैसी ही व्यवस्था अपने राज्यों में करने की अपेक्षा भारतीय शासकों से भी की गई। कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका में अलगाव की भी मांग की गई तथा वित्त एवं सामान्य प्रशासन पर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का नियन्त्रण स्थापित किए जाने की भी मांग की गई।

'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' एक ओर भारतीय रियासतों में राजनीतिक सुधार के लिए और संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना के लिए आन्दोलन कर रही थी वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे उत्तरदायी सरकार की स्थापना हेतु हो रहे आन्दोलन से भी स्वयं को सम्बद्ध रखना चाहती थी। सर हॉर्कोर्ट बटलर की अध्यक्षता में 'इण्डियन स्टेट्स

कमेटी ने 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' को मान्यता नहीं दी क्योंकि उसकी दृष्टि में जनता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार केवल रियासतों के शासकों का था न कि किसी राजनीतिक दल का। पंजाब रियासती प्रजा मण्डल की 1928 में स्थापना हुई। इसका मुख्य अभियान किसानों पर लगे करों के बोझ को कम करवाना, शिक्षा प्रसार, चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना तथा विभिन्न रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था।
1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने देशी राज्यों को सावधान करते हुए कहा कि उन्हें शेष भारत की राजनीतिक चेतना से अपने राज्यों को अछूता रखने का प्रयास नहीं करना चाहिए और मुख्य राष्ट्रीय धारा से स्वयं को जोड़ कर रखना चाहिए। उन्होंने उनसे अपने–अपने राज्यों की प्रजा को ही अपने भाग्य का निर्धारण करने के अधिकार को मान्यता देने का सुझाव दिया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में पूर्ण स्वराज्य की मांग उठाए जाने का भारतीय रियासतों की जनता ने स्वागत किया था और अपने–अपने राज्यों में निर्वाचन द्वारा चुने गए जन–प्रतिनिधियों की सरकार बनाए जाने की मांग करते हुए रियासतों के शासकों को संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित करने का सुझाव दिया। राजनीतिक दल अनेक रजवाड़ों में राजनीतिक आन्दोलन को दिशा–निर्देश देने के लिए सक्रिय हो गए।
1931 में कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'मुस्लिम कॉन्फ़्रेन्स' द्वारा निरंकुश शासन के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन में साम्प्रदायिक तत्व भी सम्मिलित थे। कश्मीर के हिन्दू महाराजा को बहु संख्यक मुस्लिम प्रजा पर करों का बोझ कम करना पड़ा। 'मुस्लिम कॉन्फ़्रेन्स' को बाद में 'नेशनल कॉन्फ़्रेन्स' में विकसित कर दिया गया। गोलमेज़ सभाओं में 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' ने अपने प्रतिनिधियों को शामिल किए जान की मांग की जिसे ठुकरा दिया गया। गांधीजी ने दूसरी गोल मेज़ सभा में भारतीय शासकों अपने राज्यों में स्वशासन स्थापित करन की सलाह दी पर कांग्रेस ने रियासतों में आन्दोलन करने से आमतौर पर खुद को अलग रखापर कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारधारा के पोषक दल ने रियासतों में निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासनप्रणाली को बदलने की मांग की।

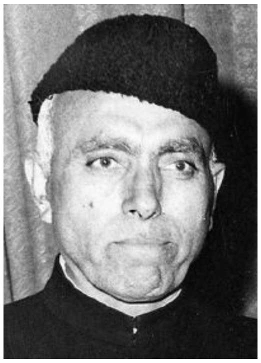
शेख अब्दुल्ला

1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में भारतीय रियासतों को संघीय शासन में शामिल करने का प्रावधान रखा गया किन्तु संघीय विधान मण्डल में रियासतों के प्रतिनिधियों को चुनाव के द्वारा नहीं अपितु शासकों द्वारा मनोनीत सदस्यों के रूप में आना था। परन्तु इस एक्ट के बाद संघीय शासन लागू नहीं हो सका।

1938 के हरिपुर के अधिवेशन में कांग्रेस ने रियासतों में राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारों की मांग रखी। 1939 में पण्डित नेहरू ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष बने। मार्च, 1939 में सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में रियासतों

में राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारों की कांग्रेस की मांग को दोहराया और रियासतों में चल रहे आन्दोलनों के प्रति अपना समर्थन जताया। अब प्रजा मण्डल आन्दोलन विधिवत् मुख्य राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से जुड़ गया।

मैसूर राज्य में संवैधानिक सुधारों के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया गया। उड़ीसा में तालवर और ढेंकानल आदि क्षेत्रों में शासकों की शोषक एवं दमनकारी नीतियों के विरुद्ध आन्दोलन हुए।

हैदराबाद में 'आंध्र महासभा' आर्य समाज और हिन्दू महा सभा ने 1938 में आसफ़जाही निज़ाम की सेवाओं में हिन्दुओं के लिए अधिक स्थानों की मांग की। स्वामी रामानन्द तीर्थ, गोविन्द दास श्रौफ़, रवि नारायण रेड्डी तथा सिराजुल हसन तिरमिजी ने 1938 में राज्य कांग्रेस का गठन किया और निज़ाम से उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मांग की। रविनारायण रेड्डी ने साम्यवादियों से मिलकर तटीय आंध्र प्रदेश में आन्दोलन किया जो बाद में पूरे तेलंगाना में फैल गया।

त्रावनकोर में 1938 में छात्रों तथा श्रमिकों के नेता कृष्ण पिल्ले ने मिलकर आर्थिक सुधारों तथा उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु आन्दोलन किया।

त्रावनकोर के हिन्दू शासक ने इसाइयों, हैदराबाद के मुस्लिम शासक ने हिन्दुओं और कश्मीर के हिन्दू शासक ने मुसलमानों पर आरोप लगाया कि वो उनके राज्यों में साम्प्रदायिकता की भावना से प्रेरित होकर आन्दोलन कर रहे हैं।

1939 से रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों ने गति पकड़ ली। गांधीजी, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू तथा आचार्य कृपलानी ने रियासतों में संवैधानिक एवं राजनीतिक सुधारों के लिए किए जा रहे आन्दोलनों को अपना समर्थन दिया। सरदार पटेल, यू0 एन0 डेबर तथा सेठ जमनालाल बजाज ने राजकोट में चल रहे प्रजा मण्डल आन्दोलन में भाग लिया। राजकोट में मार्च, 1939 में स्वयं गांधीजी ने जनता के अधिकारों की मांगो के समर्थन में अनशन किया। द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय शासकों ने नाज़ीवादी, फासीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध जब अंग्रेज़ों के अभियान को अपना सहयोग दिया तो उनकी प्रजा ने उन्हें अपने–अपने राज्यों में निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन की समाप्ति कर उत्तरदायी शासन की स्थापना करने के लिए कहा। 1940 से 1947 तक प्रजामण्डल आन्दोलनों पर कांग्रेस का वर्चस्व रहा। अंग्रेज़ सरकार भारतीय रियासतों की प्रजा को शासकों की दया पर ही छोड़ना चाहती थी। 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव में रियासतों की प्रजा के लिए संवैधानिक सुधारों का कोई प्रावधान नहीं था। परन्तु भारतीय शासकों ने स्वयं रियासतों में कल्याणकारी कार्यक्रम हेतु 'नरेन्द्र मण्डल' की स्थापना की।

7. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स के बारे में आप क्या जानते हें? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.4.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतीय रियासतों में सुधार तथा स्वतन्त्रता की स्थापना

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद 1946 में 'नरेन्द्र मण्डल' (चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज़) के अधिवेशन में संवैधानिक सुधारों का प्रस्ताव रखा गया तथा मौलिक अधिकारों को मान्यता दी गई और अनेक प्रशासनिक, न्यायिक एवं आर्थिक सुधारों के प्रस्ताव भी पारित किए गए। त्रावनकोर, पटियाला, भोपाल, बीकानेर, बड़ौदा, मैसूर, कोचीन, उदयपुर, काठियावाड़, छाबुआ, ओरछा, दतिया, मण्डी, विलासपुर आदि अनेक रियासतों में राजनीतिक एवं आर्थिक सुधार किए गए और शिक्षा प्रसार हेतु कदम उठाए गए। परन्तु टेहरी गढ़वाल तथा कश्मीर में शासकों ने राजनीतिक आन्दोलनों का दमन करने का भरपूर प्रयास किया।

मध्य हिमालय की टिहरी रियासत में राजा की वन–नीति का विरोध हुआ और आन्दोलनकारियों ने आज़ाद पंचायत का गठन किया। 1930 में रवाई परगने में पुलिस ने आन्दोलनकारियों पर गोलीबारी की। 1944 में श्री देव सुमन ने टेहरी की प्रजा के अधिकारों के लिए अपना बलिदान दिया और 1946 में आज़ाद हिन्द फ़ौज से लौटे सैनिकों ने जन–आन्दोलन को नई ऊर्जा प्रदान की।
दौलतराम तथा नागेन्द्र सकलानी ने अन्यायी कर प्रणाली के विरुद्ध जन–आन्दोलन का नेतृत्व किया। 1946 में टिहरी रियासत को प्रजामण्डल को मान्यता देनी पड़ी।

श्रीदेव सुमन

1946 के कैबिनेट मिशन में एक बार फिर सरकार ने रियासतों की प्रजा के अधिकारों तथा हितों की उपेक्षा की। 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' ने इस बात पर ज़ोर डाला कि संविधान सभा में रियासतों की प्रजा को भी प्रतिनिधित्व मिले। भारत को स्वतन्त्रता देते समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासकों को भारत में रहने, पाकिस्तान में रहने अथवा अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने का अधिकार दे दिया जिसका लाभ उठाकर भोपाल, हैदराबाद

तथा त्रावनकोर ने जन–भावना के विरुद्ध फ़ैसले लिए जिनका उनकी प्रजा ने व्यापक विरोध किया। कॉनराड कॉर्नफ़ील्ड के अधीन भारत सरकार के 'पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट' ने भारतीय शासकों को प्रजा की राजनीतिक आकांक्षाओं का दमन कर स्वयं स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश बने रहने के लिए प्रोत्साहित भी किया परन्तु माउन्टबैटन के वाइसराय बनने के बाद ब्रिटिश नीति में बदलाव आया जिससे भारतीय शासकों के अव्यवहारिक किन्तु महत्वाकांक्षी दिवा स्वप्नों पर काफ़ी कुछ नियन्त्रण लग गया।

तेलंगाना में हैदराबाद के निज़ाम की हिन्दू समुदाय तथा तेलगु, मराठी तथा कन्नड़ विरोधी नीतियों का विरोध करने में आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी छापामार लड़ाई लड़ी गई जिसमें 16000 वर्ग मील में फैली लगभग 3000000 की आबादी ने भाग लिया। निज़ाम की मुसलमानों तथा उर्दू भाषा को अत्यधिक महत्व देने तथा जनता पर अन्यायपूर्ण करों का बोझ लादने की नीति, देशमुखों के शोषण तथा निज़ाम के रज़ाकारों के दल के विरुद्ध जन–आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन में साम्यवादियों की भूमिका सराहनीय रही। निज़ाम को विवश होकर अनेक भूमि तथा कर सम्बन्धी सुधार करने पड़े। खेतिहर मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाई गई, किसानों की ज़ब्त ज़मीनें लौटाई गईं और भू–सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित कर अतिरिक्त ज़मीन का भूमिहीनों में वितरण किया गया।

भारत की स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद टिहरी रियासत में सकलाना प्रजामण्डल ने आज़ाद पंचायत की स्थापना की। नागेन्द्र सिंह सकलानी व मौलूराम ने अपनी शहादत से 15 जनवरी, 1948 को टिहरी नगर पर आज़ाद पंचायत का अधिकार होने का मार्ग प्रशस्त किया। बाद में चन्द्र सिंह गढ़वाली के नेतृत्व में आन्दोलन आगे बढ़ाया गया। 1 अगस्त, 1949 को टिहरी राज्य का भारत में विलय हो गया। सरदार पटेल के नेतृत्व में भारतीय रियासतों का भारत में विलय कार्य पूर्ण हुआ।

भारतीय रियासतों में हुए आन्दोलनों में स्थानीय समस्याओं के निवारण की मांग की प्रधानता रही। रियासतों के दमनकारी, स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासन में ऐसा होना स्वाभाविक था किन्तु प्रजामण्डलों की स्थापना से रियासतों की जनता मुख्य राष्ट्रीय धारा से भी जुड़ी। रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों में कांग्रेस ने विशेष रुचि नहीं दिखाई क्योंकि वह आमतौर पर भारतीय शासकों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने से बचना चाहती थी परन्तु समय के साथ–साथ रियासतों में भी राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ और स्वतन्त्रता के लिए साहसिक संग्राम हुआ जिसमें वहां की प्रजा को अन्ततः सफलता मिली।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) भारतीय रियासतों में सुधार के लिए 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' के प्रयास।

(ख) तेलंगाना आन्दोलन।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेन्स का नेता कौन था?

(ii) टेहरी की प्रजा के अधिकारों के लिए 1944 में किसने अपना बलिदान दिया?

3.5 सार संक्षेप

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारतीय रियासतों में नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधारों के लिए आन्दोलन करने का अधिकार नहीं दिया गया। असहयोग आन्दोलन के दौरान तथा उसके बाद के काल में भारतीय रियासतों में प्रजा मण्डलों की स्थापना की गई। मेवाड़ के विजय पथिक, माणिक लाल तथा मोतीलाल तेजावत और मारवाड़ जयनारायण व्यास ने जनता को अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संगठित किया। त्रावनकोर, पुडुकोट्टाइ तथा कोचीन में जन–प्रतिनिधियों को स्वशासन का दायित्व प्रदान किया गया था।

दिसम्बर, 1927 'ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' का गठन हुआ। 1931 में कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'मुस्लिम कॉन्फ्रे़न्स' द्वारा निरंकुश शासन के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। हैदराबाद में 'आंध्र महासभा' आर्य समाज और हिन्दू महा सभा ने 1938 में आसफ़जाही निज़ाम की सेवाओं में हिन्दुओं के लिए अधिक स्थानों की मांग की। रविनारायण रेड्डी ने साम्यवादियों से मिलकर तटीय आंध्र प्रदेश में आन्दोलन किया जो बाद में पूरे तेलंगाना में फैल गया। त्रावनकोर में 1938 में छात्रों तथा श्रमिकों के नेता कृष्ण पिल्ले ने मिलकर आर्थिक सुधारों तथा उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु आन्दोलन किया। 1939 से रियासतों में राजनीतिक आन्दोलनों ने गति पकड़ ली।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद 1946 में 'नरेन्द्र मण्डल' के अधिवेशन में संवैधानिक सुधारों का प्रस्ताव रखा गया तथा मौलिक अधिकारों को मान्यता दी गई। मध्य हिमालय की टिहरी रियासत में राजा की वन–नीति का विरोध हुआ। भारत को स्वतन्त्रता देते समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासकों को भारत में रहने, पाकिस्तान में रहने अथवा अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने का अधिकार दे दिया जिसका लाभ उठाकर भोपाल, हैदराबाद तथा त्रावनकोर ने जन–भावना के विरुद्ध फ़ैसले लिए जिनका उनकी प्रजा ने व्यापक विरोध किया। तेलंगाना आन्दोलन के कारण निज़ाम को अनेक भूमि तथा कर सम्बन्धी सुधार करने पड़े। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद टिहरी रियासत में सकलाना प्रजामण्डल ने आज़ाद पंचायत की स्थापना की। सरदार पटेल के नेतृत्व में भारतीय रियासतों का भारत में विलय कार्य पूर्ण हुआ।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

मुकर्ररः नियुक्त।

हुकूमतः शासन, आधिपत्य।

रेजियोंः रस्सियों।

रजवाड़ेः राजघराने।

वर्चस्वः प्रभुत्व।

खालसाः केन्द्र अथवा शासक के सीधे नियन्त्रण वाली भूमि।

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

मिश्र, शिवकुमार (चयन एवं संयोजन) – *आज़ादी की अग्निशिखाएं*, नई दिल्ली, 1998

शुक्ल, आर0 एल0 (सम्पादक) – *आधुनिक भारत का इतिहास*, दिल्ली, 1997

मेनन, वी0 पी0 – *दि स्टोरी ऑफ दि इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स*, मद्रास, 1961

आनन्द शर्मा– राष्ट्रवाद का गॉधी युग–दो,राष्ट्रीय आंदोलन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

3.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 3.3.1 भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार द्वारा अविवेकपूर्ण संरक्षण दिए जाने के कुपरिणाम।

   (ख) देखिए 3.3.2 भारतीय रियासतों में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रारम्भिक विकास।

2. (i) 1858 के महारानी के घोषणा पत्र द्वारा।

(ii) त्रावनकोर रियासत में।

1. (क) देखिए 3.4.1 ‘ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स’ का गठन।

(ख) देखिए 3.4.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतीय रियासतों में सुधार तथा स्वतन्त्रता की स्थापना।

2. (i) शेख अब्दुल्ला।

(ii) श्री देव सुमन ने।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. 1858 के महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में भारतीय रियासतों के शासकों को अभयदान दिए जाने के क्या कुपरिणाम हुए?
2. मारवाड़ में हुए भील आन्दोलन के उद्देश्य क्या थे?
3. गांधीजी द्वारा राजकोट मे किए गए आन्दोलन की चर्चा कीजिए।
4. टिहरी राज्य में अपने अधिकारों के लिए प्रजा के संघर्ष का वर्णन कीजिए।
5. तेलंगाना आन्दोलन ने हैदराबाद के निज़ाम को सुधार देने के लिए कहां तक बाध्य किया?

ब्लॉक– दो

इकाई – 1 : माउण्टबैटन योजना, भारत का विभाजन तथा परिणाम

इकाई – 2 : राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में किसान एवं जनजातियां

इकाई – 3 : भारत में समाजवादी विचारों का विकास

ब्लॉक प्रस्तावना :

माउंटबैटन को भारत का विभाजन तथा उसको स्वतन्त्र करने के उद्‌देश्य से मार्च, 1947 में भारत का वाइसराय तथा गवर्नर जनरल बना कर भारत भेजा गया था। 3 जून, 1947 को माउंटबैटन ने अपनी योजना प्रस्तुत की जिसमें पाकिस्तान की स्थापना तथा भारत को स्वतन्त्र किए जाने की योजना थी। प्रमुख भारतीय राजनीतिक दलों ने इसे स्वीकार कर लिया जिसके आधार पर 14 अगस्त को पाकिस्तान की स्थापना कर 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतन्त्र किया गया। मोहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल तथा जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधानमन्त्री बने। विभाजन के दौरान करोड़ों लोगों के स्थानान्तरण के दौरान साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे जिन्हें ब्रिटिश भारतीय सरकार और स्वतन्त्र भारत व पाकिस्तान की सरकारें रोकने में नितान्त असफल रहीं। भारत विभाजन के परिणाम बहुत दुखद रहे।

राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में किसान एवं जनजातीय आन्दोलनों में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चेतना के दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण में मध्यवर्गीय नेतृत्व ने केवल मानवीय दृष्टिकोण से किसानों के हित की बात की। गांधीजी ने चम्पारन तथा खेड़ा में किसानों को उनके अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन किए। सरदार पटेल और जवाहर लाल नेहरू भी किसान आन्दोलनों से जुड़े रहे। बाबा रामचन्द्र की 'अवध किसान सभा' तथा स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व वाली 'अखिल भारतीय किसान सभा' ने समाजवादी विचारधारा से प्रेरित होकर ज़मींदारी उन्मूलन, लगान की दर में कमी तथा किसानों के लिए अन्य आवश्यक अधिकारों के लिए संघर्ष किया। भारतीय रजवाड़ों में भी किसानों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया। बंगाल में तिभागा तथा हैदराबाद राज्य में तेलंगाना आन्दोलन में किसान अपने अधिकार प्राप्त करने में सफल रहे।

अंग्रेज़ों ने वनों का दोहन कर जनजातियों के परम्परागत अधिकारों पर आघात किया। संथाल विद्रोहों में 19वीं शताब्दी के अन्त का बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में किया गया विद्राह यद्यपि कुचल दिया गया परन्तु सरकार को संथालों की कुछ मांगों को स्वीकार करना पड़ा।

इकाई एक : माउण्टबैटन योजना, भारत का विभाजन तथा परिणाम

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 माउंटबैटन योजना

1.3.1 माउंटबैटन योजना प्रस्तुत किए जाने से पूर्व भारत का राजनीतिक परिदृश्य

1.3.2 माउंटबैटन योजना

1.4 भारत का विभाजन

1.4.1 माउंटबैटन योजना को भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकृत किया जाना

1.4.2 इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट

1.5 भारत विभाजन के परिणाम

1.5.1 भारतीय रियासतों के भारत में विलय का प्रश्न

1.5.2 पुनर्वास की समस्या तथा अन्य समस्याएं

1.5.3 साम्प्रदायिक दंगे

1.6 सार संक्षेप

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में यह चर्चा की जा चुकी है कि भारत को स्वतन्त्र किए जाने का मार्ग प्रशस्त हो चुका था तथा परिस्थितियां धीरे–धीरे भारत के विभाजन के लिए अनुकूल होती जा रही थीं। लॉर्ड माउण्टबैटन भारत के हितैषी और पण्डित जवाहर लाल नेहरू के व्यक्तिगत मित्र के रूप में प्रतिष्ठित थे। मार्च, 1947 में लॉर्ड माउण्टबैटन को इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री एटली द्वारा भारत के गवर्नर जनरल के रूप में भेजा जाना भारत में सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया था। इस इकाई में लॉर्ड माउण्टबैटन द्वारा माउण्टबैटन योजना के अन्तर्गत भारत की स्वतन्त्रता का प्रारूप तैयार करने तथा भारत के विभाजन को एक सुनिश्चित एवं व्यावहारिक रूप प्रदान किए जाने के प्रयास का विश्लेषण किया जाएगा तथा भारत विभाजन के दुखद परिणामों का आकलन करते हुए उसके लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना की जाएगी।

1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको भारत विभाजन तथा भारत को स्वतन्त्रता दिए जाने के सम्बन्ध में 1946 और 1947 के प्रारम्भ में हुई गतिविधियों की जानकारी दी जाएगी और भारत के विभाजन के परिणास्वरूप हुए विनाश और नरसंहार की चर्चा भी की जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप अवगत होंगेः

- माउंटबैटन योजना के प्रस्तुत किए जाने से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति और इस योजना के प्रावधानों के विषय में।
- भारत के विभाजन के निर्णय को सभी प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद भारत की स्वतन्त्रता तथा उससे पूर्व ही भारत के विभाजन होने के विषय में।
- भारत विभाजन के फलस्वरूप भयंकर विनाश तथा नरसंहार और उसके लिए उत्तरदायी कारकों के विषय में।

1.3 माउंटबैटन योजना

1.3.1 माउंटबैटन योजना प्रस्तुत किए जाने से पूर्व भारत का राजनीतिक परिदृश्य

जुलाई, 1945 में स्थापित एटली की लेबर दल की सरकार के यह बात समझ में आ गई थी कि विश्वयुद्ध से जीर्ण–क्षीण, आर्थिक दृष्टि से विपन्न और सामाजिक दृष्टि से छिन्न–भिन्न हो गए अपने देश की आन्तरिक समस्याओं का निवारण करने के स्थान पर विरोध तथा विद्रोह की भावना से परिपूर्ण और खुद अपनी समस्याओं में उलझे औपनिवेशिक साम्राज्य को बनाए रखने का प्रयास करना मूर्खता होगी। 20 फ़रवरी, 1947 को प्रधानमन्त्री एटली ने हाउस ऑफ कॉमन्स में यह घोषणा की –

महामहिम की सरकार की इच्छा कैबिनेट मिशन की योजना के अनुरूप भारत में सभी दलों

की संस्तुति प्राप्त संविधान द्वारा बनाई गई सरकार को सत्ता हस्तान्तरित करने की है। हम जून, 1948 तक सत्ता हस्तान्तिरित कर देंगे। परन्तु यदि इस तिथि से पहले ऐसा संविधान नहीं बना तो महामहिम की सरकार भारतीय जनता के हितों को ध्यान में रखकर इस बात पर विचार करेगी –

कि ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय सरकार की ज़िम्मेदारी इस सुनिश्चित तिथि तक किसे सौंपे, क्या पूरी शक्ति केन्द्रीय सरकार को सौंप दे या फिर कुछ क्षेत्रों में विद्यमान प्रान्तीय सरकारों को सौंप दे।

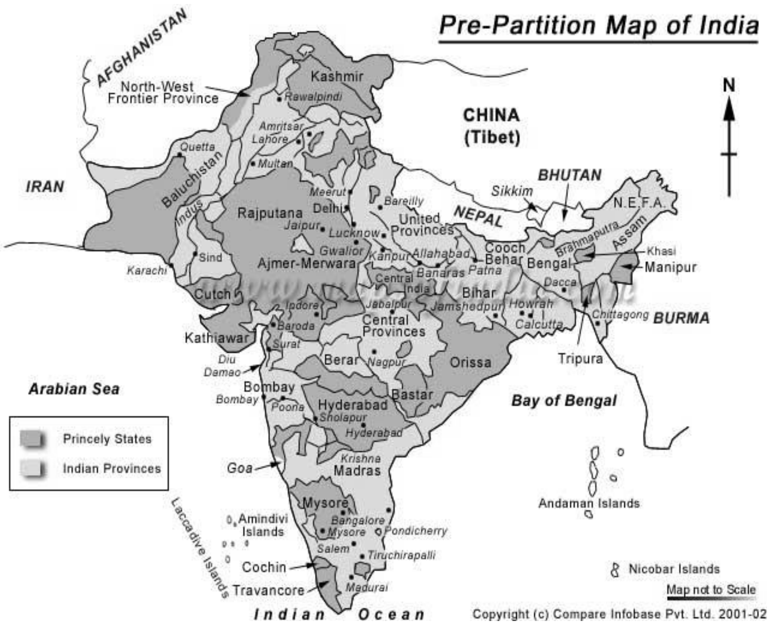

विभाजन से पूर्व भारत का मानचित्र

एटली की घोषणा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लिए एक चुनौती थी और यह स्पष्ट संकेत था कि यदि कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग सरकार के गठन पर आपस में राज़ी नहीं होते हैं तो ब्रिटिश *सरकार भारत को अनेक स्वतन्त्र एवं सम्प्रभुता प्राप्त* राज्यों में विभाजित कर देगी। लॉर्ड वेवेल भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों का, विशेषकर कांग्रेस का, विश्वास जीतने मे असफल रहा था। वेवेल का कैबिनेट मिशन योजना के कार्यान्वयन तथा सुधार से पहले हिन्दू–मुस्लिम मसले के हल पर अड़े रहना भी तत्कालीन परिस्थितियों में कठिन होता जा रहा था अतः प्रधानमन्त्री ने लॉर्ड वेवेल का स्थान लेने के लिए एडमिरल माउंटबैटन का नाम घोषित किया और उन्हें यह दायित्व सौंपा कि वो भारतीय जनता के हितों और भविष्य में उनके सुख का ध्यान रखते हुए भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने की प्रक्रिया को सम्पन्न करें।

गांधीजी और जवाहर लाल नेहरू ने एटली की घोषणा का स्वागत किया। 8 मार्च, 1947 को कांग्रेस की कार्य समिति ने सत्ता हस्तान्तरण की घोषणा का स्वागत करते हुए यह मांग की कि वर्तमान अन्तरिम सरकार को अधि–राज्य सरकार के पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिए जाएं, सेनाओं तथा प्रशासन पर उसका पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर दिया जाए और वाइसराय को केवल संवैधानिक प्रमुख रहने दिया जाए। कार्य समिति ने संविधान को स्वीकार करने वाले किसी भी प्रान्त अथवा उसके हिस्से का संघ में शामिल होने के अधिकार का समर्थन किया और इसने पंजाब को दो भागों में विभाजित करने का प्रस्ताव रखा। इसने मुस्लिम

लीग को नई परिस्थितियों में विचार–विमर्श करके विवादों को आपस में निबटाने का निमन्त्रण दिया।

मुस्लिम लीग ने इस घोषणा का इसलिए स्वागत किया क्योंकि सरकार ने आवश्यकता पड़ने पर सत्ता हस्तान्तरण एक केन्द्रीय शक्ति को करने के स्थान पर अधिक शक्तियों को किया जा सकता है। इससे उसकी पाकिस्तान की स्थापना की मांग को बल मिला।

ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में पूर्व भारत सचिव टैम्पिलवुड ने इसकों पूर्ण आत्म समर्पण कहा और जॉन साइमन ने शान्तिपूर्ण सत्ता हस्तान्तरण को असम्भव बताया परन्तु स्टैफ़र्ड क्रिप्स ने इस घोषणा का स्वागत किया।

मुस्लिम लीग को एटली की घोषणा से यह संकेत मिल गया था कि संविधान सभा में सभी राजनीतिक दलों की भागीदारी न होने की स्थिति में केन्द्र के अतिरिक्त प्रान्तों को भी सत्ता सौंपी जा सकती है और मुस्लिम बहुल प्रदेशों को लेकर पाकिस्तान की स्थापना की जा सकती है। अतः उसने सत्ता हस्तान्तरण तक संविधान सभा का बहिष्कार जारी रखने का फ़ैसला किया। मुस्लिम बहुल प्रान्तों में से मुस्लिम लीग की सरकारें केवल बंगाल और सिंध में थी। पंजाब में खिज्र हयात खां की गैर–मुस्लिम लीगी मिली जुली सरकार थी, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में कांग्रेस की सरकार थी। आसाम को बंगाल के मण्डल में रखा अवश्य गया था किन्तु वहां न तो मुसलमान बहुमत में थे और न ही मुस्लिम लीग कां वहां वर्चस्व था। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना का अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पंजाब में हिंसक आन्दोलन का सहारा लिया। मुस्लिम लीग की निजी सेना 'मुस्लिम नेशनल गार्ड' का गठन किया गया और साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काया गया। माउंटबैटन के आने से पहले ही पंजाब की गैर–मुस्लिम लीगी सरकार के प्रधानमन्त्री खिज्र हयात खां ने 3 मार्च को त्याग पत्र दे दिया। 4 मार्च को लाहौर में पाकिस्तान विरोधी आन्दोलन में 13 लोग मारे गए थे। अमृतसर, तक्षिला तथा रावलपिण्डी में भी साम्प्रदायिक दंगे हुए। पंजाब में खिज्र हयात खां के त्यागपत्र के बाद सत्ता पर मुस्लिम लीग अधिकार नहीं हो सका। इससे क्षुब्ध होकर मुस्लिम लीग ने पंजाब और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में साम्प्रदायिक दंगों को भड़काया। असाम के मुसलमानों तथा बंगाल के मुसलमानों को लेकर मुस्लिम लीग ने आसाम में भी दंगे भड़काए।

1. **माउंटबैटन योजना से पूर्व के भारत के राजनीतिक परिदृश्य को बतलाइये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

24 मार्च, 1947 को माउंटबैटन भारत के गवर्नर जनरल तथा वाइसराय बने। उन्होंने भारत आते ही यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार द्वारा शीघ्र ही सत्ता का हस्तान्तरण कर दिया जाएगा। उन्होंने 24 मार्च से अप्रैल के मध्य तक राजनीतिक दलों के नेताओं से विचार–विमर्श किया। गांधीजी, जवाहर लाल नेहरू, मौलाना आज़ाद, आचार्य कृपलाना, कृष्णा मेनन, मोहम्मद अली जिन्ना, लियाक़त अली, बल्देव सिंह, मास्टर तारा सिंह आदि से उन्होंने भेंट की। इसके बाद उन्होंने प्रान्तों के गवर्नरों की एक बैठक बुलाई। सत्ता हस्तान्तरण से पूर्व साम्प्रदायिक समस्या का निवारण आवश्यक था और माउंटबैटन की यह इच्छा थी कि इसकी अन्तिम बार कोशिश अवश्य की जाए। माउंटबैटन तथा कांग्रेस दोनों का यही मानना था कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच मुख्य मतभेद कैबिनेट मिशन के देश को तीन मण्डलों में विभाजित करने के प्रस्ताव तक सिमट गए हैं। कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव में आसाम और बंगाल को एक मण्डल में रखा गया था। कांग्रेस का यह कहना था कि किसी भी प्रान्त को उसकी सहमति के बगैर उसे किसी मण्डल विशेष में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और हर प्रान्त को उस मण्डल में शामिल होने या न होने का अधिकार होना चाहिए जब कि मुस्लिम लीग का कहना था कि उसने कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव को स्वीकार ही इस आधार पर किया था कि तीनों प्रस्तावित मण्डलों में चुनाव और संविधान निर्माण तक उनकी संरचना में कोई परिवर्तन नहीं होगा और मण्डलों में संविधान के निर्माण के बाद ही किसी प्रान्त को उस मण्डल में बने रहने या उससे अलग होने का अधिकार होगा। लीग का यह भी तर्क था कि यदि कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव में कोई भी परिवर्तन होता है तो लीग द्वारा उसको दी गई स्वीकृति स्वतः निरस्त हो जाएगी और चूंकि कांग्रेस ने प्रस्तावों में परिवर्तन करा दिया है अतः मुस्लिम लीग कैबिनेट प्रस्ताव को नामन्जूर करती है। आसाम को लेकर मुस्लिम लीग का इतना गम्भीर होना किसी की भी समझ से परे था क्योंकि यह मुस्लिम बहुल प्रान्त नहीं था। यदि मुस्लिम लीग की विचारधारा को ही आधार बनाया जाता तो आसाम को बंगाल वाले मण्डल में शामिल होने के लिए बाध्य करना न्याय संगत नहीं था। मौलाना आज़ाद का विचार था कि कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मतभेद किसी पंच की मौजूदगी में ही दूर किए जा सकते हैं और इसके लिए उन्होंने माउंटबैटन को पंच बनने का निमन्त्रण दिया और उनके फैसले को मानने का आश्वासन दिया परन्तु जवाहर लाल नेहरू तथा सरदार पटेल ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

देश में साम्प्रदायिक दंगे फैलते जा रहे थे। कलकत्ते के बाद इनका फैलाव नोआखाली, बिहार, बम्बई तथा पंजाब तक हो गया था।

यूरोपियन अधिकारी अब सत्ता हस्तान्तरण की बाट देख रहे थे और एक प्रकार से

उन्होंने काम करना बन्द कर दिया था और जनता को यह जता भी दिया था कि अब वो प्रशासनिक दायित्वों से मुक्त हो गए हैं। इन कारणों से देश में अशान्ति तथा अराजकता फैलना स्वाभाविक था।

वाइसराय की कार्यकारी परिषद में कांग्रेस और मुस्लिम लीग की टकराहट से स्थिति और भी बिगड़ गई थी। कार्यकारी परिषद के सदस्यों द्वारा एक–दूसरे की टांग खींचने से केन्द्रीय सरकार बलकुल असहाय, असमर्थ और निष्क्रिय हो गई थी। मौलाना आज़ाद का अपनी पुस्तक *इण्डिया विन्स फ्रीडम* में यह कहना है कि सरदार पटेल की गृह मन्त्रालय को अपने अधिकार में रखने की ज़िद से मुस्लिम लीग को वित्त मन्त्रालय देना पड़ा। मुस्लिम लीग की ओर से वित्त मन्त्री बने लियाक़त अली ने सरकार की हर नीति और हर कार्य में बाधा डाली।

लियाक़त अली अब सेना के विभाजन की मांग कर रहे थे। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के 'पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट' के षडयन्त्र के कारण भारतीय रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने या न होने की खुली छूट मिल ई थी।

लॉर्ड माउंटबैटन, इस्मे, मीविले तथा एबेल की समिति ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने नेताओं से भेट की। वाइसराय के अधिकारियों में इस्मे तथा एबेल मुस्लम लीग के दावों के साथ सहानुभूति रखते थे। माउंटबैटन ने उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त का दौरा किया जहां मुस्लिम लीग खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां की कांग्रेस की एक साल पुरानी सरकार को भंग कराकर नए चुनाव कराने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर रही थी। अपनी योजना का खाका माउंटबैटन ने जवाहर लाल नेहरू तथा मोहम्मद अली जिन्ना को दिखाया। दोनों को ही इसमें कमियां लगीं। 2 मई, 1947 को माउंटबैटन ने प्रधानमन्त्री के संस्तुति के लिए अपनी योजना लन्दन भेज दी परन्तु जवाहर लाल नेहरू की कटु आलोचना के कारण कृष्णा मेनन की सहायता से योजना का दूसरा खाका तैयार किया गया। अब ब्रिटिश भारतीय सरकार भारत को स्वतन्त्र करने से ज़्यादा खुद भारत के सरदर्द से मुक्त होने के लिए उत्सुक थी इस लिए अब वह जून, 1948 से पहले ही भारत छोड़ने को उत्सुक थी।

1.3.2 माउंटबैटन योजना

कांग्रेस और लीग नेताओं से बात करने के बाद माउंटबेटन लंदन गए और ब्रिटिश सरकार के सामने देश–विभाजन की अपनी योजना पेश की। ब्रिटिश सरकार की सम्मति पाकर वे 31 मई को वापस आए और कांग्रेस तथा लीग नेताओं से बातचीत की। इन नेताओं की स्वीकृत पाकर ब्रिटिश सरकार ने 3जून 1947 को भारत–विभाजन की योजना प्रकाशित कर दी। माउंटबेटन योजना जनसाधारण के शब्दों में 'मन–बाटन' योजना के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन एटली ने इस योजना को इंग्लैंड की संसद में प्रस्तुत कर दिया। इस योजना के अनुसारः

1. हिंदुस्तान को दो हिस्सों, भारतीय संघ और पाकिस्तान में बाँट दिया जाएगा।
2. संविधान–सभा द्वारा पारित संविधान भारत के उन भागों में लागू नहीं किया जाएगा

जो इसे मानने के लिए तैयार न हों।

3. बंगाल और पंजाब में हिंदू तथा मुसलमान बहुसंख्यक जिलों के प्रांतीय विधान सभा के सदस्यों की अलग–अलग बैठक बुलाई जाए और उसमें यदि कोई भी पक्ष प्रांत विभाजन चाहेगा तो विभाजन कर दिया जाएगा।

4. उत्तर–पश्चिमी सीमाप्रांत में जनमत द्वारा यह पता लगाया जाए कि वह भारत के किस भाग के साथ रहना चाहेगा।

5. असम के सिलहट जिले से भी इसी प्रकार जनमत द्वारा निर्णय कराया जाए।

6. भारतीय नरेशों के प्रति पुरानी नीति रहेगी कि सर्वोच्चसत्ता के अधिकार उन राज्यों को वापस लौटा दिए जाएंगे।

2. माउंटबेटन योजना के प्रमुख बिन्दुओं को लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

इस योजना को कांग्रेस तथा मुसलिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया और देश–विभाजन की तैयारी आरंभ हो गई। बंगाल और पंजाब मे जिलों के विभाजन तथा सीमा–निर्धारण का कार्य एक कमीशन के अधीन सौंपा गया जिसकी अध्यक्षता रेडक्लिफ ने की। स्पष्ट है कि माउंटबेटन योजना देश के दो टुकड़े कर देने की योजना थी। साथ ही यह देशी रियासतों को अधिकार देती थी कि अगर वे चाहें तो भारतीय संघ या पाकिस्तान किसी में शामिल न होकर ब्रिटेन के अधीन बनी रह सकती थीं।

माउंटबेटन योजना को कांग्रेस कार्य समिति (कांग्रेस वर्किंग कमेटी) की 3 जून 1947 की बैठक में स्वीकार कर लिया गया था। ऐसी स्थिति में पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के खानबधु और खुदाई खिदमतगार, जो बराबर कांग्रेस का साथ दे रहे थे, बड़ी मुसीबत में पड़ गए। जब कार्य समिति (वर्किंग कमेटी) की बैठक में गाँधी ने भी माउंटबेटन की योजना का अर्थात् देश के बँटवारे की योजना का समर्थन किया तो सीमांत गाँधी अब्दुल गफ्फार खाँ आशचर्यचकित रह गए।

14 जून 1947 को कांग्रेस महासमिति की बैठक में गोविन्द बल्लभ पंत ने देश के विभाजन की माउंटबेटन योजना का स्वीकार करने का प्रस्ताव पेश किया। पंत ने कहा कि यह देश की स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। इससे सुनिश्चित हो जाएगा कि भारतीय संघ में केंद्र को अधिक शक्तिशाली रखा जाएगा। कांग्रेस ने हिंदू, मुसलिम एकता के लिए बड़ी कोशिश की। इस प्रस्ताव का समर्थन आजाद ने किया जो बँटवारे का विरोध करते आ रहे थे। आजाद ने कहा, ''कांग्रेस कार्य समिति का फैसला सही फैसला नहीं है। लेकिन कांग्रेस के सामने कोई और प्रस्ताव का पास होना मुश्किल था। ऐसी हालत में गाँधी ने हस्तक्षेप किया और प्रस्ताव को स्वीकार करने की सलाह दी। इस प्रस्ताव का विरोध करने वाले सिंध कांग्रेस के नेता चौथराम, भिडवानी, पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. किचलू, पुरुषोत्तम दास टंडन, मौलाना हफीजुर्रहमान आदि थे। प्रस्ताव का विरोध करने वालों में कुछ ऐसे लोग भी थे जो सही मायने में हिंदू–मुसलिम एकता के लिए प्रयत्न करते आ रहे थे और इस एकता के जरिए देश की एकता को बचाना चाहते थे। लेकिन प्रस्ताव के विरोधियों में कुछ ऐसे लोग भी थे जो हिंदुओं और मुसलमानों की एकता को असंभव समझते थे और हिंदू सांप्रदायिकता को गले लगाए फिरते थे।

गाँधी, नेहरू और पटेल के समर्थन के बावजूद कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में सर्वसम्मति से पास न हो सका। 161 सदस्यों ने या तो खिलाफ वोट दिया था या वे तटस्थ रहे। मुसलिम लीग की कौंसिल की बैठक माउंटबेटन योजना पर विचार करने के लिए 10 जून 1947 को नई दिल्ली में बुलाई गई। लीग ने भारी बहुमत से योजना को स्वीकार किया। लीग की बैठक में उपस्थित 400 सदस्यों में से 10 सदस्यों ने उसका विरोध किया।

कांग्रेस द्वारा माउंटबेटन योजना को स्वीकार कर लेने के बाद पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के राष्ट्रवादी खुदाई खिदमतगार के नेता अब्दुल गफ्फार खाँ बड़े संकट में पड़ गए। गफ्फार खाँ के नेतृत्व में मांग की गई कि सिर्फ पाकिस्तान या भारतीय संघ में शामिल होने ही के बारे में नहीं बल्कि अलग पठानिस्तान या पख्तूनिस्तान की स्थापना के बारे में भी सीमांत के निवासियों का जनमत लिया जाए। संघ में शामिल होने के बारे में जनमत लेने के समय उन्होंने बहिष्कार (boycott) का नारा दिया। लीग ने घोर सांप्रदायिकता का प्रचार कर और अनेक जाली वोट डलवाकर पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत को पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला करवाया। पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया।

जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वाधीनता विधेयक पेश किया गया। 15 जुलाई को वह बिना किसी संशोधन के हाउस ऑफ कॉमंस द्वारा और 16 जुलाई को हाउस ऑफ लॉर्डस् द्वारा पास कर दिया गया। 18 जुलाई 1947 को उस पर ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर हो गए। इसके अनुसार देश को 15 अगस्त 1947 को दो डोमिनियनों भारत और पाकिस्तान

में बाँट दिया जाएगा। दोनों डोमिनियनों को पूरी स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता सौंप दी जाएगी। 14 अगस्त को पकिस्तान अधिराज्य और 15 अगस्त को भारतीय अधिराज्य की स्थापना होगी। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई। मुहम्मद अली जिन्ना उसके गवर्नर–जनरल और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने। भारतीय संघ की बैठक संविधान सभा की 14 अगस्त का आधी रात को हुई। रात के बारह बजे और 15 अगस्त आरंभ होते ही जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहा, ''आधी रात इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है, भारत जागकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त कर रहा है। एक क्षण ऐसा आता है जो इतिहास में बहुत ही कम आता है जब हम पुराने युग से नए युग में कदम रखते हैं जब एक युग खत्म होता है और जब एक राष्ट्र की अरसे से दबी आत्मा बोल उठती है। यह बहुत ही अच्छी बात है कि इस पवित्र क्षण मे हम भारत उसकी जनता की सेवा और उससे भी बढ़कर मानवता की सेवा करने की सौगंध लेते हैं।''

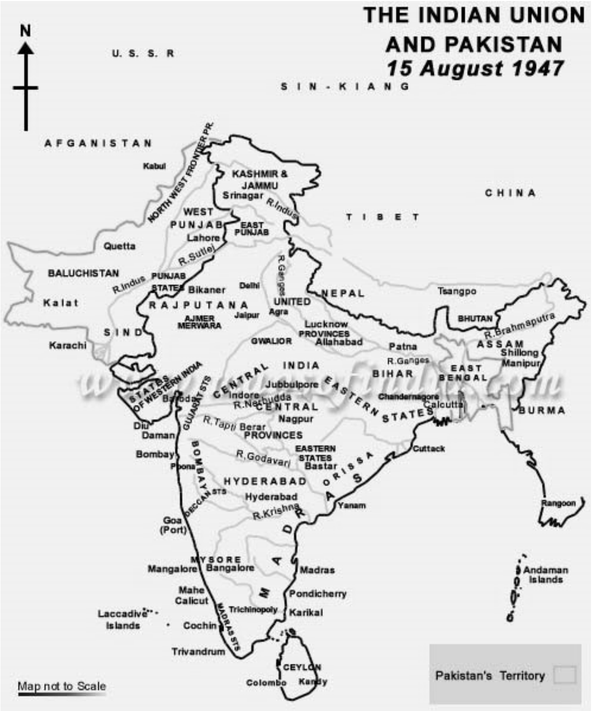

विभाजन के बाद के भारत का मानचित्र

इसी संविधान–सभा ने लॉर्ड माउंटबेटन को स्वतंत्र भारत का गवर्नर–जनरल नियुक्त किया और जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने।

3 जून, 1947 को माउंटबैटन योजना प्रस्तुत की गई। इसकी मुख्य सिफ़ारिशें थीं –

(क) वर्तमान संविधान सभा के कार्य में बाधा नहीं डाली जाएगी किन्तु सभा द्वारा तैयार किए गए संविधान को देश के उन भागों में लागू नहीं किया जाएगा जिनको यह स्वीकार्य नहीं है।

(ख) देश को 15 अगस्त, 1947 को दो स्वतन्त्र राज्यों–भारत–पाकिस्तान में विभाजित किया जाएगा और सत्ता का हस्तान्तरण डोमिनियन स्टेटस के आधार पर किया जाएगा।

(ग) उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत में जनमत संग्रह किया जाएगा जिसके आधार पर उस क्षेत्र के विषय में यह निर्णय लिया जाएगा कि वह भारत में शामिल होगा कि नही।

(घ) भारतीय रजवाड़ों पर से ब्रिटिश सम्प्रभुता समाप्त हो जाएगी और रियासतों को यह छूट दी जाएगी कि वह इन दोनों में से किसी भी राज्य में शामिल हो जाएं या स्वतन्त्र रहें।

(ङ) मुस्लिम बहुमत के जिले सिलहट में जनमत के आधार पर यह फैसला होगा कि वह पूर्वी बंगाल में रहेगा या आसाम में।

(च) बंगाल तथा पंजाब को दो–दो खण्डों (एक मुस्लिम बहुल तथा दूसरा हिन्दू बहुल) में विभाजित किया जाएगा तथा आसाम में जिलों के विभाजन व सीमांकन हेतु एक 'बाउंड्री कमीशन' बनाया जाएगा।

(छ) संविधान सभा द्वारा पारित संविधान को स्वीकार करना या अस्वीकार करने का अधिकार सभी क्षेत्रों को होगा (चाहे वो क्षेत्र प्रान्त हो या उसका कोई भाग हो)। कौन सा प्रान्त या उसका कोई भाग किस देश में शामिल होगा यह उस प्रान्त की विधान सभा द्वारा तय किया जाएगा।

(ज) विद्यमान संविधान सभा को स्वतन्त्र भारतीय संविधान के निर्माण का दायित्व सौंपा जाएगा। पाकिस्तान के लिए अलग संविधान सभा का निर्माण होगा।

(झ) भारत और पाकिस्तान को यह अधिकार दिया जाएगा कि वह राष्ट्र–मंडल में शामिल हों या उससे अलग हो जाएं।

3. माउंटबैटन योजना की मुख्य सिफ़ारिशें लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) 1947 के प्रारम्भ में भारत की राजनीतिक स्थिति ।

(ख) माउंटबैटन योजना के मुख्य प्रावधान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) 1947 में ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री कौन था?

(ii) माउंटबैटन कब भारत के वाइसराय बने?

1.4 भारत का विभाजन

1.4.1 माउंटबैटन योजना को भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकृत किया जाना

कांग्रेस ने 3 जून की रात को तथा मुस्लिम लीग ने 9 जून को माउंटबैटन योजना पर अपनी स्वीकृति दे दी। गांधीजी वाइसराय से मिले तथा उन्होंने भी इस योजना को अपनी स्वीकृति दे दी। 4 जून की प्रार्थना सभा के अपने सम्बोधन में गांधीजी ने भारत विभाजन को दुखद बताया किन्तु इसके लिए वाइसराय को दोषी नहीं ठहराया। इस योजना के अनुसार परतन्त्र भारत को दो स्वतन्त्र राष्ट्रों पाकिस्तान तथा भारत में विभाजित करने का निर्णय लिया गया। और इस प्रकार स्वतन्त्र अखण्ड भारत का स्वप्न धराशायी हो गया। राष्ट्रवाद, धर्म–निर्पेक्षता तथा भारत की एकता के पक्षधरों ने साम्प्रदायिकता, मतान्धता और विघटन के सामने घुटने टेक दिए। गांधीजी ने कहा –

ब्रिटिश सेना की संगीनों के बल पर थोपे गए विभाजन से तो अराजकता बेहतर थी। अशान्ति तथा गृह युद्ध बचाने के लिए भारत का विभाजन किया जा रहा है किन्तु दो दुश्मन पड़ौसी देश, जिनके हित आपस में टकराते हों, उनके क्षेत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय षडयन्त्रों का अड्डा बना देगी।

सरदार पटेल ने विभाजन के निर्णय पर कांग्रेस की स्वीकृति दिए जाने का स्पष्टीकरण देते हुए अपने एक भाषण में कहा –

पिछले एक साल के अपने कार्यकाल के अनुभव ने मुझे इस तथ्य का बोध करा दिया कि जिस तरह हमारा काम चल रहा है, वह हमको विनाश की ओर ले जाएगा तब हमारे पास एक पाकिस्तान नहीं बल्कि कई पाकिस्तान होंगे। हर कार्यालय के कोष्ठों में पाकिस्तान होंगे।

सरदार पटेल ने इस विभाजन के लिए ब्रिटिश सरकार की, सेना तथा भारतीय रियासतों पर 'पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट' के माध्यम से नियन्त्रण रखने की नीति को भी ज़िम्मेदार ठहराया। खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां को विभाजन को कांग्रेस द्वारा स्वीकृति प्रदान किया जाना उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त के निवासियों के साथ विश्वाघात लगा। उन्होंने आरोप लगाया कि कांग्रेस उन्हें भेड़ियों के सामने छोड़ रही है। गोविन्द बल्लभ पंत ने विभाजन के निर्णय के पीछे कांग्रेस के निर्णय की सफ़ाई देते हुए यह कहा कि भारत को विनाश से बचाने के लिए कांग्रेस ने विभाजन के निर्णय को स्वीकार किया है और इस कथन में कुछ सच्चाई भी थी वरना पाकिस्तान की स्थापना के प्रबल विरोधी महात्मा गांधी इस निर्णय पर अपनी हामी नहीं भरते।

मुस्लिम बहुल प्रान्तों में स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी। बंगाल के प्रधानमन्त्री शहीद सुहरावर्दी के जिन्ना से मतभेद हो गए थे। सुहरावर्दी, बंगाल मुस्लिम लीग के सचिव अबुल हाशिम तथा बंगाल के वित्त मन्त्री मोहम्मद अली गांधीजी से सम्प्रभुता प्राप्त एकीकृत बंगाल के विषय में चर्चा करने आए थे। कांग्रेस की ओर से शरत चन्द्र बोस इस प्रस्ताव का समर्थन

किया था। गांधीजी ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की स्वीकृति तथा कार्यकारी तथा विधान सभा में दो तिहाई बहुमत से इस प्रस्ताव को पारित किए जाने के बाद ही अपने समर्थन की शर्त रखी जो कभी पूरी नहीं हो सकी। बाद में सुहरावर्दी के स्थान पर मुहम्मद अली को बंगाल का प्रधानमन्त्री बना दिया गया और उन्होंने मुस्लिम लीग के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट कर दी और 20 जून, 1947 को बंगाल विधान सभा ने विभाजन के प्रस्ताव को अपनी मन्जूरी प्रदान कर दी।

भारतीय सेनाध्यक्ष ऑचिन्लेक तथा पंजाब के गवर्नर दोनों ही को 15 अगस्त को भारत के विभाजन की तिथि निर्धारित करना बहुत जल्दबाज़ी लगी क्योंकि उनकी दृष्टि में शान्तिपूर्ण ढंग से आबादियों की अदला–बदली के लिए कम से कम दो साल का समय चाहिए था। मौलाना आज़ाद ने माउंटबैटन को आगाह किया कि इस समय देश का विभाजन करने से खून की नदियां बह जाएंगी परन्तु माउंटबैटन ने उन्हें आश्वस्त किया कि वो दंगे और खून–खराबा रोकने की पूरी व्यवस्था करेंगे। वाइसराय ने उपद्रवियों पर नियन्त्रण करने के लिए पुलिस, सेना, यहां तक कि वायुसेना के लड़ाकू विमानों के प्रयोग तक का भरोसा दिया। परन्तु वो पंजाब में हिंसा पर काबू पाने में पूर्णतया असफल रहे।

4. माउंटबैटन योजना को भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा क्यों स्वीकृत किया गया, लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4.2 इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट

विषम परिस्थितियों और हिंसक घटनाओं के बीच भारत के विभाजन और उसकी स्वतन्त्रता के निर्णय को कानूनी जामा पहनाया जाना ज़रूरी था। 18 जुलाई 1947 को इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट पारित हुआ। इस एक्ट के प्रमुख प्रावधान निम्न थे:

(क) 15 अगस्त, 1947 से देश के विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्र अस्तित्व में आएंगे।

(ख) एक 'बाउन्ड्री कमीशन' पंजाब व बंगाल प्रांत का सीमांकन करेगा।

(ग) सत्ता का हस्तांतरण दोनों राष्ट्रों के संविधान सभाओं को किया जाएगा जिन्हें अपने देश के संविधान बनाने का पूरा अधिकार होगा।

(घ) दोनों स्वशासित राज्य अपने मंत्रिमण्डलों की सम्मति से अलग–अलग गवर्नर–जनरल नियुक्त करेंगे।

(ङ) भारतीय रजवाड़ों पर से ब्रिटिश ताज की सम्प्रभुता समाप्त कर दी जाएगी और उन्हें विकल्प दिए जाएंगे कि वह भारत या पाकिस्तान किसी एक में शामिल हो जाएं या फिर स्वतन्त्र रहें।

(च) भारत सचिव का पद समाप्त कर दिया जाएगा।

(छ) इण्डियन सिविल सर्विस के अधिकार पूर्ववत् बने रहेंगे। नए संविधान के अनुसार चुनाव होने तक संविधान सभाएं काम करती रहेंगी।

माउंटबैटन को जवाहर लाल नेहरू ने स्वतन्त्र भारत के गवर्नर जनरल का पद सम्भालने का निमन्त्रण दिया। माउंटबैटन एक साथ दोनों ही देशों के राज्य प्रमुख बने रहना चाहते थे क्योंकि दोनों देशों में विवाद के समय वह पंच की भूमिका निभा सकते थे किन्तु जिन्ना ने उनके सुझाव को स्वीकार नहीं किया और उन्होंने स्वयं पाकिस्तान के गवर्नर जनरल का पद ग्रहण करने का निर्णय लिया। सेना, सम्पत्तियों, राष्ट्रीय ऋण आदि के दोनों देशों में बटवारे जैसी बहुत सी समस्याएं थीं जिनका समाधान किए बिना ही विभाजन की जल्दबाज़ी की गई थी। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हो गई। मोहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और लियाक़त अली उसके प्रधानमन्त्री बने। अर्थात भारत को स्वतन्त्रता मिलने से एक दिन पहले ही उसका विभाजन हो गया। भारत के प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू बने और गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबैटन ही बने रहे।

5. इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट की प्रमुख धाराओं को लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) विभाजन के निर्णय पर विभिन्न नेताओं की प्रतिक्रिया।

(ख) इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) मुस्लिम लीग ने माउंटबैटन योजना को कब स्वीकार किया?

(ii) पाकिस्तान की स्थापना कब हुई?

1.5 भारत विभाजन के परिणाम

1.5.1 भारतीय रियासतों के भारत में विलय का प्रश्न

भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश सम्प्रभुता की समाप्ति के बाद उनके भविष्य को लेकर अनिश्चितता का वातावरण बन गया। भारत को स्वतन्त्रता देते समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासकों को भारत में रहने, पाकिस्तान में रहने अथवा अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने का अधिकार दे दिया जिसका लाभ उठाकर भोपाल, हैदाराबाद तथा त्रावनकोर ने जन–भावना के विरुद्ध फ़ैसले लिए जिनका उनकी प्रजा ने व्यापक विरोध किया। कॉनराड कॉर्नफ़ील्ड के अधीन भारत सरकार के 'पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट' ने भारतीय शासकों को प्रजा की राजनीतिक आकांक्षाओं का दमन कर स्वयं स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश बने रहने के लिए प्रोत्साहित भी किया परन्तु माउन्टबैटन के वाइसराय बनने के बाद ब्रिटिश नीति में बदलाव आया जिससे भारतीय शासकों के अव्यवहारिक किन्तु महत्वाकांक्षी दिवा स्वप्नों पर काफ़ी कुछ नियन्त्रण लग गया। जुलाई, 1947 में सरदार पटेल और वी0 पी0 मेनन ने मिलकर भारत सरकार के 'पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट' का काम सम्भाला। इन दोनों ने भारतीय शासकों को भारत में विलय के लिए राज़ी करने के लिए दबाव के रूप में उनके राज्यों में चल रहे जन–आन्दोलनों का उपयोग किया। कश्मीर में 'नेशनल कॉन्फ्रेन्स' के आन्दोलन तथा कबाइली आक्रमण का फ़ायदा उठाकर सरदार पटेल ने कश्मीर के महाराजा हरि सिंह को कश्मीर को भारत में विलय करने के लिए अक्टूबर, 1947 में राज़ी कर लिया। 15 अगस्त, 1947 तक कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद छोड़कर भारत की सभी रियासतों में उसके साथ विलय के समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। भारत सरकार ने उनके आन्तरिक राजनीतिक ढांचे में किसी प्रकार का बदलाव करने का प्रयास नहीं किया और उन्हें सम्मानपूर्ण एवं पर्याप्त

प्रिवीपर्स प्रदान किया। हैदराबाद का नज़ाम तेलंगाना आन्दोलन से जूझने का असफल प्रयास कर रहा था। भारत सरकार ने हैदराबाद में ब्रिगेडियर चौधरी के नेतृत्व में सेना भेजकर (इसको पुलिस कार्यवाही का नाम दिया गया।) निज़ाम को भारत के साथ विलय के लिए विवश किया। जूनागढ़ का मुस्लिम शासक अपनी हिन्दू बहुल प्रजा की इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान में मिलना चाहता था, उसे अपनी रियासत से भाग कर पाकिस्तान जाने के लिए मजबूर किया गया। नवाब भोपाल की महत्वकांक्षाओं को भी नियन्त्रित करके उसके राज्य भारत में विलय किया गया। इस प्रकार सरदार पटेल के नेतृत्व में अंग्रेज़ी शासन द्वारा दी गई एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान किया गया।

6. भारतीय रियासतों का भारत में विलय पर लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.5.2 पुनर्वास की समस्या तथा अन्य समस्याएं

1947–48 में विभाजन के कारण भारत में विश्व इतिहास का सबसे बड़ा जनसंख्या स्थानान्तरण हुआ। सरकार इतने बड़े पैमाने पर भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों से करोड़ों लोगों के तबादले की समस्या का समाधान करने के लिए दोनों देशों की सरकारें न तो तैयार थीं और न ही उनके पास इसके लिए पर्याप्त साधन थे। पंजाब और बंगाल में पुनर्वास की समस्या का हल ढूढ़ने के असफल प्रयास किए गए परन्तु पुनर्वास मन्त्रालय अपने दायित्व का निर्वाह करने में बहुत कम सफल रहा।

भारत के विभाजन के साथ भारतीय सेना का विभाजन भी कर दिया गया परन्तु काफ़ी समय तक सेना की कमान ब्रिटिश जनरल के ही हाथ में रही जिसने अपने दायित्वों के प्रति पूरी तरह आँख फेर ली। कश्मीर पर कबाइली हमले के समय भारतीय सेना की अक्षमता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ी।

नव गठित राष्ट्रों की आर्थिक समस्याओं का कोई अन्त नहीं था। देश के दो टुकड़े हो जाने से समस्याएं घटने के स्थान पर और बढ़ गई थीं। सत्ता लोलुप नेता अब त्याग

और बलिदान की भावना को भुलाकर निजी स्वार्थपूर्ति में लग गए थे और आम जनता उतनी ही बेबस और निरीह थी जितनी कि वह ब्रिटिश शासन में थी।

1.5.3 साम्प्रदायिक दंगे

भारत विभाजन का सबसे दुखद प्रसंग साम्प्रदायिक दंगों का है। धर्म के नाम पर अमानुषिक व्यवहार तथा हिंसा का ऐसा घिनौना नंगा नाच भारत में कभी भी नहीं देखा गया था। नव गठित भारत और पाकिस्तान के सैकड़ों शहरों, कस्बों और गावों में खून की होली खेली गई। लाहौर, अमृतसर, कराची, रावलपिण्डी, कलकत्ता, नोआखाली आदि शहरों में हिंसा का दौर महीनों चला। कितने लोग मारे गए, कितने घायल हुए, कितने घर लूटे गए, कितने घर जलाए गए, कितनी महिलाओं और बच्चियों के साथ पाश्विक व्यवहार हुआ, इसका सही आकलन करना असम्भव है। हिन्दू, मुसलमान और सिख उपद्रवी कुछ हज़ार की संख्या में होंगे पर उन्होंने करोड़ों को कभी न भरने वाले घाव दे डाले। इस त्रासदी का भीष्म साहनी, कर्तार सिंह दुग्गल, अमृता प्रीतम, यशपाल, सआदत हसन मन्टो और खुश्वन्त सिंह जैसे साहित्यकारों ने मार्मिक किन्तु यथार्थवादी चित्रण किया है। महात्मा गांधी भारत की स्वतन्त्रता के समय नोआखाली में साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए अपने प्राण प्रण से लगे हुए थे और उन्हें अपने अभियान में पर्याप्त सफलता भी मिली थी। इस 'फ्रैक्चर्ड इण्डिपेन्डेन्स' ने समाज को भी विखण्डित कर दिया था। विभाजन की विभीषिका केवल 1947 तथा 1948 तक सीमित नहीं रही। 1971 में बांगला देश की स्थापना से यह सिद्ध हो गया कि धर्म के नाम पर दो विभिन्न संस्कृतियों तथा भौगोलिक इकाइयों को जोड़कर नहीं रखा जा सकता तो फिर 1947 में अनादि काल से चली आ रही एक भौगोलिक इकाई और हज़ारों साल से चली आ रही सामाजिक व सांस्कृतिक इकाई को धर्म के नाम पर तोड़ना कहां तक उचित था? इस गलत निर्णय की कीमत हम आज भी चुका रहे हैं। आज भी साम्प्रदायिक ताकतें विभाजन की त्रासदी को भुना रही हैं।

7. भारत विभाजन के दौरान साम्पद्रायिक दंगों पर लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) भारतीय रियासतों का भारत में विलय।

(ख) भारत विभाजन के दौरान साम्पद्रायिक दंगे।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) पुलिस कार्यवाही द्वारा किस शासक को भारत में विलय के लिए बाध्य किया गया?

(ii) भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा के समय गांधीजी कहां थे?

1.6 सार संक्षेप

मार्च, 1947 में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के नए वाइसराय तथा गवर्नर जनरल एडमिरल माउंटबैटन को यह दायित्व सौंपा कि वो भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने की प्रक्रिया को सम्पन्न करें। 3 जून, 1947 को माउंटबैटन योजना प्रस्तुत की गई। इसमें देश को 15 अगस्त, 1947 को दो स्वतन्त्र राज्यों–भारत–पाकिस्तान में विभाजित करने का प्रस्ताव रखा गया और भारतीय रजवाड़ों को आत्म–निर्णय के आधार पर भारत अथवा पाकिस्तान में विलय का या स्वतन्त्र रहने का अधिकार दिया गया।

18 जुलाई 1947 को इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट पारित हुआ। जिसके अन्तर्गत भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र देशों के गठन की घोषणा की गई। भारतीय रजवाड़ों को आत्म–निर्णय का अधिकार दिया गया। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हो गई। मोहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और भारत के प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू बने तथा भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबैटन ही बने रहे।

सरदार पटेल के नेतृत्व में भारतीय राज्यों का भारत में विलय हुआ। 1947–48 में विभाजन के कारण भारत में विश्व इतिहास का सबसे बड़ा जनसंख्या स्थानान्तरण हुआ। देश के दो टुकड़े हो जाने से समस्याएं घटने के स्थान पर और बढ़ गई थीं। नव गठित भारत और पाकिस्तान के सैकड़ों शहरों, कस्बों और गावों में खून की होली खेली गई। भारत विभाजन के गलत निर्णय की कीमत हम आज भी चुका रहे हैं।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

जीर्ण–क्षीणः जर्जर तथा कमज़ोर

मतान्धताः अपने मत के अतिरिक्त सभी मत के अनुयायियों को गलत मानना

बोधः ज्ञान

दिवा स्वप्नः अव्यावहारिक योजनाएं अथवा महत्वाकांक्षाएं

पुनर्वासः फिर से बसाना

फ्रैक्चर्ड इण्डिपेन्डेन्सः खण्डित स्वतन्त्रता

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई 1969

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

मिश्र, शिवकुमार (चयन एवं संयोजन) – *आज़ादी की अग्निशिखाएं*, नई दिल्ली, 1998

शुक्ल, आर0 एल0 (सम्पादक) – *आधुनिक भारत का इतिहास*, दिल्ली, 1997

मेनन, वी0 पी0 – *दि स्टोरी ऑफ दि इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स*, मद्रास, 1961

चन्द्रा, बिपन – *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*, दिल्ली, 1997

मेनन, वी0 पी0 – *दि ट्रांसफ़र ऑफ पॉवर*, बम्बई, 1956

कैम्पबेल, जॉनसन – *मिशन विद माउंटबेटन*, लन्दन, 1951

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, कलकत्ता, 1959

हबीब मंजर–*1945–47 के बीच की राजनीतिक गतिविधियां*, राष्ट्रीय आंदोलन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

1.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 1.3.1 माउंटबैटन योजना प्रस्तुत किए जाने से पूर्व भारत का राजनीतिक परिदृश्य।

   (ख) देखिए 1.3.2 माउंटबैटन योजना।

2. (i) क्लीमेन्ट एटली।

   (ii) 24 मार्च, 1947 को।

1. (क) देखिए 1.4.1 माउंटबैटन योजना को भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकृत किया जाना।

(ख) देखिए 1.4.2 इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स एक्ट।

2. (i) 9 जून, 1947 को।

   (ii) 14 अगस्त, 1947 को।

1. (क) देखिए 1.5.1 भारतीय रियासतों के भारत में विलय का प्रश्न।

(ख) देखिए 1.5.3 साम्प्रदायिक दंगे।

2. (i) हैदराबाद राज्य को।

   (ii) नोआखाली में।

अभ्यास प्रश्न

1. माउण्टबैटन को किस उद्देश्य से भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया था?
2. क्या माउण्टबैटन योजना व्यावहारिक थी?
3. भारत विभाजन के आर्थिक परिणामों की समीक्षा कीजिए।
4. भारत था पाकिस्तान की सरकारों द्वारा भारत विभाजन के निर्णय से प्रभावित जनता के पुनर्वास हेतु प्रयासों का आकलन कीजिए।
5. समकालीन साहित्य में प्रतिबिम्बित विभाजन की त्रासदी का वर्णन कीजिए।

इकाई दो : राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में किसान एवं जनजातियां

2.1 प्रस्तावना
2.2 इकाई के उद्देश्य
2.3 राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान किसान आन्दोलन
2.3.1 ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय किसानों की दयनीय दशा
2.3.2 ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक किसान आन्दोलन
2.3.3 मोपला विद्रोह
2.3.4 नील विद्रोह
2.3.5 बम्बई प्रेसीडेन्सी में हुए किसान विद्रोह
2.3.6 पबना में किसान आन्दोलन
2.3.7 पंजाब में किसान आन्दोलन
2.3.8 भारतीय रियासतों में किसान आन्दोलनों का विकास
2.4. गांधीयुगीन किसान आन्दोलन
2.4.1 चम्पारन तथा खेड़ा आन्दोलन
2.4.2 बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग तथा अवध में किसान आन्दोलन
2.4.3 बारदोली आन्दोलन
2.4.4 आर्थिक मन्दी के दौरान किसान आन्दोलन
2.4.5 किसान आन्दोलनों में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की भूमिका
2.4.6 कांग्रेस की किसान समर्थक नीतियां
2.4.7 तिभागा आन्दोलन
2.4.8 तेलंगाना आन्दोलन
2.4.9 अन्य किसान आन्दोलन
2.5 राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनजातीय आन्दोलन
2.5.1 संथाल विद्रोह
2.5.2 रम्पा विद्रोह
2.5.3 अन्य क्षेत्रों में जनजातीय आन्दोलन
2.5.4 भगत आन्दोलन
2.5.5 जनजातीय आन्दोलनों की प्रकृति
2.6 सार संक्षेप
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 सन्दर्भ ग्रंथ
2.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीयों के आर्थिक शोषण की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। इसका प्रकोप किसानों पर सबसे अधिक पड़ा। ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा भारतीय रियासतों के शासकों ने किसानों पर लगान का अत्यधिक बोझ लादा तथा प्रायः उनके सभी अधिकारों की उपेक्षा की। इस इकाई में ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में हुए किसान आन्दोलनों की तथा उनके राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धों की चर्चा की जाएगी।

सदियों से भारतीय आदिवासियों की अपनी छोटी सी अलग दुनिया थी और बाहरी दुनिया से उनका बहुत कम सम्बन्ध था। ब्रिटिश शासनकाल में उनके परम्परागत वन–अधिकारों पर आघात किया गया तथा उनके धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित करने का प्रयास किया गया। इस इकाई में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी में भारत की स्वतन्त्रता तक हुए जनजातीय आन्दोलनों की चर्चा की जाएगी।

2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हुए किसान तथा जन–जातीय आन्दोलनों की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- ब्रिटिश शासन काल में भारतीय किसानों की शोचनीय आर्थिक दशा के कारण उनमें पनपते हुए विद्रोह की भावना के विषय में।
- ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों में हुए किसान आन्दोलनों की तथा उन पर विभिन्न राजनीतिक दलों एवं विचारधाराओं के प्रभाव के विषय में।
- ब्रिटिश शासकों की वन–दोहन तथा ईसाई मिशनरियों की धर्मान्तरण की नीति के फलस्वरूप जन–जातियों में व्याप्त आक्रोश और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोहों के विषय में।

2.3 राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान किसान आन्दोलन

2.3.1 ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय किसानों की दयनीय दशा

दादा भाई नौरोजी की पुस्तक *पॉवर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया* में आर्थिक दोहन के कुपरिणामों का उद्घाटन किया गया है। विलियम डिग्बी के अनुसार 1854 से 1901 तक अकालों में मरने वालों की संख्या 2 करोड़ 88 लाख थी। डब्लू0 डब्लू0 हंटर के अनुसार लगभग 4 करोड़ भारतीयों को भरपेट भोजन नहीं मिलता था। व्यापक बेरोज़गारी, बहुत कम

वेतन, प्रतिकूल कार्य–परिस्थितियां, कुपोषण, अशिक्षा, महामारी, गंदगी, कुरीतियां यह सब गरीबी के कारण ही फल–फूल रहे थे। खुद को सभ्य कहने वाले अंग्रेज़ों ने भारत की समृद्धि निचोड़ कर उसके निवासियों को पशुवत जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया था । यह ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की ही देन थी कि भारत दुनिया के सबसे पिछड़े और गरीब देशों में गिना जाने लगा था। प्राचीन काल से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक

भारत में भू–राजस्व राज्य की आय का प्रमुख अंग था। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसान की महत्ता अत्यधिक थी। किसी भी शासक की सफलता और उसकी महानता इस बात से आंकी जाती थी कि उसके शासन में कृषि तथा किसानों की दशा कैसी है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में अंग्रेज़ी शासन के प्रारम्भ होते ही किसानों की स्थिति बद से बदतर होती चली गई। किसानों के अधिकारों के प्रति और न ही कृषि विकास के प्रति ब्रिटिश शासन ने कोई ध्यान नहीं दिया। ज़मींदार, लम्बरदार जैसे मध्यस्थों तथा भ्रष्ट राजस्व और ग्राम्य अधिकारियों के सम्मिलित अत्याचार व अनाचार से त्रस्त, करों के बोझ से लदे किसान न चाहते हुए भी महाजनों और साहूकारों के जाल में फंसते चले गए। किसानों को प्राकृतिक आपदाओं के समय कोई राहत नहीं दी गई। नकदी के रूप में भू–राजस्व लिए जाने की व्यवस्था ने उन्हें अपना अनाज व्यापारियों को बेचने के लिए विवश किया जिसका उन्होंने भरपूर लाभ उठाया। कुल मिलाकर ब्रिटिश शासन काल में भारतीय किसान दुखी, विपन्न तथा असुरक्षित था और इस असहाय स्थिति से उबरने के लिए उसका विद्रोह करना स्वाभाविक था। अंग्रेज़ों ने किसानों और ज़मींदारों के पुश्तैनी अधिकारों की सर्वथा उपेक्षा कर ज़मीन को बाज़ार में बिकने वाली वस्तु बना दिया और कृषि तथा गांवों से सर्वथा असम्बद्ध लोगों को उसकी ठेके पर नीलामी की व्यवस्था प्रारम्भ की। अंग्रेज़ों की तीन भू–राजस्व व्यवस्थाओं भूमि के स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवारी और महलवारी, सभी में किसानों के हितों की उपेक्षा की गई थी। अंग्रेज़ों द्वारा संरक्षित एवं पोषित भारतीय रियासतों में भी किसानों की दशा दयनीय थी। अभाव और विपन्नता ने उनका घर कर लिया था और प्राकृतिक आपदाओं का मुकाबला करने की उनकी प्रतिरोधक शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी थी क्योंकि गाढ़े वक्त के लिए कुछ बचा पाने की उनकी हैसियत ही नहीं रह गई थी। ज़मीन जोतने वाले आम किसान प्रायः अपनी ही ज़मीन में खेतिहर मज़दूर बनकर रह गए थे।

1. **ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय किसानों की स्थिति पर लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.3.2 ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक किसान आन्दोलन

1770 के बंगाल के अकाल के दौरान हिन्दू सन्यासियों तथा मुस्लिम फ़कीरों ने

प्रशासनिक अराजकता का लाभ उठाकर लूटपाट शुरू कर दी। उनके साथ अनेक भूखे–नंगे किसान और अपनी ज़मीन से बेदखल किए ज़मींदार भी शामिल हो गए। 1772 में रंगपुर से ढाका तक सन्यासी विद्रोह की आग फैली। लगभग तीन दशकों तक सन्यासी विद्रोह चला। अन्त में अंग्रेज़ सन्यासी विद्रोह को कुचलने में सफल रहे। बंकिमचद्र का प्रसिद्ध उपन्यास *आनन्द मठ* इसी सन्यासी विद्रोह की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है।

किसान आन्दोलनों अथवा किसान विद्रोहों के सामान्य कारण अत्यधिक लगान, लगान में और भी अधिक वृद्धि, कर अदायगी न कर पाने के कारण पुश्तैनी ज़मीनों से बेदखली, साहूकारों, महाजनों की सूदखोरी, ज़मींदारों, बागानों के मालिकों तथा राजस्व अधिकारियों के अत्याचार थे। प्रारम्भ में हुए किसान आन्दोलन तात्कालिक स्थानीय समस्याओं को लेकर हुए थे इसलिए इनमें संगठन और दीर्घकालीन रणनीति का सर्वथा अभाव था। कुशल नेतृत्व के अभाव में इन आन्दोलनों का अपने उद्देश्य में सफल होना और भी कठिन था।

2.3.3 मोपला विद्रोह

केरल के मालाबार तट पर मोपला में 1836 से 1919 के दौरान 32 विद्रोह हुए। इस क्षेत्र के अधिकांश किसान मुसलमान थे और हिन्दू नम्बूदरी तथा नायर समुदायों के शोषण से त्रस्त थे। इन धनाढ्य भू–स्वामियों को पुलिस एवं न्यायालयों का संरक्षण भी प्राप्त था। 1849, 1873, 1880 तथा 1883–85 में मोपला में हुए किसान विद्रोहों ने साम्प्रदायिक दंगों का रूप ले लिया। असहयोग आन्दोलन के दौरान 1921 में मोपला में एक बार फिर आन्दोलन हुआ पर 1922 में असहयोग आन्दोलन को वापस लिए जाने के तथा खिलाफ़त आन्दोलन के असफल हो जाने बाद इसने साम्प्रदायिक राजनीति का स्वरूप ले लिया।

2.3.4 नील विद्रोह

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अठारहवीं शताब्दी में ही अनाज की खेती करने के स्थान पर यूरोपियन साहबों के अधीन नील के बागान लगाने के घाटे के सौदे के लिए किसानों को बाध्य करना शुरू कर दिया था। 1859–60 में किसानों द्वारा नील की खेती से इंकार करने पर जब उन पर पुलिस के अत्याचार बढ़े तो उन्होंने पुलिस चौकियों और नील के कारखानों पर हमले किए तथा निलहे साहबों के घरों में नौकरी कर रहे लोगों का सामाजिक बहिष्कार किया। बंगाल में नील विद्रोह के दमन में अंग्रेज़ी शासन का दमनकारी घिनौना रूप उभर कर सामने आया जिसे दीनबंधु मित्र के बंगला नाटक *नील दर्पण* तथा *हिन्दू पैट्रिएट* के सम्पादक हरिश्चन्द्र मुकर्जी ने अपने पत्र के माध्यम से दुनिया के सामने ला दिया। नवम्बर, 1860 में सरकार को यह अधिसूचना जारी करनी पड़ी कि किसी किसान को नील की खेती करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और विवादों के निपटारे कानून के दायरे में ही किए जाने का आदेश दिया गया।

2.3.5 बम्बई प्रेसीडेन्सी में हुए किसान विद्रोह

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में बम्बई प्रेसीडेन्सी के रैयतवारी इलाकों में (पुणे

तथा अहमदनगर में) कपास के किसानों को अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में कपास दामों में कमी से बहुत क्षति हुई। लगान चुकाने में खुद असमर्थ हो जाने के कारण वो मारवाड़ी तथा गुजराती साहूकारों से ऊँची ब्याज दर पर कर्ज लेने के लिए और अपनी ज़मीने रेहन रखने के लिए विवश हो गए। कर्ज़ अदायगी न कर पाने की स्थिति में साहूकारों ने उनकी ज़मीनों और कुछ ने तो उनकी स्त्रियों पर भी अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। 1874–75 में किसानों ने पटेलों के नेतृत्व में साहूकारों पर हमला कर ऋणपत्रों तथा डिग्रियों को नष्ट कर डाला। यह विद्रोह सिरूर तालुके से प्रारम्भ हुआ और 6 तालुकों में फैल गया। इस विद्रोह को कुचल दिया गया किन्तु सरकार ने 1879 में कृषक राहत अधिनियम पारित कर ऋण अदायगी न करने वाले किसानों को उनकी ज़मीन से बेदखल किए जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

महाराष्ट्र में रामोसियों ने मराठा राज्य संघ के पतन के पतन के बाद अत्यधिक भूमि कर के विरोध में चित्तूर सिंह के नेतृत्व में 1822 में और फिर उमाजी के नेतृत्व में विद्रोह किए थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में भीषण अकाल की स्थिति में वासुदेव फड़के ने रामोसियों तथा अन्य क्षेत्रों के किसानों को संगठित कर लूटपाट तथा डकैतियां कीं। 1880 में फ़ड़के को बन्दी बना लिया गया। 1883 में जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई परन्तु उसके द्वारा शुरू किया गया किसान विद्रोह 1887 तक चलता रहा।

1899–1900 में पिछले चार सालों से अकालग्रस्त महाराष्ट्र में 'पुणे सार्वजनिक सभा' के नेतृत्व में लगान की अदायगी न करने हेतु आन्दोलन चलाए गए।

2.3.6 पबना में किसान आन्दोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें तथा नवें दशक में बंगाल के पबना क्षेत्र में ज़मींदारों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध किसानों के आन्दोलन हुए जिनका विस्तार ढाका, राजशाही फ़रीदपुर तथा त्रिपुरा तक हो गया। हिन्दू ज़मींदारों ने मुसलमान किसानों के आन्दोलन को साम्प्रदायिकता का रंग देने का प्रयास किया परन्तु इसके तीन प्रमुख नेताओं में दो केशब चन्द्र राय तथा शंभुनाथ पाल हिन्दू थे जब कि तीसरे खुदी मोल्ला मुसलमान थे। इस आन्दोलन के दौरान कृषक संगठनों का गठन किया गया तथा लगान न अदा करने का अभियान चलाया गया। एक दशक तक चलने वाले इस आन्दोलन के कारण 1885 में बंगाल में 'काश्तकारी अधिनियम' पारित हुआ और ज़मींदारों को अपनी शोषक नीतियों में बदलाव करना पड़ा।

2.3.7 पंजाब में किसान आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंजाब में ज़मीन की बेदखली के विरोध में किसानों ने आन्दोलन किए जिसके दबाव में सरकार को 1902–03 में 'भू स्वामित्व हस्तान्तरण अधिनियम' पारित करना पड़ा।

2.3.8 भारतीय रियासतों में किसान आन्दोलनों का विकास

अपनी प्रजा पर करों का बोझ लादने में भारतीय रियासतों ने अंग्रेज़ों की शोषक कर नीति को भी पीछे छोड़ दिया था। 1905, 1913 तथा 1915–16 में मेवाड़ के अधीन

परमारों द्वारा शासित जागीर बिजौलियां में किसानों ने सामूहिक खेती करने की बाध्यता के विरुद्ध आन्दोलन कर दिया। 1913 में इस आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीताराम दास तथा 1915 में भूतपूर्व क्रान्तिकारी विजय पथिक ने किया। विजय पथिक तथा माणिकलाल वर्मा ने 1916 में उदयपुर राज्य में कर अदायगी न करने वाले आन्दोलन का नेतृत्व किया। इन दोनों के प्रयास से बिजौलियां में 1922 में खालसा ज़मीन पर अतिरिक्त करों तथा बेगार में कमी की गई। मारवाड़ में जयनारायण व्यास के नेतृत्व में कर अदायगी न करने वाला आन्दोलन हुआ और अलवर राज्य के नीमूचना में 1925 में किसानों ने भूमिकर में 50 प्रतिशत वृद्धि का विरोध करते समय राजा की सेना तथा ब्रिटिश पुलिस की गोलीबारी में 1000 से भी अधिक लोग मारे गए। 1927 में बिजौलियां में नए चुंगी कर तथा बेगार को लेकर विजय सिंह पथिक, माणिकलाल वर्मा तथा हरिभाऊ उपाध्याय ने सत्याग्रह किया।

2. **ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक किसान आन्दोलनों पर चर्चा कीजिए–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.4 गांधीयुगीन किसान आन्दोलन

2.4.1 चम्पारन तथा खेड़ा आन्दोलन

भारत में गांधीजी का पहला आन्दोलन 1917 में बिहार में नील की खेती करने वाले किसानों के अधिकारों को लेकर किया जाने वाला चम्पारन आन्दोलन था। राजकुमार शुक्ल के अनुरोध पर गांधीजी ने चम्पारन में नील की खेती करने वाले किसानों की दशा सुधारने के लिए इस आन्दोलन का नेतृत्व किया था। नील के बागानों के गोरे मालिकों को अंग्रेज़ सरकार द्वारा किसानों पर अत्याचार करने की खुली छूट मिली हुई थी। किसानों को चम्पारन में अपनी ज़मीन के 3/20 (तिनकथिया) भाग पर नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था। गांधीजी के प्रयासों से नील के बागानों के मालिकों के किसानों पर किए जाने

वाले अत्याचार रोकने के लिए 1917 का चम्पारन एग्रेरियन बिल प्रस्तावित किया गया और दमनकारी तिनकथिया प्रणाली रद्द कर दी गई।

1918 में गुजरात के कुनबी पाटीदार किसानों के हितों की रक्षार्थ गांधीजी ने वल्लभ भाई पटेल के साथ खेड़ा आन्दोलन का नेतृत्व किया। सरकार द्वारा किसानों को लगान में छूट दिए जाने के बाद इस आन्दोलन की समाप्ति हुई।

2.4.2 बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग तथा अवध में किसान आन्दोलन

मूलतः महाराष्ट्र के निवासी बाबा रामचन्द्र ने संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग में किसानों को ज़मींदारों के विरुद्ध संगठित किया। उन्होंने गौरी शंकर मिश्र तथा जवाहर लाल नेहरू से प्रतापगढ़ तथा जौनपुर का दौरा करने का आग्रह किया। 1920 में प्रतापगढ़ में 'अवध किसान सभा' का गठन किया जिसमें अवध की सभी किसान सभाओं का विलय हो गया। 'अवध किसान सभा' ने किसानों को बेदखली वाली ज़मीन को जोतने और बेगार करने से इंकार करने के लिए कहा और उन्हें अपने विवादों को सरकारी अदालतों के स्थान पर पंचायत में सुलझाने की सलाह दी। 1921 में इस आन्दोलन का स्वरूप उग्र हो गया तथा इसका विस्तार अवध तक हो गया। इस आन्दोलन में ज़मींदारों तथा साहूकारों के घरों व अनाज के गोदामों में लूटपाट भी की गई। पुलिस के साथ मुठभेड़ में कई लोग मारे भी गए।

1921 में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने किसानों को ज़मीन की बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'अवध राजस्व अधिनियम' पारित किया। 1921–22 में हरदोई, बाराबंकी और सीतापुर में निर्धारित लगान से ड्यौढ़ी वसूली के विरोध में निम्न वर्ग के नेताओं के नेतृत्व में एका आन्दोलन हुआ। मार्च, 1922 तक इसका दमन कर दिया गया। स्वामी विद्यानन्द ने 1922 में ज़मींदारी उन्मूलन की मांग की।

2.4.3 बारदोली आन्दोलन

1928 में सूरत के बारदोली तालुके में मेहता बन्धु तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में कुनबी पाटीदार, काली पराज तथा रानी पराज जातियों ने मिलकर आन्दोलन किया। कपास उगाने वाले किसानों पर कपास के दामों में भारी कमी के बावजूद लगान में वृद्धि के विरोध में सभी वर्गों के किसान संगठित हो गए। सरकार को आन्दोलन के दबाव में आकर मैक्सवेल ब्रूमफ़ील्ड द्वारा जांच करवानी पड़ी जिसकी संस्तुतियों के आधार पर लगान की बढ़ी दर में कमी की की गई।

2.4.4 आर्थिक मन्दी के दौरान किसान आन्दोलन

1929 की आर्थिक मन्दी के दौर में कृषि उत्पादों की कीमत कम होने पर भी नकदी के रूप में ली जाने वाली लगान में कमी नहीं की गई इससे किसानों को घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। संयुक्त प्रान्त के किसानों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उत्साहपूर्वक भाग लेकर लगान अदा न करने का आन्दोलन चलाया। गुजरात, बिहार, बंगाल और मद्रास प्रान्त में तंजौर, मदुरै,सेलम और कर्नाटक और महाराष्ट्र के भी अनेक क्षेत्रों में भी किसानों

ने लगान देने से इंकार कर दिया। पंजाब प्रान्त के पहाड़ी क्षेत्र कांगड़ा में जंगल में अन्यायी चराई कानून का विरोध किया गया। 1929 में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने 'बिहार किसान सभा' की स्थापना की।

2.4.5 किसान आन्दोलनों में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की भूमिका

स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में 1936 में लखनऊ में विभिन्न किसान सभाओं को संगठित कर 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई। इसके महासचिव एन0 जी0 रंगा बने। इस किसान सभा पर वामपंथियों तथा समाजवादियों का प्रभाव था। जवाहर लाल नेहरू ने इस किसान सभा के पहले अधिवेशन में भाग लिया। इस किसान सभा से सम्बद्ध व्यक्तियों में जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव आदि सम्मिलित थे।

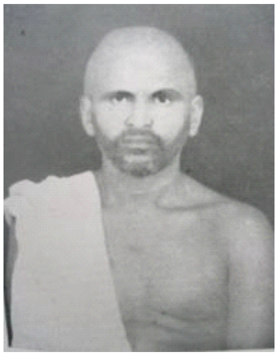

स्वामी सहजानन्द

कांग्रेस सोशलिस्ट पत्र के 23 जनवरी, 1937 के अंक में स्वामी सहजानन्द के किसान कामगारों को दिए गए निर्देश प्रकाशित हुए थे। जिनमें यह विचार व्यक्त किया गया था कि अपने मौलिक अधिकारों को हासिल करने के लिए किसानों को अपना संगठन बनाकर रोज़ ही अपनी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। अपने आर्थिक दोहन तथा राजनीतिक दमन के खिलाफ़ किए जा रहे अपने शाश्वत संघर्ष में किसानों की सहायता करने तथा उनको संगठित करने के उद्‌देश्य से किसान कामगारों को सरकार के साथ दैनिक विवादों जैसे रैयतवारी क्षेत्र में फ़सल के मूल्यांकन, लगान में छूट तथा उसका स्थगन और जहां कहीं भी सरकार की ओर से सिंचाई का प्रबन्ध हो वहां जल कर में कमी, सिंचाई के पानी की समय से आपूर्ति और सिंचाई के कार्यों की समय से मरम्मत आदि में किसानों की न्यायसंगत तरीकों से सहायता करने के निर्देश दिए गए और उन्हें सलाह दी गई कि वो सरकार के द्वारा लगान के पुनर्निर्धारण और पुनर्व्यवस्था की स्थिति में किसान साथियों को फ़सल के उत्पादन, ज़मीन से कुल आय आदि के आंकड़े एकत्र कर व्यवस्थापन अधिकारी तथा उच्च किसान समितियों के समक्ष प्रस्तुत कर यह प्रयास करें कि सरकार उन पर अतिरिक्त करों का बोझ न डाले और वर्तमान कर की दर में कुछ कमी कर दे।

किसानों के हितों के लिए सहकारी समितियों के गठन को आवश्यक बताया गया और किसानों के उत्पादों को उचित दाम मिलें इसके लिए गन्ने, जूट, कपास, गेहूं, मूंगफली, चावल आदि के न्यूनतम मूल्य निर्धारण के लिए प्रयास किए जाने को आवश्यक बताया गया।

ज़मींदारों, साहूकारों तथा भ्रष्ट राजस्व अधिकारियों के शोषण पर नियन्त्रण स्थापित करने मे और उनका बकाया न चुका पाने के कारण किसानों को ज़मीनों से बेदखल किए जाने या उनकी सम्पत्ति और उनके जानवरों की नीलामी रोकने में किसान साथियों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती थी। महाजनों द्वारा ऊँची ब्याज दरें निर्धारित करने की प्रवृत्ति पर भी नियन्त्रण लगाए जाने को आवश्यक बताया गया।

स्वामी सहजानन्द ने शिक्षा तथा मनोरंजन के समन्वय को महत्व देते हुए किसान मेलों, कृषि प्रदर्शनियों, ग्रामीण खेलों के आयोजनों, किसान गीतों तथा देशभक्तिपूर्ण गीतों के गायन को भी को आवश्यक बताया। खेतिहर मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी का निर्धारण और किसान सभाओं को मान्यता दिलाना भी किसान सभा का उद्देश्य था।

3. किसान आन्दोलनों में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की भूमिका पर लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4.2.6 कांग्रेस की किसान समर्थक नीतियां

जवाहर लाल नेहरू के दबाव में 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में मौलिक अधिकार और आर्थिक सुधार की नीति तथा किसानों को अपना संघ बनाने के अधिकार को सम्मिलित किया गया। छोटे किसानों को राहत देने के लिए, लगान में कमी, काश्तकारी की अवधि में वृद्धि और कृषि सम्बंधी ऋणग्रस्तता में राहत दिए जाने का प्रस्ताव रखा गया। 1936 के फ़ैजपुर के अधिवेशन में मज़दूरों को हड़ताल करने का अधिकार और किसानों को संघ बनाने का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा गया। जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में 1938 में कांग्रेस ने राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया। इस प्रकार समाजवादी विचारधारा ने किसानों की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक उन्नति को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बनाने में सफलता प्राप्त की।

2.4.7 तिभागा आन्दोलन

सितम्बर, 1946 में तिभागा आन्दोलन 'बंगाल किसान सभा' द्वारा संचालित एक किसान आन्दोलन था जो कि द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त जोतेदारों के विरुद्ध उत्तर बंगाल में हुआ था। शीघ्र ही इसका विस्तार बंगाल के एक बड़े भाग में फैल गया। इस आन्दोलन में 49 किसान आन्दोलनकारी शहीद हुए। बर्गदार (बटाईधार) किसानों ने जमींदारों को लगान के रूप में कुल फ़सल का आधा भाग देने के स्थान पर एक तिहाई भाग ही देने के लिए सफल

आन्दोलन किया था। इस आन्दोलन में साम्यवादियों तथा छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

2.4.8 तेलंगाना आन्दोलन

जुलाई, 1946 से सितम्बर, 1948 तक (हैदराबाद राज्य पर पुलिस कार्यवाही तक) तेलंगाना के किसानों ने निज़ाम द्वारा उन पर अन्यायपूर्ण करों का बोझ लादने की नीति, देशमुखों के शोषण तथा निज़ाम के रज़ाकारों के दल के विरुद्ध जन–आन्दोलन किया। इस आन्दोलन का प्रसार लगभग 3000 गावों में हुआ। इस आन्दोलन में साम्यवादियों की भूमिका सराहनीय रही। निज़ाम को विवश होकर अनेक भूमि तथा कर सम्बन्धी सुधार करने पड़े। खेतिहर मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाई गई, बेगार पर रोक लगाई गई, किसानों की ज़ब्त ज़मीनें लौटाई गईं और भू–सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित कर अतिरिक्त ज़मीन का भूमिहीनों में वितरण किया गया।

2.4.9 अन्य किसान आन्दोलन

केरल में कांग्रेस, समाजवादी तथा साम्यवादी दलों ने किसानों के हितों के रक्षार्थ आन्दोलनों का नेतृत्व किया। बंगाल में हाट–तोला आन्दोलन साप्ताहिक बाज़ार में भू–स्वामियों द्वारा किसानों से कर लिए जाने के विरोध में किया गया था। पंजाब में 'नौजवान सभा' तथा 'कीर्ति किसान' ने सिंचाई कर में कमी कराने में सफलता प्राप्त की।

कुल मिलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान किसानों में आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना का विकास हुआ और उन्होंने मुख्य राष्ट्रीयधारा में सम्मिलित होकर देश की स्वतन्त्रता के साथ अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी। किसान साहूकारों और ज़मींदारों के विरुद्ध युद्ध में आंशिक रूप से ही सफल रहे परन्तु सभी प्रमुख राजनीतिक दलों को उनके महत्व को स्वीकार करना पड़ा और ब्रिटिश सरकार को भी अपनी किसान विरोधी नीतियों में बदलाव लाना पड़ा।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) 'अखिल भारतीय किसान सभा'।
   (ख) तिभागा आन्दोलन।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) *नील दर्पण* की रचना किसने की थी?

(ii) बारदोली में किसान आन्दोलन का नेतृत्व किसने किया था?

2.5 राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनजातीय आन्दोलन

2.5.1 संथाल विद्रोह

संथाल जनजाति बंगाल प्रान्त में बीरभूमि, बांकुड़ा तथा बिहार में सिंहभूम, हज़ारीबाग, भागलपुर, पूर्णिया तथा मुंगेर जिलों में बसे हुए थे। इस जनजाति में ईसाई मिशनरियों ने

अपने धर्म का प्रचार करने के साथ समाज सेवा तथा शिक्षा प्रसार का कार्य भी किया था। बहुत से संथाल ईसाई बने पर अपनी परम्पराओं तथा संस्कृति से जुड़े भी रहे। अंग्रेज़ी शासन में आदिवासियों के वन सम्पदा पर परम्परागत अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और उनके समाज में महाजनों तथा साहूकारों का शोषण बहुत अधिक बढ़ गया। विकास के नाम पर रेलगाड़ी के प्रचलन से भी उन्हें कष्ट हुआ क्योंकि रेल बिछाए जाने में उनके अधिकार की बहुत सी ज़मीन उनसे छीन ली गई। अंग्रेज़ों का जातीय अहंकार तथा आदिवासियों के साथ उनका पशुवत व्यवहार तथा उनकी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार भी संथालों के असन्तोष का कारण था। संथालों का बड़ा विद्रोह 1855–56 में हुआ जो कि प्रारम्भ में साहूकारों तथा व्यापारियों की शोषक नीतियों के विरुद्ध उभरा था परन्तु बाद में संथालों के निशाने पर ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी, पुलिस वाले तथा रेलवे कर्मचारी भी आ गए। इस विद्रोह का नेतृत्व सिद्धू तथा कानू ने किया था। कई हिंसक मुठभेड़ों के बाद इस संथाल विद्रोह को अंग्रेज़ी सरकार ने बड़ी कठोरता के साथ कुचल दिया।

संथाल विद्रोहों में बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में रांची के दक्षिणी क्षेत्र में *उलगुलान* (महान विप्लव) विद्रोह था। उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी मैदानों से आए व्यापारियों तथा महाजनों ने संथालों की परम्परागत *खुण्टकट्टी* भूमि व्यवस्था को नष्ट कर दिया था। इस क्षेत्र में ठेकेदार आकर बड़ी संख्या में बंधुआ मज़दूरों की भरती भी कर रहे थे। इस क्षेत्र में धर्म प्रचार कर रहे लुथेरन, एंग्लिकन तथा कैथेलिक मिशनों ने संथालों की समस्याओं के समाधान के निवारण का भरोसा भी दिलाया परन्तु उनकी भूमि समस्याओं के समाधान के लिए उन्होंने कोई ठोस काम नहीं किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में संथाल सरदारों ने अदालतों में जाकर बाहरी भू–स्वामियों की घुसपैठ तथा *बैठ बेगारी* को रोकने का प्रयास भी किया परन्तु वहां उन्हें उनके एंग्लो इण्डियन वकील ने धोका दे दिया। सरकार और ईसाई मिशनरियों से इन *दीकुओं* (बाहरी लुटेरे) के खिलाफ़ कोई मदद भी मदद न मिलने पर मुण्डाओं का आक्रोश बढ़ गया। बिरसा मुण्डा के रूप में मुण्डाओं को एक महानायक मिल गया। बिरसा मुण्डा एक बटार्ददार किसान का बेटा था जिसने ईसाई मिशनरी स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी और फिर वह कुछ समय के लिए ईसाई धर्म में दीक्षित भी हो गया था परन्तु बाद में उस पर वैष्णव विचारधारा का प्रभाव पड़ा। बिरसा को जड़ी–बूटियों का ज्ञान था और वह अपने समुदाय में एक चमत्कारी चिकित्सक के रूप में प्रतिष्ठित था। 1893–94 में बिरसा ने जंगालात विभाग द्वारा गांव की बंजर ज़मीन पर अधिकार किए जाने के विरुद्ध आन्दोलन में भाग लिया था। 1895 में बिरसा एक चमत्कारी नेता के रूप में उभरा। उसने दावा किया कि उसने परम पिता के दर्शन किए हैं, उसमें चमत्कारी शक्तियां आ गई हैं और वह मसीहा बन गया है। बिरसा

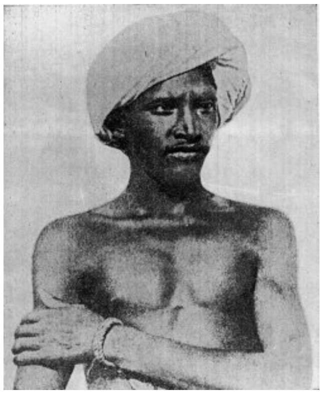
बिरसा मुण्डा

ने प्रलय की भविष्यवाणी की। चालकेड में हज़ारों आदिवासी उसके भक्त बन गए। इस धार्मिक आन्दोलन को सरदारों ने भूमि सम्बन्धी तथा राजनीतिक आन्दोलन में विकसित कर दिया। शान्ति भंग करने के आरोप में 1895 में बिरसा को दो वर्ष का कारावास दिया गया परन्तु जेल से लौटकर वह एक क्रान्तिकारी के रूप में उभरा। 1898–99 में बिरसा ने जंगलों में गुप्त बैठकों में ठेकेदारो, जागीरदारों, राजाओं, हाकिमों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों पर हमलों की योजनाएं बनाईं। बिरसा ने अपने अनुयायियों को भरोसा दिलाया कि उन पर दागी गई गोलियों को वह अपने चमत्कार से पानी में बदल देगा। ब्रिटिश राज का पुतला जलाया गया और मुण्डाओं ने विद्रोह का नारा लगाया –

कटौंग बाबा कटौंग

साहिब कटौंग, कटौंग, रारी कटौंग, कटौंग।

(हे पिता! इन गोरों का संहार कर, दूसरी जाति के लोगों का संहार कर! संहार कर! संहार कर!)

24 दिसम्बर, 1899 को बड़े दिन की पूर्व संध्या पर बिरसाओं ने रांची और सिंहभूम के गिरजाघरों पर तीरों से हमला कर उन्हें जलाने का प्रयास किया, इसके बाद जनवरी, 1900 से पुलिस चौकियां उनके निशानों पर आईं। मुण्डा विद्रोह में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सेल रकब पहाड़ी पर मुठभेड़ के बाद 9 जनवरी, 1900 को विद्रोहियों को पराजित किया गया और बिरसा मुण्डा को बन्दी बना लिया गया। तीन सप्ताह बाद ही कारावास में उसकी मृत्यु हो गई। तीन विद्रोहियों को फांसी तथा 44 को आजन्म कारावास दिया गया। बिरसा मुण्डा मर कर भी मरा नहीं। वह अपने अनुयायियों के लिए एक मसीहा के रूप में अमर हो गया। अपने परम्परागत अधिकारों के लिए संघर्ष करने वालों में बिरसा मुण्डा ने इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। मुण्डाओं की समस्याओं पर अब सरकार को भी ध्यान देना पड़ा। 1908 के 'छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम' के अन्तर्गत आदिवासियों के खुन्टकट्टी अधिकारों को मान्यता दी गई तथा *बैठ बेगारी* पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया इस प्रकार मुण्डाओं ने अपने भूमि सम्बन्धी अधिकारों की लड़ाई शेष भारत के किसानों से बहुत पहले जीत ली।

4. संथाल विद्रोह पर एक लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.5.2 रम्पा विद्रोह

गोदावरी के उत्तर में चोदावरम में 'रम्पा' क्षेत्र की काया तथा कोण्डा डोरा जनजातियों ने अंग्रेज़ों के मित्र मनसबदारों द्वारा इमारती लकड़ी और चराई कर में वृद्धि, पुलिस के अत्याचार तथा *पौडू* (झूम खेती) पर प्रतिबन्ध के विरोध में 1879 में विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह 5000 वर्ग मील के क्षेत्र में फैल गया। नवम्बर, 1880 में मद्रास इन्फैन्ट्री की 6 रेजीमेन्टों की मदद से इस विद्रोह का दमन किया जा सका। इसी क्षेत्र में 1886 में विद्राहियों ने स्वयं को *राम डन्डु* (राम की सेना) माना। उनके नेता रंजन अनन्तैया ने जेयपुर के महाराजा से अंग्रेज़ों के विरुद्ध धर्मयुद्ध में सहायता करने की अपील की।

2.5.3 अन्य क्षेत्रों में जनजातीय आन्दोलन

आदिवासी विद्रोहों में धार्मिक भावनाओं का अत्यधिक महत्व था। अपने परम्परागत धर्म के अतिरिक्त आदिवासियों ने हिन्दू धर्म तथा ईसाई धर्म की कई धार्मिक मान्यताओं को भी आत्मसात किया था परन्तु उनकी व्याख्या उन्होंने अपने ढंग से की थी। आदिवासियों को अपने मसीहा के नेतृत्व में स्वर्ण युग की स्थापना की पूर्ण आशा थी।

गुजरात की नैकदा वन जाति ने 1868 में धर्मराज की स्थापना के लिए पुलिस चौकियों पर हमला बोल दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक का खेरवार अथवा साफा हर विद्रोह एकेश्वरवाद के प्रचार तथा संथाल समाज में समाज सुधार करने कार्यक्रम के रूप में प्रारम्भ हुआ पर शीघ्र ही यह नई राजस्व व्यवस्था के खिलाफ़ हो गया।

1882 में काचर के कच नागाओं ने खुद को जादुर्द शक्ति से सम्पन्न होने का दावा करने वाले शम्भूदन के नेतृत्व में गारों पर हमला बोल दिया। 1900 में विशाखापट्टनम में कोरा मल्लया ने खुद को पाण्डव भाइयों में से एक का और अपने पुत्र को भगवान कृष्ण का अवतार घोषित किया। उसने दावा किया कि वह अंग्रेज़ों को खदेड़ कर खुद राज करेगा और उसके अनुयायियों की बांस की लाठियों के सामने अंग्रेज़ों की बन्दूकें पानी बन जाएंगी। परन्तु पुलिस विद्रोहियों का दमन करने में सफल रही।

उड़ीसा में क्योंझर में भुयान तथा जुआंग जनजातियों ने 1891–93 में धरणीधर नायक के नेतृत्व में अंग्रेज़ों का सरंक्षण प्राप्त किए हुए स्थानीय शासक के विरुद्ध विद्रोह किया। राजा को कटक भागकर अंग्रेज़ों की शरण लेनी पड़ी। बस्तर में 1910 में राजा की कर प्रणाली के विरोध में असफल विद्रोह हुआ। दक्षिणी राजस्थान में बांसवारा, डूंगरपुर रियासतों के भीलों ने 1913 में 'भीलराज' स्थापित करने के उद्देश्य से विद्रोह किया जिसे रियासतों की सेनाओं ने ब्रिटिश सेना तथा पुलिस की मदद से कुचल दिया।

उत्तर–पूर्वी सीमान्त क्षेत्र के जनजातीय आन्दोलनों का स्वरूप मुख्यतः राजनीतिक था और इनका उद्देश्य स्वायत्तता प्राप्त करना था। खासी, सिंगफास, मिशीमियां, खम्पाती, सिंगफो, लुशाई सायन्तेग, काछा नागा, कूकी, रियांग, ज़ेमी, रोंगमई तथा लियांगमई जनजातियों के विद्रोह इसी श्रेणी में आते हैं। 1932 में रानी गैडिनलियु ने नागा आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ दिया, उसे बन्दी बनाया गया और देश की स्वतन्त्रता के बाद ही उसे रिहा किया गया। 1945 में 'नागा हिल डिस्ट्रिक्ट ट्राइबल काउंसिल' की स्थापना की गई जिसका बाद में नाम 'नागा नेशनलिस्ट काउंसिल' हो गया। 1946 में 'गारो नेशनलिस्ट काउंसिल' और 'मिज़ो यूनियन' का गठन किया गया।

2.5.4 भगत आन्दोलन

छोटा नागपुर में मुण्डा तथा ऊराव आदिवासियों के मध्य 1914 में ताना भगतों के नेतृत्व में एकेश्वरवादी सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन चला जिसमें आर्थिक मुद्दे भी शामिल हो गए। झूम खेती के पुनर्प्रचलन की मांग की गई। इस आन्दोलन में करिश्माई मसीहा के नेतृत्व में जनजातियों सभी कष्टों के निवारण की भविष्यवाणी की गई। इस मसीहा को कभी बिरसा का तो कभी केसर भगत (अंग्रेज़ों के शत्रु जर्मन कैसर अर्थात् जर्मन सम्राट) का नाम दिया गया। ब्रिटिश सरकार विश्वयुद्ध के दौरान शान्ति भंग होने की वारदातों को कठोरता से कुचलने के लिए कटिबद्ध थी। उसने इस आन्दोलन का दमन कर दिया परन्तु 1930 में इस आन्दोलन का पुनरुत्थान हुआ और इसका प्रसार 'मो' जनजाति में भी हो गया।

2.5.5 जनजातीय आन्दोलनों की प्रकृति

19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता से पूर्व के जनजातीय आन्दोलनों में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक चेतना का मिलाजुला रूप दिखाई पड़ा। अंग्रेज़ शासकों, व्यापारियों, साहूकारों, ठेकेदारों आदि के शोषण के विरुद्ध हुए जनजातीय आन्दोलनों में प्रायः राजनीतिक चेतना और अनुशासन की कमी थी अतः उनके दमन में सरकार को अधिक कठिनाई नहीं हुई परन्तु अनेक बार ब्रिटिश सरकार को तथा भारतीय रियासतों के शासकों को इन आन्दोलनों के दबाव में वन–दोहन की नीति में कुछ सुधार अवश्य करने पड़े। जनजातियां धीरे–धीरे मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुडने लगीं और स्थानीय समस्याओं के साथ उनका ध्यान अब राष्ट्रीय समस्याओं की ओर भी जाने लगा तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी भागीदारी भी बढ़ने लगी।

5. जनजातीय आन्दोलनों और उनकी प्रकृति पर लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) बिरसा मुण्डा।

(ख) रम्पा विद्रोह।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) ताना भगत आन्दोलन में केसर भगत किसे कहा गया था?

(ii) रानी गैडिनलियू ने किस आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ा था?

2.6 सार संक्षेप

अंग्रेज़ों की तीन भू–राजस्व व्यवस्थाओं भूमि के स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवारी और महलवारी, सभी में किसानों के हितों की उपेक्षा की गई थी। किसान आन्दोलनों के सामान्य कारण अत्यधिक लगान, लगान में और भी अधिक वृद्धि, कर अदायगी न कर पाने के कारण पुश्तैनी ज़मीनों से बेदखली, साहूकारों, महाजनों की सूदखोरी, ज़मींदारों, बागानों के मालिकों तथा राजस्व अधिकारियों के अत्याचार थे। केरल के मालाबार तट पर मोपला में, नील की खेती करने वाले किसानों द्वारा बंगाल में, महाराष्ट्र में 'पुणे सार्वजनिक सभा' के नेतृत्व में, उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें तथा नवें दशक में बंगाल के पबना में, 1905 से लेकर 1927 तक मेवाड़ में, गांधीजी के नेतृत्व में चम्पारन तथा खेड़ा में, बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग में, 1928 में सूरत के बारदोली तालुके में सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में, 1946 में बंगाल किसान सभा के नेतृत्व में तथा साम्यवादियों के नेतृत्व में तेलंगाना में किसानों ने आन्दोलन किए। स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में 1936 में लखनऊ में वामपंथी विचारधारा से प्रभावित 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई। 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में मौलिक अधिकार और आर्थिक सुधार की नीति तथा किसानों को अपना संघ बनाने के अधिकार को सम्मिलित किया गया।

अंग्रेज़ी शासन में आदिवासियों के वन सम्पदा पर परम्परागत अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और उनके समाज में महाजनों तथा साहूकारों का शोषण बहुत अधिक बढ़ गया। संथाल विद्रोहों में बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में रांची के दक्षिणी क्षेत्र में *उलगुलान* विद्रोह प्रमुख

था। 1893–94 तथा 1898–99 में बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में बिरसाओं ने गोदावरी के उत्तर में चोदावरम में 'रम्पा' क्षेत्र की काया तथा कोण्डा डोरा जनजातियों ने, 1868 में गुजरात की नैकदा वन जाति, उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में खेरवार, 1882 में काचर के कच नागाओं, 1900 में विशाखापट्टनम में कोरा मल्लया, दक्षिणी राजस्थान में बांसवारा, 1913 में डूंगरपुर रियासतों के भीलों ने, छोटा नागपुर में मुण्डा तथा ऊराव आदिवासियों के मध्य 1914 में ताना भगतों के नेतृत्व में तथा 1932 में उत्तर–पूर्वी सीमान्त क्षेत्र में जनजातीय विद्रोह हुए।

19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता से पूर्व के जनजातीय आन्दोलनों में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक चेतना का मिलाजुला रूप दिखाई पड़ा।

2.7 .पारिभाषिक शब्दावली

मराठा राज्य संघः 1818 तक पेशवा के नेतृत्व में मराठा सरदारों का संघ।

बेदखलीः लगान अदायगी अथवा ऋण न चुका पाने के कारण किसान की भूमि का स्वामित्व समाप्त कर देना।

बेगारः बिना मज़दूरी के कार्य करने के लिए विवश किया जाना।

तिनकथियाः खेती योग्य भूमि का 3/20 भाग।

आर्थिक मन्दीः 1929–30 की विश्व–व्यापी मन्दी।

केसर भगतः कैसर अर्थात् जर्मन सम्राट।

2.8. सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

देसाई, ए0 आर0 (सम्पादक) – *पीज़ेन्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया*, बम्बई, 1979

गुहा, रामचन्द्र – *दि अनक्वाइट वुड्स*, दिल्ली, 1990

सिद्दीकी, माजिद – *एग्रेरियन अनरेस्ट इन नॉर्दर्न इण्डिया ‑ यूनाइटेड प्रॉविन्सेज़, 1918–22*, नई दिल्ली, 1978

2.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 2.4.5 किसान आन्दोलनों में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की भूमिका।

   (ख) देखिए 2.4.7 तिभागा आन्दोलन।

2. (i) दीनबंधु मित्र ने।

(ii) सरदार वल्लभ भाई पटेल ने।

1. (क) देखिए 2.5.1 संथाल विद्रोह।

(ख) देखिए 2.5.2 रम्पा विद्रोह।

2. (i) जर्मन सम्राट को।

(ii) रानी गैडिनलियू ने नागा आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ा था।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. ब्रिटिश शासन काल में लागू की गई भू राजस्व व्यवस्थाओं ने भारतीय किसानों क्यों दरिद्र बनाया?
2. नील की खेती करने वाले किसानों द्वारा किए गए आन्दोलनों का वर्णन कीजिए।
3. पबना में हुए किसान आन्दोलन का वर्णन कीजिए।
4. भगत आन्दोलन के अन्तर्गत जनजातीय चेतना पर प्रकाश डालिए।
5. नागा आन्दोलन में रानी गैडिनल्यू की भूमिका का आकलन कीजिए।

इकाई तीनः भारत में समाजवादी विचारों का विकास

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय

3.3.1 समाजवाद क्या है

3.3.2 समाजवाद का उदय कब और कैसे हुआ

3.3.3 भारत में समाजवाद का उदय

3.4 राजनीतिक दलों व संगठनों पर समाजवादी विचारधारा के प्रभाव का प्रथम चरण

3.4.1 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से पूर्व भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास

3.4.2 बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास

3.5 भारतीय राजनीति तथा आर्थिक जगत में समाजवाद के प्रभाव का दूसरा चरण

3.5.1 कांग्रेस की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव

3.5.2 किसान आन्दोलनों पर समाजवादी प्रभाव

3.5.3 श्रमिक आन्दोलन

3.5.4 साहित्य का समाजवादी विचारधारा के प्रसार में योगदान

3.5.5 स्वतन्त्र भारत की सरकार की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव

3.6 सार संक्षेप

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ

3.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम कार्ल मार्क्स तथा एन्जेल्स के साम्यवादी विचारों तथा रूस की बोल्शेविक क्रान्ति की चर्चा कर चुके हैं। हमको ज्ञात है कि साम्यवादी तथा समाजवादी विचारों ने समस्त विश्व को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया था। भारतीय बुद्धिजीवी भी इनसे प्रभावित हुए थे। इस इकाई में भारत में समाजवादी विचारों के विकास तथा उनके कारण किसान एवं श्रमिक चेतना तथा आन्दोलनों की चर्चा की जाएगी। भारत में समाजवादी विचारधारा का मुख्यतः प्रभाव बोल्शेविक क्रान्ति के बाद दिखाई पड़ा। भारत में कम्यनिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद से किसान तथा श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत हो गए। कांग्रेस के युवा नेता जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस भी समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे। इस इकाई में लाला लाजपत राय, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह, मास्टर सूर्य सेन, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, बाबा रामचन्द्र, स्वामी सहजानन्द, अच्युत पटवर्धन, एन0 जी0 रंगा के विचारों की जानकारी दी जायेगी।

3.2. इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको पश्चिम में समाजवादी विचारधारा के उदय से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारत में समाजवादी विचारधारा के विकास से परिचित कराया जाएगा। 1917 की रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में साम्यवादी दल की स्थापना, क्रान्तिकारियों तथा कांग्रेस के युवा वर्ग पर समाजवादी प्रभाव, किसान सभाओं तथा मज़दूर संघों के गठन आदि की जानकारी भी आपको दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- भारत में समाजवादी विचारधारा के प्रारम्भिक विकास तथा प्रसार के विषय में।
- रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में विभिन्न राजनीतिक दलों तथा संगठनों पर समाजवादी विचारधारा के प्रभाव के विषय में।
- बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से लेकर भारत की स्वतन्त्रता तक हुए किसान तथा श्रमिक आन्दोलनों पर समाजवादी विचारधारा के प्रभाव के विषय में।
- स्वतन्त्र भारत की सरकार की नीतियों में समाजवादी विचारधारा की मूलभावना के समावेश के विषय में।

3.3 भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय

3.3.1 समाजवाद क्या है

समाजवादी विचारधारा वह वैचारिक आयाम है जो समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है तथा इसमें समाए हुए विसंगतियों को दूर करता है। समाजवाद का अर्थ एक ऐसे

समाज के निर्माण से है जो शोषण मुक्त हो। समाजवादी समाज में किसी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण नहीं होता है। समाजवादी समाज समानता पर आधारित होता है एवं श्रमिकों तथा किसानों के अधिकारों का पोषक होता है। समाजवादी समाज में स्त्रियों को भी पुरूषों के समान स्वतंत्रता प्राप्त होता है। समाजवादी समाज वह समाज होता है जहाँ उत्पादन के साधनों तथा समस्त सम्पत्ति पर समाज के सभी वर्गों के लोगों का समान रूप से आधिपत्य होता है। समाजवादी विचारधारा एक ओर जहाँ सामंतवादी प्रथा तथा पूँजीवादी व्यवस्था पर आघात करता है वहीं दूसरी ओर किसानों तथा मजदूरों के हितों का पोषण भी करता है। समाजवादी समाज में सभी वर्गों के लोगों को रोजगार, आवाश, स्वास्थ्य सुरक्षा, वृद्धावस्था में सुरक्षा, अवकाश, शिक्षा के अधिकार इत्यादि प्राप्त होता है। अतः जो लोग उपरोक्त विचारों के पोषक होते हैं वे समाजवादी विचारधारा के लोग माने जाते हैं।

1. **समाजवाद से आप क्या समझते हैं? लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

3.3.2 समाजवाद का उदय कब और कैसे हुआ

बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना सर्वप्रथम पश्चिमी राष्ट्रों में ही संभव हो पाया। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समाज में दो वर्गों का उदय एक साथ ही अस्तित्व में आया दृ एक पूँजीपती वर्ग, जो इन उद्योगों के मालिक थे, तथा दूसरा श्रमिक वर्ग, जो इन उद्योगों में मेहनत मजदूरी करके उत्पादन को बढ़ाते थें। पूँजीपती वर्गों द्वारा श्रमिकों का प्रत्येक स्तर पर शोषण किया जाता था। 15–18 घंटे काम करने पर भी उन्हें उचित मजदूरी प्राप्त नहीं हो पाता था। उनके आवास, शिक्षा, पोषण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इसी के फलस्वरूप समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ जो मजदूरों का पोषक और पूँजीपतियों का विरोधी था। इस काल में पश्चिमी राष्ट्रों में श्रमिकों के हितैषी के रूप में अनेक समाजवादी विचारकों का उदय हुआ। सबसे प्रमुख समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स थे, किन्तु वे अपने समय के सभी समाजवादी विचारकों से आगे निकल गए और उन्होंने साम्यवादी (कम्युनिस्ट) समाज के निर्माण का स्वप्न देखा।

3.3.3 भारत में समाजवाद का उदय

भारत में समाजवादी विचारधारा के उदय में ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्लासी विजय के बाद अंग्रेजों ने बंगाल के समस्त संसाधनों को हस्तगत कर लिया। लैंड रिवेन्यू सिस्टम को लागू करने के बाद किसानों का जबरदस्त शोषण प्रारम्भ हुआ। करों के अधिक बोझ, ब्रिटिश आर्थिक नीति तथा बार–बार पड़ने वाले अकालों ने किसानों के मनोबल को पूरी तरह से तोड़ दिया और उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन स्थायी करने के लिए यहाँ के राजाओं–महाराजाओं, जमींदारों, साहूकारों, व्यापारिक घरानों तथा पूँजीपतियों को अपना मित्र बनाया एवं इन्हें किसानों एवं मजदूरों का शोषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। इस काल में करों में इतनी अधिक वृद्धि की गयी कि उसे चुकाने के बाद किसानों के पास कुछ नहीं बचता था। भारतीय जमींदारों तथा देशी राजवाड़ों ने अंग्रेजों के साथ मिलकर किसानों के शोषण की एक ऐसी प्रवृति को जन्म दिया जो दुनिया के किसी अन्य देश में उदाहरण रूप में नहीं था। इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के बाद जो अवशेष पूँजी भारत में निवेश की गयी उसके फलस्वरूप अनेक नए–नए उद्योगों तथा बागानों की स्थापना की गयी जिसके फलस्वरूप एक नए मजदूर वर्ग का उदय हुआ। विभिन्न कारखानों तथा बागानों में काम करने वाले मजदूरों के शोषण की एक जैसी गाथा थी दृ अत्यधिक श्रम और कम मजदूरी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत में औद्योगिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अनेक नए–नए कल कारखानों के साथ–साथ बगानों की संख्या में भी असीम वृद्धि हुई। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि मजदूरों की संख्या भी बढ़ती चली गई। युद्ध के समय मजदूरों ने दिन–रात मेहनत करके उत्पादन को बढ़ाया जिससे कारखानों के मालिकों की आय में अत्यधिक वृद्धि हुई। परन्तु उसी अनुपात में मजदूरों की मजदूरी नहीं बढ़ी वरन् विश्वयुद्ध के बाद जिस तरह से महंगाई बढ़ी, उनकी मजदूरी में कमी ही आ गई। 15–18 घंटों तक काम करने के बाद भी मजदूरों को इतना मजदूरी नहीं मिल पाता था कि वे दो वक्त का भोजन ठीक से कर सके। इन्हें गन्दी बस्तियों में, अंधेरे कमरे में रखा जाता था, जहाँ पानी, सफाई आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी। विभिन्न कल कारखानों में स्त्रियों तथा बच्चों तक को काम पर लगाया गया था। मिल मालिकों तथा सरकार की तरफ से इन मजदूरों के लिए आवास, चिकित्सा, शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। इस समय कारखानों में अत्यधिक उत्पादन के लिए कच्चे मालों की आवश्यकता थी। अतः किसानों ने भी जी–तोड़ मेहनत की परन्तु इसके एवज में उन्हे भी वह लाभ प्राप्त नहीं हुआ जिसकी उन्हें आशा थी। मिल मालिकों तथा बगान मालिकों के इस शोषण के फलस्वरूप किसानों तथा श्रमिकों में जबरदस्त असंतोष की भावना पनपने लगी। इन्हीं परिस्थितियों के कारण भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रवेश हुआ।

भारत के अनेक युवा शिक्षित वर्ग जब पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आए तो इन्होंने पश्चिमी साहित्य का गहन अध्ययन किया। 1917 की रूसी क्रान्ति ने अनेक भारतीय युवा शिक्षित वर्गों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। क्योंकि इस क्रान्ति ने विश्व के इतिहास में पहली बार, रूस में, एक साम्यवादी सरकार की स्थापना का मार्ग प्रसस्त किया, जिसमें मजदूरों का शोषण नहीं था। अतः कई शिक्षित युवा वर्ग इस विचारधारा से प्रभावित होकर भारत के किसानों तथा मजदूरों को लामबद्ध करना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप भारत में अनेक मजदूर यूनियन तथा किसान पार्टी का जन्म हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले भी मजदूरों ने कई बार हड़ताल तथा प्रदर्शन करके अपने असंतोष को उजागर किया था परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के पहले मजदूर मूलतः असंगठित थे और वे अपने अधिकारों को लेकर उतने सजग नहीं थे जितने कि बाद के वर्षों में देखे गए। इस समय के आन्दोलनों को ज्यादातर स्वतः स्फूर्त आन्दोलन कहा गया है। क्योंकि इस समय के आन्दोलनों को कोई केन्द्रीय नेतृत्व प्राप्त नहीं होता था तथा हड़तालियों का कोई ठोस कार्यक्रम या संगठन नहीं था। हालांकि मजदूरों के बार–बार होने वाले आन्दोलनों ने एक केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया और इसी के फलस्वरूप 31 अक्टूबर 1920 को एक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (ए.आई.टी.यू.सी) की स्थापना की गयी। हालांकि यह यूनियन एक राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में स्थापित की गई थी। परन्तु इसके बाद अनेक वामपंथियों ने समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से मजदूरों के बीच समाजवादी विचारधारा का प्रचार किया। समाजवादी विचारधारा के तहत अब मजदूर अपने अधिकारों को लेकर पहले की अपेक्षा अधिक सजग हो उठे।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने कभी भी भारतीय समाज के एक बहुत बड़े समूह को, किसानों तथा मजदूरों को, अपने साथ जोड़ने की कोशिश नहीं की। किसानों तथा मजदूरों के प्रति कांग्रेस की नीति प्रारम्भ से ही ढूल–मूल रवैया अपनाने वाली रही। श्रमिकों के मामले में कांग्रेस तभी अपनी कोई भूमिका निभाता था जब विरोध ब्रिटिश पूँजीपतियों का किया जा रहा होता था। परन्तु जहाँ भारतीय पूँजीपतियों का विरोध होता था वहाँ कांग्रेस मजदूरों से कोई सरोकार नहीं रखता था। कांग्रेस पर दक्षिणपंथी बुर्जुआओं का वर्चस्व था। इसमें अनेक बड़े–बड़े पूँजीपती तथा जमींदार लोग शामिल थे। ये लोग कांग्रेस को बहुत बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता पहुँचाते थे। असहयोग आन्दोलन की विफलता ने कांग्रेस के बहुत बड़े तबके में निराशावादी भावना का विकास किया। कांग्रेस में विश्वास करने वाले बहुत से लोगों को गाँधीवाद के प्रति आस्था कमजोर होने लगी। क्योंकि बहुत से लोगों ने गांधी के इस बात पर यकीन कर लिया था कि एक वर्ष के भीतर उन्हें स्वराज मिल जाएगा। परन्तु उनका यह सपना टूट चुका था। बहुत से राष्ट्रवादी अब राष्ट्रीय आन्दोलन में समाज के सभी तबकों यथा

किसानों, मजदूरों, महिलाओं के सहयोग की आवश्यकता को महसूस करने लगे थे और इस प्रकार बहुत से बुद्धिजीवियों का ध्यान उन किसानों, मजदूरों तथा महिलाओं की तरफ गया जो कई दशकों से शोषण की जिन्दगी जी रहे थे। ऐसा नहीं है कि प्रथम विश्वयुद्ध के पहले राष्ट्रवादी नेता समाजवादी विचारों से परिचित नहीं थे। कांग्रेस के अनेक राष्ट्रवादी नेता पश्चिमी देशों में ही शिक्षा ग्रहण किए थे और समाजवादी विचारधारा से भली–भाँती परिचित थे परन्तु भारतीय राजनीति में वे इस विचारधारा को नहीं अपनाना चाह रहे थे क्योंकि शोषित किसानों और मजदूरों की समस्या की तरफ ध्यान देने से जमींदारों तथा पूँजीपतियों का एक बहुत बड़ा तबका, जो कि कांग्रेस का आधार था, उनसे विमुख हो जाता।

राष्ट्रवादियों का यह मानना था कि स्वराज प्राप्ति के बाद शोषण और दरिद्रता अपने आप समाप्त हो जाएगी, इसलिए इनलोगों ने मजदूरों और किसानों की समस्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु असहयोग आन्दोलन के पश्चात उभरी निराशा ने कुछ राष्ट्रवादियों को यह सोंचने पर मजबूर कर दिया कि वह कौन सा रास्ता अख्तियार किया जाए जिससे समाज के सभी वर्गों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया जा सके और इसी सोंच का परिणाम था भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

2. समाजवाद के विषय में अपने विचार निम्नांकित पंक्तियों में लिखिये

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3.4 राजनीतिक दलों व संगठनों पर समाजवादी विचारधारा के प्रभाव का प्रथम चरण

3.4.1 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से पूर्व भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास

अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी समाजवादी विचारक सेंत साइमन के काल्पनिक समाजवाद ने तथा चार्ल्स फुरियेर द्वारा पूंजीवादी एवं लिंगभेदी व्यवस्था की भर्त्सना

ने और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में अंग्रेज़ विचारक रॉबर्ट ओवेन के सहकारी आन्दोलन व ट्रेड यूनियनों की महत्ता की वकालत ने पश्चिम में समाजवाद के उदय की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। कार्लमार्क्स तथा फ़्रेडरिक एन्जेल्स के *कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो* के 1848 में प्रकाशन के बाद से समाजवादी विचारधारा ने विश्व राजनीति को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। समाजवाद के अन्तर्गत पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति द्वारा उसकी अपनी तानाशाही की स्थापना का लक्ष्य रखा जाता है तथा राज्य की समस्त नीतियों में समानता, सामाजिक न्याय तथा निजी सम्पत्ति की अवधारणा के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व तथा सम्पत्ति के समान वितरण को महत्ता दी जाती है। वर्ग संघर्ष के उन्मूलन के लिए समाजवाद में नौकर–मालिक, छोटा–बड़ा, स्त्री–पुरुष के अधिकारों में असमानता तथा ऊँच–नीच की अवधारणाओं एवं उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का समूल विनाश आवश्यक है। भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रचार–प्रसार बहुत देर में हुआ। अंग्रेज़ों के औपनिवेशिक शासन में समाजवादी विचारधारा को पनपने का मौका कोई मौका नहीं दिया गया। भारतीय राजनीति का बुर्जआ नेतृत्व समाजवादी विचारधारा का पोषक नहीं था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक समाजवादी विचारों को सम्मिलित नहीं किया गया था। किसानों और मज़दूरों के हितों की बात आमतौर पर मानवतावादी दृष्टिकोण से की जाती थी न कि उनके मौलिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में। भारतीय राजनीति पर पूंजीपतयों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, वकीलों, ज़मींदारों और भारतीय रियासतों के शासकों का व्यापक प्रभाव था। प्रारम्भिक भारतीय राजनीतिज्ञों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा मज़दूरों के हित में बनाए गए फैक्ट्री एक्ट को भारतीय औद्योगिक विकास में बाधा बताकर उसकी आलोचना की। मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी, कार्यक्षेत्र में उनकी सुरक्षा, उनके कार्य की अधिकतम समय सीमा पर नियन्त्रण, उनकी चिकित्सा सुविधाओं, आवासीय सुविधाओं, बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था और पेंशन की सुविधा की उन्होंने कोई मांग नहीं की। किसानों को ज़मींदारों, महाजनों, सरकारी कर्मचारियों आदि के शोषण से बचाने के लिए उन्होंने कोई अभियान नहीं किया तथा भारतीय रियासतों के शासकों द्वारा अपनी प्रजा पर मनमाने अत्याचार किए जाने के विरुद्ध उन्होंने कोई आन्दोलन नहीं किया क्योंकि पूंजीपतियों, ज़मींदारों तथा भारतीय रियासतों के शासकों से प्राप्त चंदों तथा अनुदानों से ही उनकी राजनीतिक गतिविधियों का संचालन हो पाता था। प्रारम्भ में अधिकांश भारतीय राजनीतिज्ञों के जीवन पर सामन्तवादी विलासिता तथा पाश्चात्य शासकों की वैभवपूर्ण जीवन पद्धति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने इन नेताओं की देशभक्ति तथा आम जनता की चिन्ता करने के तरीके पर व्यंग्य कसते हुए कहा था –

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ।।

(देश तथा देशवासियों की चिन्ता करने वाले नेतागण सरकारी अधिकारियों के साथ रात्रि–भोज

करते हैं। देशसेवा करने में इनको कष्ट तो बहुत होते हैं मगर इनके विलासितापूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

दादाभाई नौरोजी और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव अवश्य पड़ा था। स्वदेशी आन्दोलन में सभी वर्गों को शामिल किए जाने के बाद से राजनीतिक आन्दोलनों में आम आदमी की सहभागिता बढ़ने लगी थी। लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस में आम आदमी की हिस्सेदारी को बहुत महत्व दिया था।

2. **रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से पूर्व क्या भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास हुआ था? लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

3.4.2 बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास

1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में बुद्धिजीवियों का समाजवादी विचारधारा से परिचय हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राजतन्त्र को गहरा आघात लगा और अनेक देशों में लोकतान्त्रिक शासन स्थापित हुआ। भारत में भी स्वशासन की, होमरूल की तथा डोमिनियन स्टेटस की मांग की जाने लगी। गांधीजी ने 1917 के चम्पारन आन्दोलन तथा 1918 के खेड़ा आन्दोलन से ही निर्धनों तथा शोषितों के हित को अपनी राजनीतिक गतिविधियों के लक्ष्यों में शामिल किया था। असहयोग आदोलन में उन्होंने आम जनता की भागीदारी को अत्यधिक महत्व दिया। भारतीय इतिहास का यह पहला राजनीतिक आन्दोलन था जिसमें अमीर–गरीब, शहरी–ग्रामीण, शिक्षित–अशिक्षित, मालिक–मज़दूर, किसान–ज़मींदार, स्त्री–पुरुष, ऊँच–नीच का कोई भेद नहीं रखा गया था। गांधीजी के ग्राम स्वराज्य, नारी उत्थान तथा असपृश्यता निवारण के कार्यक्रमों में हम समाजवादी विचारधारा की मूल भावना के दर्शन कर सकते हैं। परन्तु गांधीजी की ट्रस्टीशिप की तथा हृदय परिवर्तन की अवधारणाएं समाजवादी वर्ग संघर्ष की अवधारणा के सर्वथा विरुद्ध थीं। 1922 में असहयोग आन्दोलन के स्थगन से भारतीय युवा वर्ग गांधीजी की नीतियों का पहले की भांति परम अनुयायी नहीं रहा। गांधीजी की ट्रस्टीशिप की तथा हृदय परिवर्तन की अवधारणाएं समाजवादी विचारधारा के अनुयायियों की दृष्टि में सर्वथा अव्यावहारिक थी। समाजवादियों ने एक ओर ज़मींदारों

को किसानों का परम शोषक मानकर ज़मींदारी उन्मूलन की बात की तो दूसरी ओर अब उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बाद भारतीय पूंजीपतियों, उद्योगपतियों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच गठबन्धन के विरुद्ध अपना अभियान चलाने का निश्चय किया क्योंकि विश्वयुद्ध के दौरान बदली हुई औद्योगिक परिस्थितियों में विदेशी सरकार अब भारतीय उद्योपतियों के साथ मिलकर भारतीयों का शोषण करना चाहती थी।

अब तक भारत में साम्यवादी रूस में सार्वजनिक जन–कल्याण कार्यक्रमों तथा सरकार के संचालन में आम आदमी की सहभागिता के उत्साहवर्धक परिणामों की सूचना पहुंचने लगी थी। 1914 से 1920 के दौरान महंगाई लगभग 80 प्रतिशत बढ़ गई, सूती कपड़ों के मिलों तथा जूट के मिलों के मालिकों के मुनाफ़े में अत्यधिक वृद्धि हुई किन्तु श्रमिकों की मज़दूरी नहीं बढ़ाई गई बल्कि उनकी संख्या कम करने का प्रयास भी किया गया। 1918 से लेकर 1920 तक भारत में श्रमिक हड़तालों का व्यापक दौर चला। जनवरी, 1919 में बम्बई के लगभग सभी कपड़ा मिलों में हड़ताल हुई। श्रमिकों ने रॉलट एक्ट का विरोध कर अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया। मद्रास में टी0 वी0 कल्याणसुन्दरम मुदलियार, ई0 एल0 अय्यर तथा बी0 पी0 वाडिया द्वारा पहली ट्रेड यूनियन की स्थापना हुई। मद्रास में बी0 पी0 वाडिया ने 1918–19 की श्रमिक हड़ताल का नेतृत्व किया। बी0 पी0 वाडिया ने फ्रांस में शापुरजी सकलाटवाला से भेंट करके लाला लाजपत राय के साथ मिलकर 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' का गठन करने का निश्चय किया। कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया की स्थापना अक्टूबर, 1920 में एम0 एन0 राय द्वारा, कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के तत्वावधान में ताशकन्द में की गई थी। इसी समय भारत में 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना हुई जिसका प्रथम अधिवेशन लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में बम्बई में 31 अक्टूबर, 1920 को प्रारम्भ हुआ। लाला लाजपत राय ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वर्ग संघर्ष तथा पूंजीवाद के विरुद्ध श्रमिकों की अन्तर्राष्ट्रीय एकता का उल्लेख नहीं किया किन्तु सैन्यवाद, साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के विरुद्ध श्रमिक संगठन की महत्ता पर प्रकाश अवश्य डाला। उन्होंने बोल्शेविक समाजवादी प्रणाली को पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी प्रणाली से कहीं बेहतर माना। मद्रास के समाजवादियों ने यह स्पष्ट किया कि वो केवल श्रमिकों के वेतनों में वृद्धि तथा मुनाफ़े में अपना हिस्सा ही नहीं चाहते हैं बल्कि औद्योगिक नियन्त्रण तथा भूमि का राष्ट्रीयकरण भी चाहते हैं। मद्रास के श्रमिकों ने बागानों के मालिकों द्वारा फ़िजी के भारतीय श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध संघर्ष में अपना समर्थन व्यक्त कर अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक एकता का परिचय दिया। एम0 एन0 राय ने 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' को राष्ट्रवाद, आदर्शवाद तथा यथार्थवाद के समन्वय के रूप में देखा। शापुरजी सकलाटवाला ब्रिटिश जहाजों पर काम कर रहे भारतीय नाविकों से सम्बन्धित 'वर्कर्स वेलफ़ेयर लीग फ़ॉर इण्डिया इन इंग्लैण्ड' से सक्रिय रूप से जुड़े रहे।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान रूसी क्रान्ति ने साम्राज्यवादियों को झकझोर दिया था।

अब वो सर्वहारा वर्ग के हितों तथा उनके अधिकारों की न तो पूर्णतया उपेक्षा ही कर सकते थे और न ही उनका खुलकर दमन कर सकते थे इसलिए 'लीग आफ़ नेशन्स' के एक अन्तरंग संगठन के रूप में 'इण्टरनेशनल लेबर ऑर्गनाइज़ेशन' की स्थापना की गई जिसका कि उद्देश्य दुनिया भर के मज़दूरों के हितों की रक्षा करना था। यह बात और है कि इस संगठन पर उद्योगपतियों तथा पूंजीपतियों का सदैव प्रभुत्व स्थापित रहा।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारियों ने समाजवादी तथा साम्यवादी मूल्यों पर आधारित सरकार की स्थापना का स्वप्न देखा। उन्हें गांधीजी द्वारा पूंजीवादी समर्थक लोकतान्त्रिक सरकार की स्थापना का प्रयास भारत के लिए कल्याणकारी नहीं लगता था। अब क्रान्तिकारी आम जनता की भागीदारी को अधिक महत्व दे रहे थे और जन–आन्दोलनों के द्वारा सरकार की बुनियाद कमज़ोर करना चाहते थे। उनकी विचारधारा समाजवाद तथा साम्यवाद की ओर उन्मुख हो गई थी। अब स्वतन्त्रता, समानता के सिद्धान्तों पर आधारित शोषण मुक्त समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था। पूर्व क्रान्तिकारी बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्रनाथ दत्त और बरकतुल्ला का झुकाव अब मार्क्सवाद की ओर हो चला था। सचिन्द्रनाथ सान्याल, जतिन्द्रनाथ सान्याल, जोगेश चन्द्र चटर्जी, रामप्रसाद बिस्मिल तथा चन्द्रशेखर आज़ाद ने अक्टूबर, 1924 में कानपुर में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य भारत में एक संघीय गणतन्त्र की स्थापना रखा गया। इसमें सभी वयस्कों को मताधिकार देने तथा व्यवस्था की सभी शोषक प्रवृत्तियों के उन्मूलन का संकल्प किया गया था। इसके कार्यक्रमों में श्रमिक संघों की स्थापना की जानी थी और रेलवेज़, कोयले की खानों आदि के मज़दूरों को क्रान्ति की उपयोगिता के विषय में अवगत कराना सम्मिलित था।

1926 में भगत सिंह, छबील दास यशपाल आदि नवयुवकों ने 'नौजवान सभा' की स्थापना की। इस सभा के उद्देश्य थे –

1. भारत में सर्वहारा वर्ग की सरकार की स्थापना।
2. देश के युवकों में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का संचार करना।
3. धर्मनिर्पेक्षता पर आधारित आर्थिक तथा सामाजिक आन्दोलनों को सहयोग प्रदान करना।
4. सर्वहारा वर्ग को संगठित करना।

'नौजवान सभा' पर साम्यवादी तथा समाजवादी विचारों का स्पष्ट प्रभाव था। केदारनाथ सहगल, शार्दूल सिंह कवीश्वर, आनन्द किशोर महता, पिण्डी दास सोढी आदि इसके सदस्य थे। विश्व–व्यापी आर्थिक मन्दी से पंजाब में शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही थी। छोटे किसान, ज़मींदारों तथा भू स्वामी समृद्ध किसानों के शोषण से त्रस्त होकर साम्यवादी विचारधारा की पोषक 'किरती किसान पार्टी' की ओर झुकने लगे थे। 'नौजवान सभा' एक ओर बोल्शेविक क्रान्ति के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थी। तो दूसरी ओर यह चीन में सन् यात् सेन की क्रान्ति से भी प्रभावित थी। नौजवान सभा रूस के साथ मैत्रीपूर्ण

सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थी।

चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में अजोय घोष, फणीन्द्रनाथ घोष और 'नौजवान सभा' के भगत सिंह ने 9–10 सितम्बर, 1928 को 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की। इस लोकतान्त्रिक संगठन का उद्देश्य भारत में समाजवादी गणतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना करना था। 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' का धर्मनिर्पेक्षता में विश्वास था। भगतसिंह तो खुद को नास्तिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। अपने ऊपर मुकदमा चलाए जाते समय भगत सिंह ने यह स्पष्ट किया कि वह विदेशी तथा भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंक कर समाज में आमूल परिवर्तन लाकर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही लाना चाहते हैं।

भारत में सितम्बर, 1924 में सत्यभक्त ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अन्तरिम संविधान की घोषणा की जिसमें समुदाय के हितों में उत्पादनों के साधनों तथा सम्पत्ति के समान बटवारे पर ज़ोर दिया गया था। 1927 में बम्बई में मज़दूर तथा किसान दलों का गठन हुआ। अक्टूबर, 1928 में मेरठ में एक सम्मेलन हुआ जिसमें श्रमिकों को ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार, अधिकतम कार्य–अवधि 8 घंटे निर्धारित करने, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में न्यूनतम मज़दूरी की दर तय करने के प्रस्ताव रखे गए। किसानों के हित के लिए इस सम्मेलन में ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमिहीन किसानों को भूमि का वितरण तथा किसानों की आर्थिक सहायता के लिए कृषि बैंकों की स्थापना के प्रस्ताव रखे गए।

3. **बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में समाजवादी विचारधारा के विकास पर लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) समाजवाद के आधारभूत सिद्धान्त।

(ख) 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के लक्ष्य।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) भारत में पहली ट्रेड यूनियन की स्थापना कहां हुई?

(ii) 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' का पहला अध्यक्ष कौन था?

3.5 भारतीय राजनीति तथा आर्थिक जगत में समाजवाद के प्रभाव का दूसरा चरण

3.5.1 कांग्रेस की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव

कांग्रेस के युवा नेता जवाहर लाल नेहरू इंग्लैण्ड में अपने छात्र जीवन में समाजवादी विचारधारा से अवगत हो चुके थे किन्तु रूस की क्रान्ति के फलस्वरूप रूस के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक ढांचे में आमूल परिवर्तन तथा वहां सर्वहारा वर्ग को सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया था। फ़रवरी, 1927 में जवाहर लाल नेहरू ने ब्रसेल्स कांग्रेस में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया और वहां वो समाजवादियों के साम्राज्यवाद विरोधी संगठन से बहुत अधिक प्रभावित हुए। नवम्बर, 1927 की अपनी रूस की यात्रा में उन्होंने श्रमिकों तथा किसानों को सर्व–शक्तिशाली ज़ार के सिंहासन पर बैठे देखा। उन्हें रूस के सामाजिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम ने बहुत अधिक प्रभावित किया किन्तु भारत में गांधीजी के अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही वो सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को चलाना चाहते थे। नेहरू की भांति सुभाष चन्द्र बोस भी सामाजिक न्याय को राष्ट्रवाद का अन्तरंग अंग बनाना चाहते थे। अगस्त, 1928 में जवाहर लाल नेहरू ने काग्रेस के भीतर 'इण्डिपेन्डेन्स फ़ॉर इण्डिया लीग' की स्थापना की जिसका कि एक उद्देश्य भारत में समाजवादी आाधार पर गणतन्त्र की स्थापना करना था। सुभाष ने भी उनके इस प्रगतिशील अभियान में उनका साथ दिया। 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के 1929 में अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू तथा इसके 1931 के अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस रहे। 1929 की आर्थिक मंदी ने पूंजीवाद राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया था। परंतु सोवियत यूनियन की अर्थव्यवस्था इस विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी में भी सुदृढ़ बनी रही। पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। बढ़ती हुई बेरोजगारी और खाद्यान्न पदार्थों की कीमत में कमी से किसान व मजदूर वर्ग में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ और यह वर्ग सोवियत यूनियन के समाजवादी सिद्धान्तों की ओर आकर्षित हुआ।

जवाहर लाल नेहरू के दबाव में 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में मौलिक अधिकार और आर्थिक सुधार की नीति को सम्मिलित किया गया। इसमें किसानों को राहत देने के लिए, लगान में कमी और कृषि सम्बंधी ऋणग्रस्तता में राहत दिए जाने

का प्रस्ताव भी रखा गया। मजदूरों को यूनियन बनाने का अधिकार देने और महत्वपूर्ण उद्योगों, खानों व संचार साधनों पर निजी अधिकार के स्थान पर सरकारी नियन्त्रण का प्रस्ताव रखा गया।

जवाहर लाल नेहरू की पुस्तकों *ग्लिम्प्सेज़ ऑफ वर्ड हिस्ट्री* (1934) तथा *ऑटोबायोग्राफ़ी* (1934–35) में उनका, मार्क्स की समाजवादी विचारधारा के प्रति रुझान स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। उन्होंने इस बात पर बार–बार ज़ोर दिया था कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को उग्र सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम के साथ जोड़ देना चाहिए। हिन्दू महासभा ने अजमेर में, अक्टूबर, 1933 में आयोजित अपने अधिवेशन में, पूंजीपतियों और ज़मींदारों पर आक्रमणों को, हिन्दू धर्म पर आघात बताया था, इस सन्दर्भ में जवाहर लाल नेहरू ने हिन्दू साम्प्रदायिकता पर कठोर प्रहार किए। जवाहर लाल नेहरू को उनकी साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा के प्रति रुझान के कारण अंग्रेज़ों ने उन्हें फिर जेल में डाल दिया और वो भी तब जब कि लगभग सभी नेता जेल से बाहर थे।

कांग्रेस के अन्दर–अन्दर समाजवादी विचारधारा अपना प्रभुत्व स्थापित करती जा रही थी परन्तु उसको वामपंथ की ओर उन्मुख करने की योजना 1933 में नासिक जेल में आयोजित की गई बैठकों में जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, यूसुफ़ मेहराली, मीनू मसानी तथा सम्पूर्णानन्द द्वारा बनाई गई। अप्रैल, 1934 में उन्होंने भारत के लिए एक अन्तरिम समाजवादी कार्यक्रम तैयार किया और पटना में मई, 1934 में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में कांग्रेस समाजवादी दल का विधिवत गठन हुआ। इस दल की नीतियों में अस्पष्टता थी क्योंकि यह रहना तो कांग्रेस में ही चाहता था पर इसका कांग्रेस नेतृत्व में विश्वास नहीं था और यह वामपंथी दलों के साथ मिलकर काम करना चाहता था। यह दल वर्ग संघर्ष की हिंसात्मक प्रणाली में विश्वास करता था तथा निजी सम्पत्ति के ज़ब्त किए जाने का पक्षधर था। जून, 1934 में कांग्रेस कार्यसमिति ने इस दल की अनर्गल और गैर–ज़िम्मेदाराना उद्‌गारों के लिए निन्दा की थी। पट्‌टाभि सीतारमैया जैसे दक्षिणपंथी कांग्रेस नेताओं की दृष्टि में इस दल के सदस्य कूड़े–कचरे से अधिक नहीं थे।

सितम्बर, 1934 में सरकारी स्रोतों के अनुसार संयुक्त प्रान्त जैसे विशाल प्रान्त में कांग्रेस की प्रान्तीय कार्यकारिणी में 11 में से 7 सदस्य समाजवादी विचारधारा के थे परन्तु इस आकलन का ठोस आधार नहीं था। फिर भी कांग्रेस समाजवादी दल के प्रचार ने भूमि सम्बन्धी क्रान्तिकारी सुधार, औद्योगिक श्रमिकों की समस्याओं, भारतीय रियासतों के भविष्य और जन–आन्दोलन के गैर–गांधीवादी तरीकों तथा किसानों व श्रमिकों की आम हड़तालों पर कांग्रेस नेतृत्व को पुनर्विचार करने के लिए बाध्य किया।

कांग्रेस के समाजवादी दल ने बिहार तथा आंध्र प्रदेश की किसान सभाओं से घनिष्ठ सम्पर्क रखा। 1933 में आयोजित एलोरे ज़मीदारी रैयत कॉन्फ्रेन्स में ज़मीदारी उन्मूलन की मांग की गई तथा कांग्रेस समाजवादी दल के नेता एन0 जी0 रंगा ने किसान

संगठन के सदस्यों के प्रशिक्षण के लिए निदुब्रोलू में 'इण्डियन पीज़ेन्ट इन्सटीट्यूट' की स्थापना की। 1933 में कांग्रेस के समाजवादी दल ने बिहार में सहजानन्द सरस्वती को सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान कमज़ोर पड़ गई किसान सभा को पुनर्जीवित करने के लिए प्रोत्साहित किया। ज़मीदारों का संरक्षण प्राप्त 'यूनाइटेड पार्टी' किसानों को थोड़ी बहुत रियायतें जैसे पेड़ लगाने का, कूएं खोदने का, सलामी देने के बाद जोत–भूमि के हस्तान्तरण के अधिकार दिलाकर चुनाव में उनके वोट हासिल करना चाहती थी और मन्दी के दौर में लगान में रियायत, ज़मीदारों के *जेरायत* (निजी जोत–भूमि) और *बकाश्त* (परम्परागत काश्तकारों के स्थान पर अल्पावधि के लिए काश्तकारी पर भूमि देने की व्यवस्था) में वृद्धि के प्रयास जैसे गम्भीर मसलों पर चुप साधना चाहती थी। सहजानन्द ने उत्तर तथा मध्य बिहार में किसानों के विशाल समूह को अपने कार्यक्रम में शामिल करने में सफलता प्राप्त की। उनकी किसान सभा की सदस्यता 1935 में 80000 तक पहुंच गई। प्रारम्भ में सहजानन्द ज़मीदारी उन्मूलन के पक्ष में नहीं थे किन्तु कांग्रेस समाजवादी दल के अनुरोध पर उन्होंने बिहार प्रान्तीय किसान सभा के नवम्बर, 1935 के हाजीपुर अधिवेशन में इस क्रान्तिकारी कदम को अपना लिया।

'ऑल इण्डिया किसान सभा' के माध्यम से कांग्रेस के लखनऊ तथा फ़ैज़पुर अधिवेशनों के दौरान राष्ट्रवादी वामपंथियों, समाजवादियों तथा साम्यवादियों में एकता की भावना का नव–संचार हुआ।

1935 तथा 1936 में भारतीय राजनीति वामपंथ की ओर उन्मुख हुई और साम्यवादी तथा समाजवादी गतिविधियों में तेज़ी आई। हालांकि सरकार ने 1934 से 1942 तक 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया' पर प्रतिबन्ध लगा रखा था परन्तु साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा के नेताओं ने अन्य राजनीतिक दलों में, विशेषकर कांग्रेस में रहते हुए, अपने विचारों का प्रचार–प्रसार किया। कांग्रेस के अप्रैल, 1936 के लखनऊ तथा दिसम्बर, 1936 के फ़ैज़पुर अधिवेशनों में जवाहर लाल नेहरू के अध्यक्षीय भाषणों में प्रस्तुत प्रस्तावों में वामपंथियों के लगभग सभी मूलभूत कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया। कांग्रेस के 1936 के फ़ैजपुर के अधिवेशन में मज़दूरों को हड़ताल करने का अधिकार और किसानों को संघ बनाने का अधिकार, देने का प्रस्ताव रखा गया। छोटे किसानों को राहत देने के लिए, लगान में कमी, काश्तकारी की अवधि में वृद्धि और कृषि सम्बंधी ऋणग्रस्तता में राहत दिए जाने का प्रस्ताव रखा गया। वयस्क मताधिकार की हिमायत कर जवाहर लाल नेहरू ने मताधिकार के लिए सम्पत्ति अथवा शिक्षा की न्यूनतम शर्त हटाए जाने की मांग कर वैधानिक समता स्थापित करने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में 1938 में कांग्रेस ने राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया। 1938 में कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन में अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने सोवियत रूस की पंच वर्षीय योजनाओं से प्रभावित होकर भारत में भी योजना बद्ध आर्थिक विकास की नीति अपनाए जाने की संस्तुति की।

4. भारतीय राजनीति तथा आर्थिक जगत में समाजवाद के प्रभाव पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.5.2 किसान आन्दोलनों पर समाजवादी प्रभाव

बाबा रामचन्द्र ने 1920 में प्रतापगढ़ में 'अवध किसान सभा' का गठन किया। 'अवध किसान सभा' ने किसानों को बेदखली वाली ज़मीन को जोतने और बेगार करने से इंकार करने के लिए कहा। 1921 में इस आन्दोलन का स्वरूप उग्र हो गया तथा इसका विस्तार अवध तक हो गया। इस आन्दोलन में ज़मींदारों तथा साहूकारों के घरों व अनाज के गोदामों में लूटपाट भी की गई। पुलिस के साथ मुठभेड़ में कई लोग मारे भी गए।

1921 में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने किसानों को ज़मीन की बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'अवध राजस्व अधिनियम' पारित किया। 1921–22 में हरदोई, बाराबंकी और सीतापुर में निर्धारित लगान से ड्यौढ़ी वसूली के विरोध में निम्न वर्ग के नेताओं के नेतृत्व में एका आन्दोलन हुआ। मार्च, 1922 तक इसका दमन कर दिया गया। स्वामी विद्यानन्द ने 1922 में ज़मींदारी उन्मूलन की मांग की।

जयप्रकाश नारायण

1928 में सूरत के बारदोली तालुके में मेहता बन्धु तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में कुनबी पाटीदार, काली पराज तथा रानी पराज जातियों ने मिलकर आन्दोलन किया। कपास उगाने वाले किसानों पर कपास के दामों में भारी कमी के बावजूद लगान में वृद्धि के विरोध में सभी वर्गों के किसान संगठित हो गए। अहमदाबाद के श्रमिकों ने इस आन्दोलन के लिए प्रति व्यक्ति एक–एक आना (रुपये का सोलहवां भाग) चंदा लेकर 1300 रुपये एकत्र किए। इसी समय बम्बई में साम्यवादी नेतृत्व में गिरनी कामगार हड़ताल हुई। सरकार को यह आशंका हुई कि बारदोली के किसान आन्दोलन तथा बम्बई की श्रमिक हड़ताल का आपस में कुछ सम्बन्ध है और साम्यवादी बारदोली आन्दोलन का लाभ उठाकर किसानों में भी अपनी पहुंच बना लेंगे इसलिए उसने किसानों को थोड़ी बहुत रियायतें देने का फैसला किया। बारदोली आन्दोलन के खिलाफ़ पुलिस कार्यवाही की योजना रद्द कर दी। जुलाई, 1929 में बम्बई

सरकार ने राजस्व पुनर्निर्धारण अगले संवैधानिक संवैधानिक सुधारों तक के लिए स्थगित कर दिया।

स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में 1936 में लखनऊ में विभिन्न किसान सभाओं को संगठित कर 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई। इसके महासचिव समाजवादी एन0 जी0 रंगा बने। इस किसान सभा पर वामपंथियों तथा समाजवादियों का प्रभाव था। जवाहर लाल नेहरू ने इस किसान सभा के पहले अधिवेशन में भाग लिया। इस किसान सभा से सम्बद्ध व्यक्तियों में जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव आदि सम्मिलित थे। स्वामी सहजानन्द का विचार था कि अपने मौलिक अधिकारों को हासिल करने के लिए किसानों को अपना संगठन बनाकर रोज़ ही अपनी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। स्वामी सहजानन्द ने किसान कामरेडों को ज़मींदारों, साहूकारों तथा भ्रष्ट राजस्व अधिकारियों के शोषण पर नियन्त्रण स्थापित करने में अपना सक्रिय योगदान देने के लिए कहा। उनकी दृष्टि में और किसानों को ज़मीनों से बेदखल किए जाने या उनकी सम्पत्ति और उनके जानवरों की नीलामी रोकने में किसान कामरेडों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती थी। खेतिहर मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी का निर्धारण, ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन और किसान सभाओं को मान्यता दिलाना भी किसान सभा का उद्देश्य था।

राममनोहर लोहिया

सितम्बर, 1946 में तिभागा आन्दोलन 'बंगाल किसान सभा' द्वारा संचालित एक किसान आन्दोलन था जो कि द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त जोतेदारों के विरुद्ध उत्तर बंगाल में हुआ था। बर्गदार (बटाईधार) किसानों ने जमींदारों को लगान के रूप में कुल फ़सल का आधा भाग देने के स्थान पर एक तिहाई भाग ही देने के लिए सफल आन्दोलन किया था। इस आन्दोलन में साम्यवादियों तथा छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

जुलाई, 1946 से सितम्बर, 1948 तक तेलंगाना के किसानों ने निज़ाम द्वारा उन पर अन्यायपूर्ण करों का बोझ लादने की नीति, देशमुखों के शोषण तथा निज़ाम के रज़ाकारों के दल के विरुद्ध जन–आन्दोलन किया। इस आन्दोलन का प्रसार लगभग 3000 गांवों में हुआ। इस आन्दोलन में साम्यवादियों की भूमिका सराहनीय रही। निज़ाम को विवश होकर अनेक भूमि तथा कर सम्बन्धी सुधार करने पड़े। खेतिहर मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाई गई, बेगार पर रोक लगाई गई, किसानों की ज़ब्त ज़मीनें लौटाई गईं और भू–सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निर्धारित कर अतिरिक्त ज़मीन का भूमिहीनों में वितरण किया गया।

केरल में कांग्रेस, समाजवादी तथा साम्यवादी दलों ने किसानों के हितों रक्षार्थ आन्दोलनों का नेतृत्व किया। पंजाब में 'नौजवान सभा' तथा 'कीर्ति किसान' ने सिंचाई कर में कमी कराने में सफलता प्राप्त की।

5. किसान आन्दोलनों पर समाजवादी प्रभाव पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.5.3 श्रमिक आन्दोलन

असहयोग आन्दोलन के दौरान 1921 में लगभग 400 हड़तालें हुईं। 1920 से 1922 तक 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बद्ध रही जिसने मज़दूरों के हितों की रक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को 1921 के नागपुर तथा 1922 के गया अधिवेशन में दोहराया।

1934 से आर्थिक मन्दी का दौर समाप्ति की ओर बढ़ने लगा। 1935 में जूट मिलों में लगभग 1500 नए मज़दूरों की भर्ती की गई। 1936 में साप्ताहिक कार्यावधि में कटौती को समाप्त कर उसे फिर से 54 घंटे कर दिया गया परन्तु गोरे तथा भारतीय पूंजीपतियों ने मन्दी के दौरान वेतनों में की गई कटौती अभी भी जारी रखा। इसके विरोध में 1935 में अहमदाबाद व कलकत्ता के केसोराम कॉटन मिल्स में, दिसम्बर, 1936 से फ़रवरी, 1937 तक बेंगाल–नागपुर रेलवे में तथा 1936–37 के दौरान कलकत्ता के जूट मिलों तथा कानपुर के कपड़ा मिलों में अनेक हड़तालें हुईं। इस बीच अप्रैल, 1935 में साम्यवादियों की ट्रेड यूनियन, एम0 एन0 राय तथा कुछ समाजवादियों के साथ 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' में 1931 के बाद फिर से शामिल हो गई और एक नए 'लेबर बोर्ड' का गठन किया गया। 1936 में साम्यवादियों ने अपने नए महासचिव पी0 सी0 जोशी के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे ने 1935 की गर्मियों में आयोजित सातवीं 'कमिन्टर्न कांग्रेस' में दिमित्रोव द्वारा तैयार की गई रणनीति का समर्थन किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में रहते हुए उसे 'जनता के साम्राज्य विरोधी मोर्चे' में परिवर्तित करने का लक्ष्य रखा और श्रमिक संघों तथा किसान संघों को कांग्रेस से सम्बद्धता बनाए रखने की सलाह दी। छात्रों में समाजवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव हुआ। छात्रों में समाजवादी विचारधारा के प्रसार के उद्‌देश्य से 'आल इण्डिया स्टूडेन्ट्स फ़ेडरेशन' का गठन हुआ। समाजवादी विचारधारा ने राष्ट्रीय आन्दोलन

में धर्मनिर्पेक्षता, श्रमिकों तथा किसानों की आर्थिक उन्नति, नारी उत्थान आदि विचारों को सम्मिलित कराने में सफलता प्राप्त की।

3.5.4 साहित्य का समाजवादी विचारधारा के प्रसार में योगदान

बोल्शेविक क्रान्ति का तमिल के महान कवि सुब्रहमणियम भारती ने हार्दिक स्वागत किया था। बंगला के विप्लवकारी कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम के काव्य में आमूल परिवर्तन की कल्पना की गई है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक में प्रगतिशील साहित्य का प्रचुर मात्रा में सृजन हुआ। प्रेमचन्द की कहानियों *कफ़न, पूस की रात, ठाकुर का कूआं* तथा *सद्‌गति* में सर्वहारा वर्ग की बेबसी और लाचारी का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। उनके उपन्यास *कर्मभूमि* में दलितों को मन्दिर प्रवेश–निषेध को तोड़ते हुए दिखाया है। उनके महानतम उपन्यास *गोदान* में ज़मींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत एक किसान के आजीवन संघर्ष और विपन्न अवस्था में उसकी मृत्यु का मार्मिक चित्रण किया गया है। हिन्दी में रामधारी सिंह की कविता–

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बच्चे अकुलाते हैं,
माँ की हड्‌डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।

में असमान धन वितरण की व्यवस्था की भर्त्सना करते हुए आमूल परिवर्तन हेतु क्रान्ति का आह्‌वान किया गया है। उर्दू के प्रगतिशील साहित्य में जोश मलिहाबादी, मजाज़ लखनवी, साहिर लुधियानवी, कृष्ण चन्दर, इस्मत चुग़ताई, सरदार जाफ़री और कैफ़ी आज़मी का योगदान उल्लेखनीय है परन्तु फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने इस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। उनकी नज़्म *मुझसे पहली सी मोहब्बत मेरे महबूब न मांग* ने अनेक साहित्यकारों को प्रगतिशील काव्य के सृजन की प्रेरणा दी थी। प्रगतिशील कलाकारों ने *इप्टा* के माध्यम से प्रगतिशील साहित्यिक रचनाओं का मंचन करके समाजवादी विचारधारा को जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया था। प्रगतिशील साहित्य भारत की हर भाषा में रचा गया और इसने जनमानस में अन्याय का प्रतिकार करने की भावना संचार करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने समाजवादी विचारधारा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1922 में श्रीपद डांगे ने *दी सोशलिस्ट* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। साम्यवादी विचारधारा का प्रतिबिम्बन *न्यू स्पार्क* , *नेशनल फ्रन्ट* तथा *प्यूपिल्स वार* में हुआ। बम्बई से प्रकाशित मराठी साप्ताहिक पत्र *क्रान्ति* किसानों तथा मज़दूरों के अधिकारों का पक्षधर था। पंजाब की मज़दूर एवं किसान पार्टी ने उर्दू में *मेहनतकश* पत्र का प्रकाशन किया। जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रवादी पत्र *नेशनल हैराल्ड* में भी समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया। सरकार ने अनेक बार अपने कटु आलोचक पत्रों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध भी लगाया किन्तु इनका समाजवाद का सन्देश निरन्तर अपने पाठकों तक पहुंचता रहा।

6. साहित्य का समाजवादी विचारधारा के प्रसार में योगदान पर टिप्पणी लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

3.5.5 स्वतन्त्र भारत की सरकार की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव

भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों में स्वतन्त्रता, समानता के अधिकार को शामिल किया गया है तथा शोषण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है। बंधुआ मज़दूरी, बेगार, बाल–श्रम पर रोक की व्यवस्था किए जाने में हम समाजवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्तों में कारखानों के प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी की व्यवस्था भी संविधान निर्माताओं पर समाजवादी प्रभाव को दर्शाती है। भारतीय रियासतों का भारतीय संघ में विलय, ज़मींदारी उन्मूलन का निर्णय तथा पंच वर्षीय योजनाओं के द्वारा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का अभियान भी समाजवादी प्रभाव के परिचायक हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) 'अखिल भारतीय किसान सभा' पर समाजवादी प्रभाव।

(ख) जवाहर लाल नेहरू के चिन्तन पर समाजवाद का प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन का अध्यक्ष कौन था?

(ii) *गोदान* उपन्यास की रचना किसने की है?

3.6 सार संक्षेप

1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में बुद्धिजीवियों का समाजवादी विचारधारा से परिचय हुआ। 1918 से लेकर 1937 तक भारत में श्रमिक हड़तालों का व्यापक दौर चला। अक्टूबर, 1920 में एम0 एन0 राय द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई और इसी समय 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना हुई। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारियों ने समाजवादी तथा साम्यवादी मूल्यों पर आधारित सरकार की स्थापना का स्वप्न देखा।

जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस सामाजिक न्याय को राष्ट्रवाद का अन्तरंग अंग बनाना चाहते थे। जवाहर लाल नेहरू के दबाव में 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में मौलिक अधिकार और आर्थिक सुधार की नीति को सम्मिलित किया गया। मई,

1934 में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में कांग्रेस समाजवादी दल का विधिवत गठन हुआ। 'ऑल इण्डिया किसान सभा' के माध्यम से कांग्रेस के लखनऊ तथा फ़ैज़पुर अधिवेशनों के दौरान राष्ट्रवादी वामपंथियों, समाजवादियों तथा साम्यवादियों में एकता की भावना का नव–संचार हुआ। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित बाबा रामचन्द्र, स्वामी विद्यानन्द तथा स्वामी सहजानन्द ने किसानों के अधिकारों के लिए आन्दोलनों का नेतृत्व किया। सितम्बर, 1946 में बंगाल में तिभागा आन्दोलन, जुलाई, 1946 से सितम्बर, 1948 तक तेलंगाना आन्दोलन में किसानों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

छात्रों में समाजवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव हुआ छात्रों में समाजवादी विचारधारा के प्रसार के उद्देश्य से 'आल इण्डिया स्टूडेन्ट्स फ़ेडरेशन' का गठन हुआ। बीसवीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक में प्रगतिशील साहित्य का प्रचुर मात्रा में सृजन हुआ। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने समाजवादी विचारधारा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों में स्वतन्त्रता, समानता के अधिकार को शामिल किया गया है तथा शोषण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है। भारतीय रियासतों का भारतीय संघ में विलय, ज़मींदारी उन्मूलन का निर्णय तथा पंच वर्षीय योजनाओं के द्वारा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का अभियान भी समाजवादी प्रभाव के परिचायक हैं।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

बुर्जआः मध्यवर्गीय।

ट्रस्टीशिप की अवधारणाः न्यासिता की अवधारणा अर्थात् निजी सम्पत्ति को अपनी न समझ कर उसे समाज की धरोहर समझना।

वर्ग सघंर्षः शोषक तथा शोषित के मध्य अनवरत चलने वाला संघर्ष।

ज़ारः बोल्शेविक क्रान्ति से पूर्व रूस का सम्राट।

ग्लिम्प्सेज़ ऑफ वर्ड हिस्ट्रीः विश्व इतिहास की एक झलक।

हिमायतः समर्थन, पक्ष लेना।

श्वानः कुत्ता।

वसनः कपड़े।

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

देसाई, ए0 आर0 (सम्पादक) – *पीज़ेन्ट स्ट्रगल्स इन इण्डिया*, बम्बई, 1979
सिद्दीकी, माजिद – *एग्रेरियन अनरेस्ट इन नॉर्दर्न इण्डिया ‒ यूनाइटेड प्रॉविन्सेज़, 1918–22*, नई दिल्ली, 1978
अधिकारी, जी0 (सम्पादक) – *डॉक्यूमेन्ट्स ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया, 1917–22* (भाग 1), दिल्ली, 1971
सरकार, सुमीत – *मॉडर्न इण्डिया 1885–1947*, नई दिल्ली, 1983
मिथिलेश कुमार मिश्रा– राष्ट्रीय आंदोलन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

3.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 3.3.1 रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से पूर्व भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास।
   (ख) देखिए 3.3.2 बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारत में समाजवादी विचारधारा का विकास।
2. (i) मद्रास में।
   (ii) लाला लाजपत राय।
   1. (क) देखिए 3.4.2 किसान आन्दोलनों पर समाजवादी प्रभाव।
      (ख) देखिए 3.4.1कांग्रेस की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) सुभाष चन्द्र बोस।

(ii) प्रेमचंद ने।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1.
2. रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारतीय राजनीति में साम्यवादियों की भूमिका का आकलन कीजिए।
3. सुभाष चन्द्र बोस की विचारधारा पर समाजवादी प्रभाव का आकलन कीजिए।
4. बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध के भारतीय साहित्य पर समाजवादी प्रभाव का आकलन कीजिए।
5. गांधीजी का समाजवादी विचारधारा से क्या विरोध था?
6. स्वतन्त्र भारत की सरकार की नीतियों पर समाजवादी प्रभाव का आकलन कीजिए।

ब्लॉक तीन

इकाई – 1 : भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

इकाई – 2 : राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवासी भारतीयों की भूमिका

इकाई – 3 : राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

ब्लॉक का परिचय :

भारत में विभिन्न धार्मिक, जातिगत, भाषागत तथा भौगोलिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण राजनीतिक एवं सामाजिक एकता के कारण राष्ट्रीय एकता की भावना का समुचित विकास नहीं हो सका था। इतिहासकारों ने हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत किया है किन्तु मध्यकाल में हुए सांस्कृतिक समन्वय पर उन्होंने पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला है। अंग्रेज़ों ने 1857 के विद्रोह का दमन करने के बाद फूट डाल कर शासन करने की नीति के अन्तर्गत सबसे अधिक ध्यान हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ाने पर दिया। सैयद अहमद खान के अलीगढ़ आन्दोलन और नवाब सलीमुल्ला खां की मुस्लिम लीग को अंग्रेज़ो ने हिन्दुओं के खिलाफ़ प्रयुक्त किया। बंकिम चन्द्र के उपन्यास *आनन्द मठ* में और आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलन और लोकमान्य तिलक द्वारा गणेश व शिवाजी उत्सवों के आयोजन हिन्दू राष्ट्रवाद के उदाहरण थे। वी0 डी0 सावरकर और अरबिन्दो घोष की विचारधारा में हिन्दू पुनरुत्थान और हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। 1909 में पंजाब में हिन्दू महा–सभा का गठन हुआ। 1905 में बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को विधान परिषदों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। 1916 से 1922 तक साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान होता हुआ प्रतीत होने लगा किन्तु असहयोग आन्दोलन के स्थगन तथा खिलाफ़त आन्दोलन के असफल होने से होते ही साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि होने लगी।

रहमत अली ने 1930 में पाकिस्तान की स्थापना का विचार विकसित किया था। अल्लामा इक़बाल ने मुसलमानों के लिए एक अलग राष्ट्र के निर्माण की मांग का दार्शनिक आधार तैयार किया। 23 मार्च, 1940 को जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्रस्ताव

पारित किया। 16 अगस्त, 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवास की घोषणा की। 1938 में हिन्दू महासभा के अपने अध्यक्षीय भाषण में सावरकर ने कांग्रेस को हिन्दू विरोधी बताया। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई।

लन्दन में 1905 में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारतीय छात्रों के लिए 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की। उन्होने 'इण्डियन होमरूल सोसायटी की भी स्थापना की। वीर सावरकर ने लन्दन में 'अभिनव भारत सोसायटी' की स्थापना कर क्रान्तिकारी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। सावरकर के सहयोगी मदन लाल धींगरा ने भारत सचिव के सलाहकार तथा ब्रिटिश सांसद कर्जन वाइली की हत्या कर दी। 1910 में वी0 डी0 सावरकर को नासिक षडयन्त्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया। अगस्त, 1907 में जर्मनी के स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ़्रेंस' में मैडम कामा ने राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया। सोहन सिंह भाकना तथा लाला हरदयाल ने 1913 में अमेरिका के सैन फ़्रांसिसको नगर में ग़दर पार्टी की स्थापना की। इस दल ने अपना एक पत्र *ग़दर* निकाला। 1915 में बर्लिन में बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' की स्थापना की। रासबिहारी बोस तथा सचिन सान्याल ने ग़दर पार्टी के भारत लौटे सदस्यों के साथ मिलकर भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज़ करने का प्रयास किया। 21 फ़रवरी, 1915 को भारतीय सैनिक छावनियों में विद्रोह की तिथि निश्चित की गई पर इससे पहले ही सरकार को इसकी सूचना मिल गई और विद्रोह को कुचल दिया गया।

दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवासी भारतीयों ने 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की। रास बिहारी बोस ने जापानी सेना के मेजर फ़ूजीवारा तथा युद्धबन्दी कैप्टिन मोहन सिंह की मदद से भारत को मुक्त करने के लिए एक सेना गठित करने की योजना बनाई। सरदार ऊधम सिंह ने मार्च, 1940 में पंजाब के भूतपूर्व लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर की हत्या कर दी। प्रवासी भारतीयों ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को हर सम्भव सहायता देने का प्रयास किया।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने नाना साहब और तात्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेज़ी शासन को भारत में जड़ से खत्म करने के उद्देश्य से विद्रोह का नेतृत्व किया। नवाब वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल 1857 के आन्दोलन की एक प्रमुख सेनानी थीं। मैडम कामा

ने अगस्त, 1907 में स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ़्रेंस' में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया। मास्टर सूर्य के नेतृत्व में 'चिटगांव आर्मरी रेड' में कल्पना दत्त सम्मिलित थीं। आजाद हिंद फौज की महिला सैनिक टुकड़ी 'रानी झांसी रेजिमेंट' की कमाण्डर कैप्टन डॉक्टर लक्ष्मी स्वामीनाथन थीं।

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने भारत में होमरूल की स्थापना को अपना लक्ष्य रखा। 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रांतीय स्तर पर आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार स्थापित कर दी गई।

स्वदेशी आंदोलन के दौरान स्त्रियों ने बहिष्कार अभियान में उत्साहपूर्वक भाग लिया था। श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने गांधीजी के हर आन्दोलन में उनका पूर्ण निष्ठा के साथ सहयोग किया था। गांधीजी ने अपने बहिष्कार और स्वदेशी अभियान में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था। श्रीमती बासन्ती देवी, मिठूबेन पेटिट, लतिका घोष, उर्मिला देवी, मीरा बेन, सरला बेन, एस0 मुथुलक्ष्मी आदि राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक पक्ष से अधिक सम्बद्ध रहीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्रणी नेत्री थीं। सरोजिनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, अवन्तिकाबाई, नीली सेनगुप्ता आदि नमक सत्याग्रह से सम्बद्ध रहीं। राजकुमारी अमृतकौर ने भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया। नेहरू परिवार की अनेक महिलाओं ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया। 1932 में मणिपुर की अल्पायु रानी गैडिनलियु ने नागा आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ दिया। 9 अगस्त, 1942 को गवालिया टैंक मैदान में अरुणा आसफ़ अली ने उषा मेहता के साथ तिरंगा फहराया और भूमिगत कांग्रेस रेडियो का संचालन किया। सुचेता कृपलानी ने 15 अगस्त, 1947 को सविंधान सभा में राष्ट्रगान गाया। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन महिलाओं के योगदान की चर्चा नहीं की जाती है जिन्होंने कस्बे–कस्बे, गांव–गांव स्वदेशी और स्वराज्य की अलख जगाई थी।

इकाई एक : भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 साम्प्रदायिकताः अवधारणा व विविध आयाम

1.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

1.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

1.5 1922 से पूर्व भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

1.5.1 भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना तथा साम्प्रदायिक सद्भाव का अभाव

1.5.2 सैयद अहमद खान का अलीगढ़ आन्दोलन

1.5.3 उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद

1.5.4 बंगाल विभाजन तथा मुस्लिम लीग की स्थापना

1.5.5 सरकार की साम्प्रदायिक विघटन की नीति

1.5.6 साम्प्रदायिक वैमनस्य का अल्प अवधि के लिए शिथिल होना

1.6 भारत में साम्प्रदायिकता की भावना का विकास तथा पाकिस्तान की अवधारणा

1.6.1 बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में साम्प्रदायिक वैमनस्य में वृद्धि

1.6.2 साइमन कमीशन की रिपोर्ट तथा गोलमेज़ सभाएं

1.6.3 पाकिस्तान की अवधारणा

1.6.4 साम्प्रदायिकता की भावना भड़काने में हिन्दू तथा सिख संगठनों की भूमिका

1.6.5 साम्प्रदायिकता की भावना की निरर्थकता

1.7 सार संक्षेप

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत में विभिन्न जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों का अनादि काल से साथ रहा है। अनेकता में एकता भारत की विशेषता रही है। यह सही है कि प्राचीनकाल तथा विशेषकर मध्यकाल में साम्प्रदायिक वैमनस्य ने भारत की एकता पर चोट की थी परन्तु उसमें विघटन की स्थिति कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। पिछली इकाइयों में यह चर्चा की जा चुकी है कि फूट डाल कर शासन करने की ब्रिटिश नीति ने किस प्रकार सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विभिन्नताओं को साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ाने का मध्यम बनाया। इस इकाई में ब्रिटिश कुचक्र के फलस्वरूप भारत में साम्प्रदायिकता के विकास तथा उसके दुखद परिणामों की चर्चा की जाएगी और साथ ही साथ इसके लिए अलीगढ़ आन्दोलन, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, शुद्धि आन्दोलन आदि के उत्तरदायित्व का आकलन भी किया जाएगा।

1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको ब्रिटिश शासन के दौरान, विशेष कर 1857 के विद्रोह के दमन के बाद से भारत की स्वतन्त्रता तक भारत में साम्प्रदायिकता की भावना के क्रमिक विकास की विश्लेषणात्मक जानकारी दी जाएगी। हिन्दू साम्प्रदायिकता, मुस्लिम साम्प्रदायिकता तथा अंग्रेज़ों द्वारा हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालने की नीति की भी आपको जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना के अभाव तथा विभिन्न समुदायों में पारस्परिक कटुता के विषय में।
- भारत में साम्प्रदायिकता की भावना भड़काने में अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के षडयन्त्र के विषय में।
- भारत में साम्प्रदायिकता की भावना विषयक हिन्दू, मुस्लिम तथा अन्य विचारधाराओं के विषय में।
- साम्प्रदायिकता की भावना के प्रचार–प्रसार से भारत के विभाजन तथा उसके दुखद परिणामों के विषय में।

1.3 साम्प्रदायिकताः अवधारणा व विविध आयाम

साम्प्रदायिकता की हरेक सीढ़ी उसके अनुयायी को इस विचारधारा की अगली सीढ़ी की ओर धकेलती जाती है। जब अलग–अगल समुदाय धीरे–धीरे आस्था की इस दिशा में अग्रसर होते हैं, उनके दोषपूर्ण चिन्तन पर उनकी ऐसी तीव्र भावान्धता छा जाती है, जो भय और घृणा की भाषा के अलावा कुछ नहीं समझती। अपनी चरम अवस्था में पहुंचने पर साम्प्रदायिकता बुनियादी तौर पर हिंसक हो जाती है, और वह उन सबका सफाया करने की फिराक में रहती है जिनकी पहचान वह परस्पर दुश्मन के बतौर कर चुकी होती है।

साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास एक आधुनिक परिघटना है। इस चिन्तन की तीन उल्लेखनीय अवस्थायें हैं, जो आनुक्रमिक भी हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा का पहला तत्व यह आस्था है कि लोगों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक हित एक समान तभी होंगे जब वे सभी एक समुदाय के हों। यह समुदाय कोई पंथ या धर्म हो या फिर किसी अन्य संकीर्ण आधार पर परिभाषित कोई अन्य पहचान। इस विश्वास–प्रणाली के आधार पर लोगों को संगठित करने वाले नेता इसी पहचान पर सर्वाधिक बल देते हैं।

इसका दूसरा तत्व इस साम्प्रदायिक विचारधारा की अगली अवस्था है, और यह दावा करता है कि अपनेपन के अलग–अलग भावबोध वाले समुदायों को लेकर बनने वाले किसी समाज के हित अनिवार्यतया अलग–अलग होते हैं।

इसका तीसरा तत्व यानी कि इस विचारधारा की चरम अवस्था वह है जब लोगों की रूढिबद्ध आस्था अलग–अलग धर्मों या समुदायों के हितों को अनिवार्यतया प्रतिद्वन्द्वी मानने लगती है। इस तरह, एक हिन्दू साम्प्रदायिक विचारक दावा करने लगता है कि वर्ग, सामाजिक हैसियत या पद चाहे जो हों, सभी हिन्दुओं का हित एक है, और वह मुसलमान समुदायों से असंगत है। इसी चरम अवस्था में सामाजिक समाधान के लिए भौगोलिक क्षेत्र के विभाजन की वकालत की जाती रही है। यह हकीकत वाकई त्रासद है कि बीसवीं सदी में अनेक राष्ट्र इसी विचार–आस्था के तन्त्र की पैदाइश हैं, और हिंसा के जरिए ही ये राष्ट्र अस्तित्व में आए हैं।

1. **साम्प्रदायिकता की अवधारणा व विविध आयामों पर चर्चा कीजिए–**

....

....

....

....

....

....

....

1.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

भारत के सन्दर्भ में कहा जाता है कि यहां उपनिवेशवाद द्वारा लाए बदलावों के प्रभाव के तहत साम्प्रदायिकता पनपी और विकसित हुई। उपनिवेश में बदल दिए गए भारत में साम्प्रदायिकता मूलतः अविकास करने वाले औपनिवेशिक आर्थिक रूपान्तरण का ही एक उप–उत्पाद थी। अर्थव्यवस्था में ठहराव और जनता के दरिद्रीकरण ने ऐसी परिस्थितियाँ बना दीं जो धार्मिक–तबकाई विभाजन व वैमनस्य के फलने–फूलने के लिए मुफीद थीं। अपने शासन के विरोध में पनपी प्रतिक्रिया को दबाने के लिए औपनिवेशिक शासन तरह–तरह के

सामाजिक व तबकाई विभाजनों को हवा देता रहता था, और इस हथकन्डे का प्रत्यक्ष इस्तेमाल करने में भी उसे कोई गुरेज नहीं होता था। हालांकि, अन्य साम्प्रदायिक संघर्षो की भाँति हिन्दू–मुसलमानों के बीच टकराहटों के उदाहरण ढूंढ़ने पर मध्य काल मंन भी मिल सकते हैं, लेकिन 1880 के दशक के पहले साम्प्रदायिक चरित्र वाले दंगों के उदाहरण न के बराबर मिलते हैं। दूसरी ओर आधुनिक युगीन औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक चेतना अभिजनों व मध्य वर्गों में जड़ जमाने के अलावा आम जनता में भी काफी व्यापक पैठ बना चुकी थी।

उपनिवेशवाद के प्रभाव में साम्प्रदायिकता का हुआ उभार उस वक्त की एक राजनीतिक प्रवृत्ति के विश्लेषण से भी उजागर होता है। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था गतिरुद्धता की शिकार थी, और जिसके कारण सरकार व अन्य व्यवसायों में नौकरियों के सीमित अवसरों के लिए तीखी होड़ पैदा हो रही थी। इसलिए सरकार के साथ रब्त–जब्त बनाए रखने वाले व पदवीधारी मध्यमवर्गीय व्यक्ति इन आर्थिक अवसरों को हड़पने की फिराक में एड़ी चोटी एक किये रहते थे। सरकारी रवैये ने भी इस होड़ को एक अतिरिक्त आयाम दे दिया था, क्योंकि वह रोजगार के अवसरों के बंटवारे में जाति, समुदाय और इलाके के हितों की संकीर्ण गणित का दांव भी खेला करती थी। आखिर, उसे अपने लिए एक राजनीतिक आधार जुटाने और उसे पुष्ट करने की गरज जो थी। अंग्रेज सरकार की सरपरस्ती में इन संकीर्ण प्रक्रियाओं को अपने विकास के लिए हासिल माकूल माहौल में साम्प्रदायिकता कुछ व्यक्तियों और उनके हितों को फायदा पहुंचाती ही थी। लेकिन खास बात यह है कि वह साम्प्रदायिक तन्त्र को एक घरेलू उद्योग बना देती थी, जो बदले में फिर इन्ही आधारों पर लोगों को संगठित किए जाने वाली कार्यवाहियों के लिए प्रेरणा देने का काम करता था। इस राजनीतिक प्रक्रिया की सबसे खास बात यह थी कि वह साम्प्रदायिक राजनीति को पुनर्स्थापित और जायज बनाती थी।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ने के साथ उपरोक्त प्रवृत्ति और भी बढ़ती गई। अब ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले ऐसे साक्षर लोगों की संख्या बढ़ने लगी जो स्कूल और कॉलेज से पढ़ाई करने के बाद पेशेवर नौकरियों के लिये लालायित रहते थे और खेती से विमुख हो रहे थे। कृषि पर ठहराव की मार तो पहले ही थी, अब एक नया ग्रहण इसके माथे पर लग चुका था। यह पेशा सामाजिक सम्मान के ओहदे से नीचे लुढ़क चुका था।

2. **भारतीय सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता पर टिप्पणी कीजिए–**

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

एक कम विदित तथ्य यह है कि भारत की आम जनता में साम्प्रदायिकता का प्रसार काफी पहले शुरू हो चुका था। इसका बढ़ना और व्यापक होते जाना प्रान्तों की अभिजात राजनीति से भी अपरोक्ष तौर पर जुड़ा था। 1880 के दशक से साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें संयुक्त प्रान्त और पंजाब में बढ रही थीं। दोनो ही प्रान्तों की राजनीति में हिन्दू और मुसलमानों के अभिजात वर्ग का एक समान दबदबा था। इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में वहां के सामाजिक आर्थिक कारक भी भूमिका निभा रहे थे, वजह यह थी कि इन प्रान्तों में वर्ग और पेशे भी धार्मिक आधार पर ध्रुवीकृत थे। अवध और अलीगढ़ क्षेत्र में एक बड़े इलाके के किसान हिन्दू थे जबकि तालुकदार मुसलमान। शहरों में अधिकांश कारीगर, दुकानदार और छोटे व्यापारी मुसलमान थे जबकि बड़े व्यापारी और बैंक मालिक हिन्दू। दूसरी ओर पंजाब में अधिकांश व्यापारी और सूदखोर हिन्दू थे, जबकि उनका लेनदेन जिन किसानों के साथ था वे अधिकांशतया मुसलमान थे।

दंगों की आग में घी का काम करने वाले तात्कालिक मुद्दे, हालांकि, बिलकुल अलग थे। इतिहासकार गेराल्ड बैरियर 1883 और 1891 के बीच हुए पंजाब के ऐसे 15 बड़े दंगे गिनाते हैं जिनकी शुरुआत गोहत्या के मुद्दे से हुई थी। इसी मुद्दे पर 1888 और 1893 के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश ओर बिहार के इलाकों में दंगे भड़के थे, और बलिया, बनारस, आजमगढ़, गोरखपुर, आरा, सारन, गया और पटना जिले दंगों से झुलस गए थे। 1893 और 1895 के बीच बम्बई शहर और महाराष्ट्र के दूसरे कई शहर भी दंगों की चपेट में आए थे। यहाँ एक बार फिर गोकशी और गोरक्षा के मुद्दों ने आग भड़काने का काम किया था, हालाँकि यहां सामुदायिक आधार पर गणपति उत्सव आयोजित किए जाने से भी तल्खी पैदा हो रही थी। मामला तब विस्फोटक हो गया जब गणपति उत्सव के लिए लिखे गीतों में मुसलमानों और उनके मुहर्रम जैसे त्योहार पर पर भड़काऊ टिप्पणियां की गईं। कुछेक गीतों में तो मुहर्रम के बहिष्कार की अपील भी हिन्दुओं से की गई थी। हद तो यह थी कि सुधारक जैसी सुधारवादी पत्रिका सार्वजनिक जीवन के साम्प्रदायीकरण को बढ़ावा देने वाली टिप्पणियां छाप रही थीं।

कलकत्ता के औद्योगिक इलाके में भी साम्प्रदायिक दंगे की पहली घटना काफी पहले, मई 1891 में, दर्ज की गई थी। इसके बाद 1896 में भी टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर भी फसाद हुए थे। इसके अलावा 1897 में उत्तरी कलकत्ता के तल्ला में व्यापक पैमाने पर दंगे देखे गए थे।

जैसा हम पहले बता चुके हैं, एक प्रवृत्ति के बतौर साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद का करीबी हमसफर रही है। 1905 में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम हुई , आन्दोलनकारियों में मुसलमानों की भारी भागीदारी देखी गई, लेकिन फिर भी

भांति–भांति के मुद्दों पर साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें भी काफी ज्यादा हुईं। कांग्रेस के राजनीतिक विकास को थामने के लिए अंग्रेज सरकार बंगाल विभाजन की चाल चल चुकी थी, और यह प्रचार भी कर रही थी कि नया प्रान्त बनने से मुसलमानों को अधिक रोजगार की सौगात मिलेगी। अंग्रेजों के इस प्रचार को ढाका के नवाब की नई राजनीति से और बल मिल रहा था, क्योंकि वे लार्ड कर्जन की सरपरस्ती में 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना के जरिए साम्प्रदायिकता को हवा दे रहे थे।

इस दौर में सबसे भयानक दंगों का सिलसिला पूर्वी बंगाल में देखा गया, जब मई 1906 में मैमनसिंह जिले के ईश्वरगंज, 1907 में कोमिला, अपैल से मई 1907 के बीच मैमनसिंह जिले के जमालपुर, दीवानगंज और बक्शीगंज के इलाके दंगों की आग में जल उठे थे। मैमनसिंह जिले के साम्प्रदायिक दंगों में ग्रामीण इलाके का विशिष्ट सामाजिक अन्तरविरोध सतह पर आ गया था। यहाँ दंगाइयों द्वारा मुख्यतया हिन्दू जमींदार व महाजन निशाना बनाए जा रहे थे। कुछ हिन्दू जमींदारों ने हाल में हिन्दू मूर्तियों के रखरखाव के लिए ईश्वर बृत्ति नाम से एक नया कर अधिकांशतया मुसलमान किसानों पर थोप दिया था, जो जाहिरा तौर पर इससे काफी क्षुब्ध थे। दंगों के दौरान महाजनों के बहीखाते जलाए जाने की कई घटनायें हुई थीं, और इस लूटपाट में अधिसंख्य मुसलमानों के अलावा कहीं–कहीं हिन्दू किसानों ने भी भागीदारी की थी।

जब किसान दंगे कर रहे थे, उस वक्त मौलवी गण यह अफवाह फैलाने में लगे थे कि अंग्रेज यह इलाका ढाका के नवाब को सिपुर्द करने वाले हैं, जिनको वे मसीहा बनाकर पेश कर रहे थे। इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ये नेता उभरते धनी मुसलमान किसानों के साथ संश्रय कायम करना चाहते थे, ताकि वे मुख्यतया हिन्दू जमींदार–महाजनों के समूह को परास्त कर सकें।

आने वाले दशकों में साम्प्रदायिकता और फैलती गई, खासकर अलगाववाद की लहरों पर सवार होकर, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के गठन के साथ न सिर्फ अभिजनों में फैल रही थी बल्कि जनता में भी उसका तेजी के साथ विस्तार हो रहा था। कारण यह था कि अब विभिन्न मुद्दों पर जनगोलबन्दी की सारी कोशिशें अन्त में साम्प्रदायिक रंग ले लेती थीं और पूरे इलाके का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तेज हो जाता था। इस प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक घटना से भी समझा जा सकता है। 1904 में, बंगाल में मैमनसिंह जिला के जमालपुर ब्लाक स्थित कमरिया चर में एक प्रजा सम्मेलन आयोजित किया गया था, यहां लगान घटाने, अतिरिक्त कर खत्म करने, कर्ज में राहत देने, पेड़ लगाने व जमींदारों को नजर (कर) दिए बगैर तालाब खोदने का हक देने और हिंदू जमींदारों की कचहरी में मुसलमान किसानों से सम्मानजनक बर्ताव किये जाने की मांगे उठाई गई थीं। सम्मेलन के आयोजन में एक धनी मुसलमान रैयत चौधरी खोस माहम्मद सरकार की अग्रणी भूमिका थी। सम्मेलन के मांग पत्र को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वहां मुसलमान बटाईदारों के सवालों को

नहीं उठाया गया था। बंगाल के अनेक नेताओं की इस सम्मेलन में भागीदारी भी हुई थी। बहरहाल, गौरतलब है कि खुले तौर पर केवल मालिक (मुसलमान) किसानों के सवाल उठाने वाले इस सम्मेलन से बाद के दौर में खालिस मुसलमानों का एक मोर्चा विकसित हो गया, और वह बीसवें व तीसवें दशक में बंगाल की राजनीति में प्रभावी भूमिका निभाता रहा। इन्हीं दशकों में साम्प्रदायिक दंगों के लिये की गई जनगोलबन्दी के स्तर में बेतरह इजाफा हुआ था। अक्टूबर 1917 में, बिहार के शाहाबाद में मुसलमानों के 124 गांव, गया के 28 गांव और पटना के 2 गांव जिन साम्प्रदायिक हमलों के शिकार हुए थे, उनमें तकरीबन 50,000 हिन्दू शामिल हुये थे। हालांकि यह भी सच है कि उस समय ऐसी अफवाहें फैली थीं कि अंग्रेजी शासन खत्म होने जा रहा है। कहा तो यह भी जाता है कि खतरे में पड़े अपने नेतृत्व को बचाने के लिए ऊंची जाति के जमींदार ये दंगे करवा रहे थे।

गोरक्षा के लिए सनातन धर्म सभा और आर्य समाजियों द्वारा चलाये गये अभियान भी इन दंगों में खतरनाक भूमिका निभा रहे थे। इन संगठनों का प्रचार के व्यापक स्वीकृति हासिल करने की वजह यह थी कि वे धार्मिक भाषणों, हिंदी भाषा के प्रसार जैस मुद्दों की होम रूल राजनीति और 1917 के बाद किसान सभायें बनाने जैसे सवालों की खिचड़ी बनाकर परोसे जा रहे थे।

सितम्बर में हुए कलकत्ता दंगों के दौरान बड़ाबजार के मारवाड़ी व्यवसायियों पर उनके गरीब मुसलमान पड़ोसियों द्वारा हमले हुए थे। कहा जाता है कि पैन–इस्लाम के प्रचारक कुछ गैर बंगाली मुसलमान आन्दोलनकारी व ग्रामीण उलेमाओं ने इन दंगों में उकसावेबाजी का काम किया था।

3. **भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र किस प्रकार रहा और उनकी तीव्रता के विषय में लिखिये–**

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

स्व–मूल्यांकित प्रश्न

नोट – निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।

1. इतिहासकार गेराल्ड बैरियर के अनुसार 1883 और 1891 के बीच पंजाब में 150 बड़े दंगे हुए थे
2. 1896 में टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर फसाद हुए थे।
3. 1916 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई थी ।

1.5 1922 से पूर्व भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

1.5.1 भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना तथा साम्प्रदायिक सद्भाव का अभाव

सम्प्रदायवाद में इस विचारधारा का पोषण किया जाता है कि किसी धर्म विशेष के अनुयायियों के धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक हित आपस में एक समान तथा दूसरे धर्म के अनुयायियों से स्वाभाविक रूप से भिन्न होते हैं। इस विचारधारा के अनुसार भारत में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि समुदायों के हित एक दूसरे से भिन्न तो हैं ही साथ ही साथ इन भिन्न–भिन्न समुदायों के हितों का आपस में टकराव भी होता है। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पहचान का आधार केवल धर्म को बनाया जाता है और यह माना जाता है धार्मिक एकता के बल पर किसी भी समुदाय के अन्य भेदों को समाप्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि विभिन्न राष्ट्रों का समूह है (*इण्डिया इज़ ए कॉन्जेरीज़ ऑफ डिफ़रेन्ट नेशन्स*)। इस विचारधारा के पोषक केवल ऐसा मानकर चलते हैं, वो अपनी बात के समर्थन में कोई ठोस प्रमाण नहीं दे पाते हैं। बेनी प्रसाद *दि हिन्दू मुस्लिम क्वेश्चन्स* तथा एफ़0 के0 दुर्रानी *दि मीनिंग ऑफ पाकिस्तान* में यह इंगित करते हैं कि जाति एवं धर्म के भेदों के कारण आपस में विवाह तथा खान–पान के प्रतिबन्ध अवश्य थे किन्तु एक वर्ग के, शहरों तथा गांवों के निवासी, हिन्दू तथा मुसलमान जैसे किसान, ज़मींदार, व्यापारी, कारीगर, मज़दूर, सैनिक, सरकारी कर्मचारी आदि वेशभूषा, तौर–तरीके और रहन–सहन में बिलकुल एक जैसे थे। हिन्दू–मुसलमानों के रीति–रिवाज, मेले और भाषा ही नहीं अपितु कुरीतियां तथा अंधविश्वास भी एक ही जैसे थे। उनकी चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि में भी कोई अन्तर नहीं था। के0 एम0 अशरफ़ ने साम्प्रदायिकता को धर्म की राजनीति की एक दुकान मात्र बताया है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लेखन में अधिकांश इतिहासकारों ने अरब, तुर्क, अफ़गान और ईरानी आक्रमणों को हिन्दुओं पर मुसलमानों के आक्रमणों के रूप में तथा भारत में तुर्क, अफ़गान अथवा मुगल शासन को हिन्दुओं पर मुसलमानों के अत्याचारी शासन के रूप में प्रस्तुत किया है। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का नरसंहार, लूट, मन्दिरों के विध्वंस, बलात् धर्म परिवर्तन, उनके सामाजिक अपमान व उनके आर्थिक दोहन पर उन्होंने विशेष रूप से प्रकाश डाला है तथा मध्यकाल में गंगा–जमुनी तहज़ीब के विकास, कला व साहित्य के क्षेत्र में उपलब्धियों हिन्दू–मुस्लिम समन्वय की प्रतीक उर्दू जैसी समृद्ध भाषा के उद्भव और विकास

के बारे बताना उतना ज़रूरी नहीं समझा। उनके लिए अकबर के काल के उदार वातावरण से औरंगज़ेब के शासन काल की धार्मिक दमन की घटनाएं अधिक महत्वपूर्ण हैं और उनकी अभिरुचि ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, अमीर खुसरो, कबीर और गुरुनानक के प्रेम के सन्देश से अधिक तैमूर तथा नादिरशाह द्वारा किए गए कत्लेआमों में है। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल और अनेक भारतीय इतिहासकारों ने मध्यकाल में सामुदायिक सद्भाव के विकास की प्रायः उपेक्षा की है।

1857 के विद्रोह में हिन्दू और मुसलमानों के मध्य सद्भाव था। मुसलमानों ने गो–हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और हिन्दुओं ने मुहर्रम के दौरान गाजे–बाजे के साथ मस्जिदों के सामने से जुलूस ले जाना छोड़ दिया था। अंग्रेज़ों ने विद्रोह का दमन करने के बाद फूट डाल कर शासन करने की नीति के अन्तर्गत सबसे अधिक ध्यान हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ाने पर दिया था।

1.5.2 सैयद अहमद खान का अलीगढ़ आन्दोलन

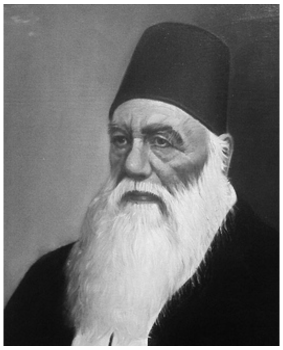

सैयद अहमद खान

1872 के बाद अंग्रेज़ों की नीति मुसलमानों की सरपरस्त और हिन्दू विरोधी हो गई थी। सैयद अहमद खान प्रारम्भ में भारत अर्थात् हिन्द के प्रत्येक निवासी को हिन्दू मानते थे। अपने एक भाषण में उन्होंने हिन्दू और मुसलमान को हिन्दुस्तान रूपी दुल्हन की दो आँखें कहा था जिसके चेहरे की सुन्दरता के लिए इन दोनों आँखों में सामन्जस्य आवश्यक था। अलीगढ़ में मुस्लिम विद्यालय स्थापित करते समय उन्होंने हिन्दुओं से भी आर्थिक अनुदान प्राप्त किया था परन्तु उर्दू–हिन्दी विवाद में उन्होंने उर्दू के पक्ष में प्रबल समर्थन तथा हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि के अदालतों, कार्यालयों तथा शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलन के खिलाफ़ बड़ा कठोर रुख अपनाया था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद सैयद अहमद खान हिन्दुओं के राजनीतिक प्रभुत्व की सम्भावना से चिन्तित होने लगे थे। वो कांग्रेस के विरोधी बन गए और उसे उन्होंने हिन्दुओं का राजनीतिक दल कहा। उनको बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिए लोकतान्त्रिक व्यवस्था फ़ायदेमन्द और मुसलमानों के लिए हानिकारक लग रही थी। मुसलमानों को लग रहा था कि अपनी संख्या के बल पर हिन्दू, मुसलमानों के हितों का गला घोंट देंगे इसलिए उन्होंने चुनाव प्रणाली को भारत में लागू किए जाने का विरोध किया। उन्होंने मुसलमानों को अंग्रेज़ों के प्रति निष्ठा और स्वामिभक्ति का प्रदर्शन करने की सलाह दी और उनका विश्वास प्राप्त करके उनसे विशेष सुविधाएं तथा रियायतें प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए कहा। उन्होंने कांग्रेस के विरोध में सरकार समर्थक 'इण्डियन यूनाइटेड पैट्रियाटिक एसोसियेशन' की स्थापना की। 1887 में उन्होने 'मुस्लिम एजुकेशनल कॉन्फ्रेन्स' की स्थापना की और प्रति वर्ष उसका उसी स्थान तथा उसी समय आयोजन किया जहां कि कांग्रेस का अधिवेशन होता

था। मुसलमानों में राजभक्ति की भावना का विकास करने के उद्देश्य से उन्होंने 'मुस्लिम एंग्लो–ओरिएण्टल डिफ़ेन्स एसोसियेशन' की स्थापना की। एंग्लो मोहम्मडन ओरिएन्टल कॉलेज के प्रिंसिपल थियोडोर बेक के प्रभाव से उनकी विचारधारा और भी हिन्दू विरोधी तथा कांग्रेस विरोधी हो गई। उन्होंने मुसलमान कौम के लिए सरकारी नौकरियों में 50 प्रतिशत आरक्षण की मांग की और गो–वध पर प्रतिबन्ध लगाए जाने का विरोध किया। एक प्रकार से सैयद अहमद खान ने द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त की अवधारणा का पोषण किया। सैयद अहमद खान को अंग्रेज़ों ने उनकी राजभक्ति के पुरस्कार स्वरूप 'सर' की उपाधि दी, उनके पुत्र महमूद को हाईकोर्ट का जज बनाया गया और उनके एंग्लो मोहम्मडन ओरिएन्टल कॉलेज को सरकारी अनुदान व उनके पत्र *अलीगढ़ इन्सटीट्यूट गज़ट* को सरकारी विज्ञापन दिए गए। अंग्रेज़ों ने उन्हें मुसलमानों के सबसे बड़े प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जब कि मुस्लिम समाज में उनकी लोकप्रियता कम और विरोध ज्यादा था। अलीगढ़ आन्दोलन पर नवाबों, मुसलमान ज़मींदारों तथा सरकारी अधिकारियों का व्यापक का प्रभाव रहा किन्तु आम मुसलमान की भागीदारी इसमें बहुत सीमित रही।

4. **सैयद अहमद खान के अलीगढ़ आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

1.5.3 उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद

हिन्दू राष्ट्रवाद के पोषक भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास में हिन्दुओं की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का गुणगान किया और मुस्लिम शासनकाल को अन्धकार का युग माना। इसमें हिन्दू पुनरुत्थानवादी सामाजिक–धार्मिक आन्दोलन को अपनाया गया।

बंकिम चन्द्र के उपन्यास *आनन्द मठ* में सन्तानों की मुख्य लड़ाई मुसलमानों से दिखाई गई है। सन्तान आन्दोलन के संचालक स्वामी सत्यानन्द मुस्लिम राज्य का ध्वंस कर देते हैं परन्तु हिन्दू शासन स्थापित नहीं कर पाते। स्वामी सत्यानन्द के मार्गदर्शक महापुरुष उन्हें समझाते हैं कि मुसलमानों के शासन की समाप्ति कर उनका व्रत पूरा हुआ क्योंकि एक तो अभी महाशक्तिशाली अंग्रेज़ों को हराने की शक्ति किसी में है नहीं और दूसरे अंग्रेज़ों के शासन में भारतीयों का कल्याण ही होगा। अल्ताफ़ हुसेन हाली ने उर्दू भाषा में रचित अपने महाकाव्य *मुसद्दसे हाली* में इस्लाम के गौरव को पुनर्स्थापित करने का सन्देश दिया था, उसके जवाब

में मैथिलीशरण गुप्त ने अपने खण्ड काव्य *भारत भारती* में आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान का सन्देश देकर हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना का पोषण किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना ने हिन्दू समाज को अन्य मतावलम्बियों के प्रति आक्रामक रुख अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके ग्रंथ *सत्यार्थ प्रकाश* में वैदिक धर्म तथा वैदिक संस्कृति के अतिरिक्त सभी धर्मों तथा संस्कृतियों की निन्दा की गई है। आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलन ने साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाई।

बंगाल में हिन्दू मेला के अन्तर्गत स्वदेशी के प्रचार–प्रसार में हिन्दू राष्ट्रवाद की स्पष्ट झलक थी। लोकमान्य तिलक द्वारा गणेश व शिवाजी उत्सव का आयोजन हिन्दू राष्ट्रवाद के उदाहरण थे। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिनचन्द्र पाल आदि पर हिन्दू राष्ट्रवादी होने का आरोप लगा। इसने जाने–अनजाने हिन्दू साम्प्रदायिकता को भड़काया। क्रान्तिकारियों ने हिन्दू राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर भारतमाता को स्वतन्त्र कराने का संकल्प लिया। वी0 डी0 सावरकर और अरबिन्दो घोष की विचारधारा में हिन्दू पुनरुत्थान और हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

हिन्दुओं द्वारा गो–हत्या पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए आन्दोलन ने हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में कटुता ला दी । अनेक साम्प्रदायिक दंगे भी हुए । गो–रक्षिणी समितियों ने हिन्दू समुदाय को आक्रामक रुख अपनाने के लिए प्रेरित किया ।

19 वीं शताब्दी के सातवें दशक से हिंदी समर्थकों ने उर्दू भाषा व फ़ारसी लिपि के साथ सरकारी कार्यालयों, अदालतों और शिक्षण संस्थाओं में हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि के प्रचलन की मांग की। भाषा तथा लिपि के प्रश्न को धर्म और संस्कृति के संरक्षण से जोड़ दिया गया। इससे हिन्दू–मुस्लिम तनाव में वृद्धि हुई। कानपुर से प्रकाशित पत्र *ब्राह्मण* के सम्पादक प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी और स्वदेशी के प्रति प्रेमभाव न रखने वाले हिन्दुओं की भर्त्सना करते हुए कहा था –

छोड़ि नागरी सगुन आगरी, उर्दू के रंगराते,
देशी वस्तु बिहाय, बिदेसिन सों सर्वस्व ठगाते।
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख, जिन का यह ढंग दीठा,
घर की खांड़ खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा।।

(हिन्दी सुन्दर भाषा तथा देवनागरी जैसी सुघड़ लिपि को छोड़कर हिन्दू उर्दू के रंग में रंग गए हैं। वो स्वदेश में निर्मित वस्तुओं के स्थान पर विदेशी माल खरीद कर खुद को पूरी तरह से ठगवाते हैं। मूर्ख हिन्दुओं का ढंग ही निराला है। इन्हें बेकार विदेशी वस्तुएं अच्छी लगती हैं और श्रेष्ठ स्वदेशी वस्तुएं खराब लगती हैं।)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने काव्य पाठ किया जिसमें उन्होंने अंग्रेज़ी के भक्त हिन्दुओं तथा कायस्थों, खत्रियों तथा कश्मीरी ब्राह्मणों

के उर्दू प्रेम पर कटाक्ष करते हुए कहा था –

हिन्दू होकर भी हिन्दी में यदि कुछ भी न भक्ति के लेश,
दूर देश की भाषाओं से यदि है इतना प्रेम विशेष।
इंग्लिस्तान, अरब, फारिस, को तो, अब तुम कर दो प्रस्थान,
यहाँ तुम्हारा काम नहीं कुछ, छोड़ो मेरा हिन्दुस्तान।।

1909 में पंजाब में हिन्दू महा–सभा का गठन हुआ जिसने सरकार की तथाकथित धर्म–निर्पेक्ष नीति के नाम पर मुसलमानों के साथ पक्षपात करने की आलोचना की। मदन मोहन मालवीय जैसे कांग्रेस के प्रमुख नेता इसके जन्म से ही इससे सम्बद्ध रहे।

5.1922 से पूर्व भारत में उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद एवं साम्प्रदायिकता के विकास पर चर्चा करें

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

1.5.4 बंगाल विभाजन तथा मुस्लिम लीग की स्थापना

ढाका के नवाब सलीमुल्ला को उग्रवादियों द्वारा हिन्दू उत्सवों के आयोजन स्वीकार्य नहीं थे। उन्होंने बंगाल विभाजन का स्वागत किया क्योंकि उन्हें इससे मुसलमानों के हितों की रक्षा की आशा थी। सलीमुल्ला स्वदेशी आन्दोलन के विरोधियों में सबसे अग्रणी थे। इस वर्ग ने बंगाल विभाजन के विरोध में हुए स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेने वाले मुसलमानों को गद्दार कहा। 1906 में सर आगा खां के नेतृत्व में एक मुस्लिम शिष्टमण्डल उनके पास मुसलमानों की मांग लेकर शिमला पहुंचा। इस शिष्टमण्डल की मांगों में सरकार से मुसलमानों की सरकार के प्रति निष्ठा और वफ़ादारी की एवज़ में उनके लिए विशेष राजनीतिक और

आर्थिक अधिकारों की मांग की गई थी। 1906 में ही ढाका के नवाब सलीमुल्ला खां के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को एक संगठित एवं आक्रामक रूप प्रदान किया। मुस्लिम लीग का उद्देश्य अंग्रेज़ी शासन के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए मुसलमानों के राजनीतिक व अन्य अधिकारों के लिए सरकार के समक्ष अपनी बात रखना था।

1.5.5 सरकार की साम्प्रदायिक विघटन की नीति

लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। सरकार ने यह दावा किया कि वह प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से बंगाल विभाजन का निर्णय ले रही है परन्तु वास्तविकता कुछ और थी। कर्ज़न फूट डाल कर शासन करने की नीति में विश्वास करता था। वह मुसलमानों को कुछ सुविधाएं देकर उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहता था। बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था। फ़रवरी, 1904 में ढाका में दिए गए अपने भाषण में कर्ज़न ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को एकबद्ध होने का एक ऐसा अवसर प्रदान करने का प्रस्ताव रखा था जो कि उन्हें मुसलमान बादशाहों तथा नवाबों के समय के बाद से प्राप्त नहीं हुआ था। कर्ज़न को बहुत आश्चर्य हुआ जब इस निर्णय का मुसलमानों ने भी विरोध किया। उसने स्पष्ट शब्दों में इस विभाजन से मुसलमानों को होने वाले लाभों को गिनाया और उन्हें सलाह दी कि वो इसके विरोध में हो रहे आन्दोलन से खुद को दूर रखें। बंगाल के विभाजन का निर्णय साम्प्रदायिक विघटन के उद्देश्य से किया गया था। पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर ने अपनी दो पत्नियों – हिन्दू तथा मुसलमान में, दूसरी बीबी अर्थात् मुसलमान को अपनी चहेती बीबी बताया था। अंग्रेज़ों ने निम्न वर्ग के मुस्लिम अराजकतावादी तत्वों को प्रोत्साहन देकर उन्हें स्वदेशी आन्दोलनकारियों के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही के लिए तैयार किया। अंग्रेज़ों ने प्रचार किया कि पूर्वी बंगाल तथा आसाम के नए गठित मुस्लिम बहुमत के प्रान्त में मुसलमानों को रोज़गार के बेहतर अवसर मिलेंगे। मिन्टो ने कर्ज़न की राह पर चलते हुए मुसलमानों की अपनी अलग पहचान बनाने की कोशिश का स्वागत किया। उसने मुसलमानों के राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक अधिकारों को महत्व दिया तथा उन्हें आश्वासन दिया कि उनके पूर्व में गौरवशाली इतिहास को ध्यान में रखकर शासन में उनकी महत्ता निर्धारित की जाएगी। इन्हीं परिस्थितियों में ढाका के नवाब सलीमुल्ला के प्रयासों से ढाका में ही 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने कि भारत के विभाजन में अहम भूमिका निभाई। साम्प्रदायिकता को बढ़ाने तथा हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों के बीच पड़ी दरार को और चौड़ा करने के लिए 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को विधान परिषदों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया अर्थात् मुसलमानों के लिए सुरक्षित सीटों के लिए खड़े मुस्लिम प्रत्याशियों को चुनने

का अधिकार केवल मुस्लिम मतदाताओं को दे दिया गया। मुस्लिम समुदाय ने इस निर्णय का स्वागत किया और गैर–मुस्लिम समुदाय ने इसका विरोध। इस प्रकार 1905 के बंगाल विभाजन से हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में जो दरार डाली गई वह अब और चौड़ी कर दी गई।

5. **सरकार की साम्प्रदायिक विघटन की नीति पर टिप्पणी कीजिए–**

....

....

....

....

....

....

....

1.5.6 साम्प्रदायिक वैमनस्य का अल्प अवधि के लिए शिथिल होना

प्रथम विश्वयुद्ध से पहले ही इंग्लैण्ड और तुर्की के सम्बन्धों में दरार पड़ चुकी थी। भारत के अधिकांश मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफ़ा मानते थे और उसके साथ भावनात्मक रूप से जुड़े हुए थे। तुर्की के सुल्तान की राजसत्ता को कमज़ोर करने की कोशिश तथा मुसलमानों के पवित्र तीर्थस्थलों मक्का, मदीना, येरुशलम आदि की सुरक्षा पर मण्डराते खतरे ने भारतीय मुसलमानों की ब्रिटिश स्वामिभक्ति तथा स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखने की नीति के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की का जर्मनी और ऑस्ट्रिया के पक्ष में युद्ध में शामिल होना भी भारतीय मुसलमानों और ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों के बीच दरार डालने में सहायक हुआ। इसका फ़ायदा उठाकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए। माण्डले से लौटने के बाद लोकमान्य तिलक भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में मुसलमानों की सहभागिता के इच्छुक थे। मुहम्मद अली जिन्ना और वज़ीर हसन जैसे मुसलमान भी कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। 1916 में लखनऊ में नरमपंथी, गरमदल, होमरूल समर्थक तथा मुस्लिम लीग एकत्र हुए और उन्होंने सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया जिसको लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। इस समझौते में यह तय किया गया कि मुसलमानों को प्रांतीय विधानपरिषदों में विशिष्ट प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाएगा। इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में निर्वाचित सदस्यों में से एक तिहाई मुसलमान होंगे। यह समझौता हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतीक था। मुस्लिम लीग ने चुनाव तथा बहुमत के शासन और कांग्रेस ने मुसलमानों की पृथक प्रतिनिधित्व की मांग मान ली। कांग्रेस ने एकता के नाम पर मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनाते हुए मुस्लिम लीग की पृथक प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार कर ली। आगे चलकर इसके भयंकर परिणाम हुए, इसने अलगाववादी ताकतों और सरकार की बांटो और राज करो की नीति को बल प्रदान किया।

तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। उसे अपदस्थ किया जाना भारतीय मुसलमानों ने अपनी धार्मिक भावनाओं पर चोट माना। 1919–20 में खिलाफ़त आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। 1916 के लखनऊ समझौते के फलस्वरूप विकसित हिन्दू–मुस्लिम एकता को और बल देते हुए खिलाफ़त आन्दोलन ने मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपने पत्र *अल–हिलाल* के माध्यम से मुसलमानों को सरकार की वफ़ादारी करने की नीति का परित्याग करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इस्लाम और राष्ट्रवाद में कोई संघर्ष नहीं देखा। खिलाफ़त आन्दोलनकारी जानते थे कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करना होगा। दिसम्बर, 1919 को मुस्लिम लीग ने यह प्रस्ताव पारित किया कि आगामी बकरीद पर गो–हत्या नहीं की जाएगी। शिक्षित मुसलमानों का एक बड़ा समुदाय उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा की ओर आकर्षित हुआ था। मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली, हकीम अज़मल खान और महज़र–उल–हक़ मुस्लिम उग्र राष्ट्रवाद के नेता थे। देवबन्द स्कूल ने उग्र मुस्लिम राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया।

गांधीजी ने अपने पत्र *यंग इण्डिया* में अपने मुसलमान भाइयों की संकट की घड़ी में उनके साथ सहने और उनके अहिंसक आन्दोलन में पूर्ण सहयोग करने का वचन दिया। 20 अगस्त, 1920 को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। गांधीजी, शौकत अली तथा मुहम्मद अली ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की स्थापना के उद्देश्य से भारत का दौरा किया। असहयोग आन्दोलन में हिन्दू–मुस्लिम सदभाव पर जोर दिया गया था तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बनाया गया था। लखनऊ समझौते से लेकर असहयोग आन्दोलन के दौरान साम्प्रदायिकता की भावना में बहुत कमी आई थी और यह हिन्दू–मुस्लिम एकता का सबसे सुनहरा दौर था।

6. **लखनऊ समझौते से लेकर असहयोग आन्दोलन के दौरान सांप्रदायिक सौहार्द पर चर्चा करें–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) सर सैयद अहमद खान की मुस्लिम अलगाववाद की नीति।

(ख) उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) नवाब सलीमुल्ला खां ने किस राजनीतिक दल की स्थापना की थी?

(ii) मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व किस एक्ट में प्रदान किया गया था?

1.6 भारत में साम्प्रदायिकता की भावना का विकास तथा पाकिस्तान की अवधारणा

1.6.1 बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में साम्प्रदायिक वैमनस्य में वृद्धि

असहयोग आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव का वातावरण उसके स्थगित होते ही साम्प्रदायिक कटुता में बदल गया। खिलाफ़त आन्दोलन की उपयोगिता भी तुर्की मे ंहुए राजनीतिक परिवर्तन के कारण समाप्त हो गई थी । इन परिस्थितियों में साम्प्रदायिक ताकतों ने फिर सर उठा लिया था । मालाबार तट पर मोपला में मुस्लिम किसानों क आन्दोलन ने साम्प्रदायिक दंगो का रूप ले लिया। हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों में एक–दूसरे के प्रति अविश्वास और भय की भावना उभारने में साम्प्रदायिक दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। रोजगार, राजनीतिक प्रभुत्व और धार्मिक हिंसा के मुद्दों को लेकर भी तनाव बढ़ा था। हिन्दुओं में सनातन और शुद्धि आन्दोलनों तथा मुसलमानों में तंज़ीम और तब्लीक़ आन्दोलनों ने साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ाया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार 1922 से 1927 के बीच देश में 112 साम्प्रदायिक दंगे हुए थे।

कांग्रेस जैसे धर्म–निर्पेक्ष राजनीतिक दल में भी साम्प्रदायिक भावना उभर रही थी। मदन मोहन मालवीय तथा उनके सहयोगी स्वराज दल के भीतर रिस्पौंसिविस्ट के रूप में हिन्दू समर्थक नीतियां अपना रहे थे। लाला लाजपत राय और एन0 सी0 केलकर सरकार पर आरोप लगा रहे थे कि वह मुसलमानों के साथ पक्षपात कर रहे थे।

अप्रैल, 1925 में हिन्दू महा सभा के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए लाला लाजपत राय ने 1916 के लखनऊ समझौते को एक भूल बताया जिसमें कि मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने को स्वीकार किया गया था। उन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था का विरोध किया और एक ऐसे लोकतन्त्र की स्थापना की वकालत की जिसमें सभी समुदायों के लोग भारतीय बन कर रहें न कि हिन्दू, मुसलमान

अथवा किसी और समुदाय के बनकर।

नेहरू रिपोर्ट को लखनऊ में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में स्वीकृत कर लिया गया परन्तु मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में मुसलमानों को उनकी मांगों के अनुरूप स्थान की व्यवस्था न किए जाने पर इसका विरोध किया। उन्होंने अपनी 14 सूत्री मांगे प्रस्तुत कीं। वो केन्द्रीय व गैर–मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों की विधानसभाओं में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान, और बंगाल, पंजाब तथा तीन नए मुस्लिम–बहुल राज्यों सिंध, बलूचिस्तान और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में मुस्लिम आबादी के कुल प्रतिशत के अनुरूप मुस्लिम सीटें चाहते थे।

1.6.2 साइमन कमीशन की रिपोर्ट तथा गोलमेज़ सभाएं

27 मई, 1930 को साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तथा अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत कीं जिनका कि प्रकाशन जून, 1930 में हुआ। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी। प्रथम गोलमेज़ सभा में ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों के लिए संघीय शासन में साम्प्रदायिक वीटो की मांग को स्वीकार नहीं किया गया। 19 जनवरी, 1931 को इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैमेज़े मैक्डोनाल्ड ने अपने भाषण में हिन्दू और मुसलमानों को अपने झगड़े आपस में ही सुलझाने का सुझाव दिया। प्रथम गोल मेज़ सभा में संघीय शासन की योजना में भारतीय शासकों को शामिल किए जाने के प्रस्ताव का मुस्लिम प्रतिनिधियों ने विरोध किया क्योंकि उनमें भारतीय शासकों में अधिकांश हिन्दू थे। उन्होंने इस योजना को हिन्दू भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की मिलीजुली साज़िश बताया।

1931 में दूसरी गोलमेज़ सभा में खिलाफ़त आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम एकता के पक्षधर मौलाना शौकत अली ने मुस्लिम–ब्रिटिश मैत्री की अपील करते हुए कहा–

''हम दोनों को एक दूसरे की ज़रूरत है। इस्लाम ब्रिटेन के साथ एक अच्छे और सम्मानीय मित्र, एक योद्धा तथा एक प्रबल सहयोगी के रूप में खड़ा रहेगा। अगर हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के साथ हज़ार साल भी रहेंगे तो दोनों की संस्कृतियां कभी मिलकर एक नहीं हो पाएंगी।''

मुहम्मद इक़बाल

तृतीय गोलमेज़ सभा में आगा खां, सर मुहम्मद इक़बाल तथा डॉक्टर शफ़ात अहमद खान ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के राजनीतिक एवं सामाजिक हितों का कभी मेल नहीं हो सकता और अंग्रेज़ों के अतिरिक्त भारत पर किसी और के द्वारा शासन करना सदैव असम्भव होगा। इस वक्तव्य की जवाहरलाल

नेहरू ने भर्त्सना करते करते हुए *इण्डियन ट्रिब्यून* के 27 नवम्बर, 1933 के अंक में प्रकाशित अपने लेख – *हिन्दू एण्ड मुस्लिम कम्युनलिज़्म* में लिखा था –

मैं नहीं मानता कि 'मुस्लिम आल पार्टीज़ कॉन्फ्रेन्स' तथा मुस्लिम लीग जैसे साम्प्रदायिक दल भारतीय मुसलमानों के किसी विशाल समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं वो केवल मौजूदा साम्प्रदायिक तनाव को अपने लाभ के लिए भुना रहे हैं। इन संगठनों के अधिकांश नेता घोर साम्प्रदायिक, राष्ट्रविरोधी तथा प्रतिक्रियावादी हैं। वो भविष्य में संगठित भारत के विकास का कोई स्वप्न नहीं देखते। इन वक्तव्यों में राष्ट्रवादी भावना तथा भारत की स्वतन्त्रता की कामना का लेशमात्र भी विद्यमान नहीं है। मै नहीं मानता कि उनके वक्तव्य आम भारतीय मुसलमान के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन संगठनों के सदस्यों में से अधिकांश सरकारी अधिकारी, भूतपूर्व सरकारी अधिकारी, मन्त्री, होने वाले मन्त्री, खिताब प्राप्त तथा बड़े ज़मींदार हैं। उनके नेता एक धार्मिक वर्ग के प्रमुख तथा भारतीय सामन्तवादी और ब्रिटिश शासक वर्ग की प्रकृति के सम्मिश्रण आगा खां हैं। अंग्रेज़ों के लिए यह स्वाभाविक है कि वो राष्ट्रवादी मुसलमानों की उपेक्षा कर मुसलमानों के प्रतिक्रियावादी नेताओं का साथ दें और उनकी मांगो स्वीकार कर उनकी अपने समुदाय में साख बढ़ाने में उनकी मदद करें ताकि राष्ट्रीय आन्दोलन कमज़ोर पड़ जाए।

जवाहर लाल नेहरू ने 1933 में अजमेर में आयोजित हिन्दू महासभा के अधिवेशन के अध्यक्ष भाई परमानन्द के सरकार समर्थक तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता विरोधी वक्तव्य की भी इसी लेख में निन्दा की थी –

अपने अध्यक्षीय भाषण में भाई परमानन्द ने हिन्दुओं द्वारा साइमन कमीशन का बहिष्कार करने पर अफ़सोस जताया है क्यों कि साइमन कमीशन के साथ सहयोग करके वो हिन्दुओं के लिए कुछ अधिकार अवश्य प्राप्त कर सकते थे। यह स्पष्टतया एक राष्ट्रविरोधी दृष्टिकोण है। भाई परमानन्द के विचार से अंग्रेज़ी शासन की जड़ें भारत में इतनी मज़बूत हैं कि उनके विरुद्ध कोई जन–आन्दोलन सफल नहीं हो सकता इसलिए उनके विरुद्ध आन्दोलन करने के स्थान पर उनके साथ सहयोग कर उनसे सुविधाएं तथा रियायतें लेना अधिक लाभकारी है। भाईजी की दृष्टि में हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का लक्ष्य बेमानी है क्योंकि सुविधाएं और अधिकार देना तो सरकार के हाथ में है और उसके लिए सरकार की मेहरबानी प्राप्त करने की आवश्यकता है।

7. गोलमेज़ सभाओं पर लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.6.3 पाकिस्तान की अवधारणा

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक छात्र रहमत अली ने 1930 में पाकिस्तान की स्थापना का विचार विकसित किया था। 1933 में प्रकाशित उसकी पुस्तिका *नाउ और नैवर* में पाकिस्तान की व्याख्या की गई थी। मूलतः *पी* से पंजाब, *ए* से अफ़गानिस्तान, *के* से कश्मीर तथा *एस0* से सिन्ध इसमें शामिल किए गए थे। परन्तु उस समय अधिकांश मुस्लिम नेताओं ने इस प्रस्ताव को बचकाना बताया था।

अल्लामा इक़बाल ने 1909 में *सारे जहां से अच्छा* कौमी तराना लिखा था परन्तु धीरे–धीरे उनकी विचारधारा साम्प्रदायिकता की ओर उन्मुख हो गई। 1930 में वह ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग के अध्यक्ष बने। उन्होंने मुसलमानों के लिए एक अलग राष्ट्र के निर्माण की मांग का दार्शनिक आधार तैयार किया परन्तु उन्होंने भारत के विभाजन के स्थान पर उसे स्वायत्त शासित कई इकाइयों में करने का सुझाव दिया। वो मुसलमानों के लिए पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, सिन्ध तथा बलूचिस्तान को मिलाकर एक स्वायत्त शासित इकाई की स्थापना का स्वप्न देखते थे। उन्होंने मुसलमानों को भारत में अल्पसंख्यक का दर्जा दिए जाने के स्थान पर *मुस्लिम मिल्लत* (एक अलग मुस्लिम राष्ट्र) की मांग की परन्तु वह स्वयं *पैन इस्लामिक मूवमेन्ट* में अर्थात् इस्लाम के अन्तर्राष्ट्रीयतावाद में विश्वास रखते थे।

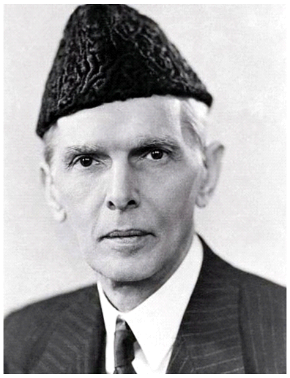

मोहम्मद अली जिन्ना

1937 के आम चुनाव में कांग्रेस–मुस्लिम लीग गठबन्धन हुआ परन्तु चुनाव के उपरान्त सत्ता के बटवारे को लेकर दोनों दलों में मतभेद हो गए। कुल 11 प्रांतों में से 6 में कांग्रेस सरकार का गठन हो गयाजिनके प्रति मुस्लिम लीग का रवैया विद्वेषपूर्ण था। कांग्रेस पर विश्वासघात का आरोप लगाकर मुस्लिम लीग ने उसके मंत्रिमंडलों के कार्य में रूकावट डाली और उसकी कार्य प्रणाली की आलोचना की। इन मंत्रिमंडलों के कांग्रेस शासन को हिन्दू साम्प्रदायिक शासन कहा गया। 1937 में मुस्लिम लीग ने गवर्नर की शक्तियों पर उठे विवाद में सरकार का साथ दिया क्योंकि गवर्नर को विशेष शक्तियां देकर ही अल्प संख्यकों की हिन्दू प्रभुत्व से रक्षा की जा सकती थी। फ़रवरी, 1939 में जिन्ना ने लिनलिथगो से कहा था कि हिन्दुओं और मुसलमानों में सन्तुलन बनाए रखने के लिए अंग्रेज़ों को भारत में टिके रहना होगा क्योंकि अंग्रेज़ों के समर्थन के बिना मुसलमान हिन्दुओं के समक्ष अकेले अपने बलबूते पर मुसलमान खड़े नहीं हो पाएंगे। दिसम्बर, 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने सरकार द्वारा भारतीय राजनीतिक दलों

से बिना विचार विमर्श किए हुए भारत को युद्ध में शामिल किए जाने के विरोध में त्याग पत्र दे दिया। इस निर्णय को मुस्लिम लीग ने 12 दिसम्बर, 1939 को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया।

23 मार्च, 1940 को जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में उत्तर–पश्चिम् व उत्तर–पूर्व के मुस्लिम–बहुल क्षेत्रों को मिलाकर स्वतन्त्र, सम्प्रभुता प्राप्त पाकिस्तान की स्थापना की मांग की गई। अगस्त, 1940 में वाइसराय लिनलिथगो के प्रस्ताव तथा मार्च, 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव को मुस्लिम लीग ने खारिज किया क्योंकि इन प्रस्तावों में पाकिस्तान की स्थापना की कोई बात नहीं थी। कांग्रेस ने अगस्त, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया। मुस्लिम लीग ने इसके जवाब में पाकिस्तान की मांग को लेकर 'डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन शुरू किया। सरकार ने फूट डालो और राज करो के अन्तर्गत मुस्लिम लीग को मुस्लिम समुदाय का एकमात्र प्रतिनिधि मान लिया। जून, 1946 में आयोजित शिमला सम्मेलन में मुस्लिम लीग द्वारा अन्तरिम सरकार में मुस्लिम सदस्यों को नामांकित करने के एकाधिकार की मांग पर सहमति न बनने पर वाइसराय लॉर्ड वेवेल ने सम्मलन भंग कर दिया। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि मुस्लिम लीग की सहमति के बिना देश के भविष्य का कोई भी निर्णय नहीं लिया जाएगा। कांग्रेस द्वारा अन्तरिम सरकार में शामिल होने के विरोध में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना को लेकर 16 अगस्त, 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवास की घोषणा की।

8. **पाकिस्तान की अवधारणा पर चर्चा करें**

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

1.6.4 साम्प्रदायिकता की भावना भड़काने में हिन्दू तथा सिख संगठनों की भूमिका

1937 के बाद वी0 डी0 सावरकर हिन्दू महासभा के नेता के रूप में उभर कर आए और अब तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक सघ भी एक बड़ी साम्प्रदायिक शक्ति के रूप में उभरने

लगा था। इन संगठनों को सरकार के प्रति निष्ठावान तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इन्होंने सरकार के विरुद्ध कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं किया उन्होंने सरकार का विरोध केवल उसकी मुस्लिम समर्थक नीतियों के कारण किया।

1938 में हिन्दू महासभा के अपने अध्यक्षीय भाषण में सावरकर ने कांग्रेस को हिन्दू विरोधी बताया और कांग्रेसियों को हिन्दू हितों के साथ सदैव विश्वासघात करने वाला तथा मुस्लिम लीग के सामने नृत्य करने वाला बताया। 1940 में सावरकर ने हिन्दुओं से अपील की कि वो युद्ध के प्रयासों में सरकार का सहयोग करें और उन मूर्खों की बात न सुनें जो युद्ध में सहयोग करने की नीति को साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग करना मान रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गोलवलकर ने कांग्रेसियों को जयचन्द, मान सिंह और चन्द्र राव मोरे जैसे गद्दारों की भांति तुच्छ और स्वार्थी बताया। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने मुस्लिम समाज के प्रति जितना वैमनस्य दिखाया उसने अप्रत्यक्ष रूप से द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त को पोषण मिला। सिख साम्प्रदायिकता भी उपनिवेशवादी ताकतों का साथ दे रही थी। केन्द्रीय खालसा दीवान ने खुले आम ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी। सुन्दर सिंह मजीठिया जैसे सिख सम्प्रदावादी सदैव राजभक्त रहे। मास्टर तारा सिंह जैसे अकाली नेता जो अकाली आन्दोलन के दौरान साम्राज्यवाद के विरोधी रहे थे उन्होंने भी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सिख सम्प्रदायवादी राजभक्तों के साथ सांठ–गांठ कर ली।

1946 के कैबिनेट मिशन की चर्चा खण्ड 5 की इकाई 1 तथा मार्च, 1947 की माउंटबैटन योजना की चर्चा खण्ड 6 की इकाई 1 में की जा चुकी है। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई। इस प्रकार अखण्ड स्वतन्त्र भारत का स्वप्न साम्प्रदायिकता की भेंट चढ़ गया।

1.6.5 साम्प्रदायिकता की भावना की निरर्थकता

साम्प्रदायिकता की भावना किसी भी समुदाय में स्वाभाविक नहीं होती अपितु ओढ़ी हुई होती है। भारत में साम्प्रदायिकता की भावना भड़काने वाले कभी भी अपनी विचारधारा पर दृढ़ नहीं रहे। सैयद अहमद खान, मोहम्मद अली जिन्ना, अल्लामा इक़बाल और अली बन्धुओं ने पहले हिन्दू–मुस्लिम एकता को महत्व दिया था किन्तु बाद में उन्होंने उसे पूर्णतया असम्भव मान लिया था। वीर सावरकर जैसे महान क्रान्तिकारी हिन्दू साम्प्रदायिकता के प्रभाव में सरकार समर्थक बन गए थे। लाला लाजपत राय और मदन मोहन मालवीय जैसे देशभक्त हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक संस्था से जुड़ गए थे। मास्टर तारा सिंह जैसे साम्राज्यवाद विरोधी अकाली दल के नेता अब सिखों की मांग को लेकर सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे। सम्प्रदायवाद के पोषकों की कथनी और करनी में बहुत अन्तर होता था। तुफ़ैल अहमद मंगलौरी ने *मुसलमानों का रौशन मुस्तक़बिल* में उच्च वर्ग के मुसलमानों के साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के आधार पर चुने जाकर हिन्दुओं से घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि साम्प्रदायिक

दंगों में केवल गरीब बस्तियों के हिन्दू और मुसलमान ही मारे जाते हैं जब कि सिविल लाइन्स तथा अन्य विकसित क्षेत्रों में बसने वाले उच्च वर्ग के हिन्दू और मुसलमान प्रेम से रहते हैं, एक–दूसरे के साथ खाते–पीते हैं और उनके परिवारों की महिलाओं में आपस में मधुर समबन्ध बने रहते हैं। जब कि हिन्दू प्रतिनिधि केवल अपने हिन्दू मतदाताओं स सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार बेचारा गरीब मुसलमान मतदाता न तो हिन्दू प्रतिनिधियों की दृष्टि में महत्व रखता है और न ही मुसलमान प्रतिनिधियों की दृष्टि में।

1946 में रावलपिण्डी के साम्प्रदायिक दंगों पर आधारित भीष्म साहनी के प्रसिद्ध उपन्यास *तमस* में दर्शाया गया है कि उच्च वर्गीय हिन्दू तथा मुसलमान दंगों को भड़काते तो हैं किन्तु उनका अपना कोई खास नुक्सान नहीं होता और न ही उनके परिवारों के लोग इनमें मारे जाते हैं। इतना ही नहीं, दंगों के बाद दोनों ही एक–दूसरे को पुलिस की कार्यवाही में बचाने की कोशिश भी करते हैं।

साम्प्रदायिकता के ज़हर को देश के कल्याण हेतु औषधि के रूप में कभी नहीं बदला जा सकता। विडम्बना यह है कि हिन्दू, मुस्लिम तथा सिख सम्प्रदायवादियों को ऐसा कुछ नहीं मिला जो वो चाहते थे परन्तु उन्होंने अपनी संकुचित मनोवृत्ति से न केवल भारत को अपितु पूरी मानवता को गहरी चोट पहुंचाई और इसमें अंग्रेज़ सरकार ने उनका हर अवसर पर साथ दिया। इस अपराध के लिए इतिहास इनमें से किसी को कभी भी क्षमा नहीं करेगा।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) पाकिस्तान की अवधारणा।

(ख) साम्प्रदायिकता की भावना की निरर्थकता।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस कब मनाया?

(ii) 1937 में हिन्दू महासभा का नेतृत्व कौन कर रहा था?

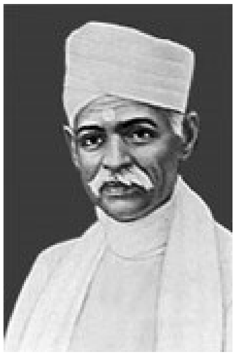

मदन मोहन मालवीय

1.7 सार संक्षेप

अंग्रेज़ों ने 1857 के विद्रोह का दमन करने के बाद फूट डाल कर शासन करने की नीति के अन्तर्गत सबसे अधिक ध्यान हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ाने पर दिया था। 1905 में बंगाल विभाजन तथा 1909 के एक्ट में मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना इसके प्रमाण थे। सैयद अहमद खान, नवाब सादुल्ला खां तथा अल्लामा इक़बाल ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। बंकिम चन्द्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती,

लोकमान्य तिलक, वी0 डी0 सावरकर, अरबिन्दो घोष तथा मदन मोहन मालवीय की विचारधारा में हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। 1906 में मुस्लिम लीग की तथा 1909 में हिन्दू महा–सभा की स्थापना हुई। मुसलमानों को मुख्य राष्ट्रीय धारा में लाने के उद्देश्य से खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया।

असहयोग आन्दोलन के स्थगित होते ही साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि होने लगी। हिन्दुओं में सनातन और शुद्धि आन्दोलनों तथा मुसलमानों में तंज़ीम और तब्लीक़ आन्दोलनों ने साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ाया जिसके कारण साम्प्रदायिक दगे हुए। साइमन कमीशन की सिफ़ारिशों में तथा गोलमेज़ सभाओं में साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ावा दिया गया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक छात्र रहमत अली ने 1930 में पाकिस्तान की स्थापना का विचार विकसित किया था।

1937 के आम चुनाव के बाद कांग्रेस–मुस्लिम लीग गठबन्धन टूट गया और पाकिस्तान की मांग ज़ोर पकड़ने लगी। 1940 में पाकिस्तान प्रस्ताव, 1942 में डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन तथा 1946 में प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस, सभी का लक्ष्य पाकिस्तान की स्थापना था। 1938 में हिन्दू महासभा के अपने अध्यक्षीय भाषण में सावरकर ने कांग्रेस को हिन्दू विरोधी बताया। सिख साम्प्रदायिकता भी उपनिवेशवादी ताकतों का साथ दे रही थी। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई। इस प्रकार अखण्ड स्वतन्त्र भारत का स्वप्न साम्प्रदायिकता की भेंट चढ़ गया।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

गंगा–जमुनी तहज़ीबः हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के समन्वय से विकसित सभ्यता।
मुस्लिम परस्त सरकारः मुसलमानों को संरक्षण देने और उनका पक्ष लेने वाली सरकार।
पैट्रियाटिकः देशभक्त
ओरिएन्टलः प्राच्य
शुद्धि आन्दोलनः उन हिन्दुओं को जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया हो और जो फिर से हिन्दू होना चाहते हों, उन्हें पूजा–परिपाटी से शुद्ध कर फिर से हिन्दू बनाने हेतु आन्दोलन।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ

दुर्रानी, एफ़0 के0 – *दि मीनिंग ऑफ पाकिस्तान*, लाहौर, 1944
प्रसाद, बेनी – *दि हिन्दू मुस्लिम क्वेश्चन्स*, इलाहाबाद, 1941
रामगोपाल – *भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास*, मेरठ, 1970
दिनकर, रामधारी सिंह – *संस्कृति के चार अध्याय*, इलाहाबाद, 1984
चन्द्रा, बिपन – *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*, दिल्ली, 1997
आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, कलकत्ता, 1959
प्रसाद, राजेन्द्र – *इण्डिया डिवाइडेड*, बम्बई, 1959

फिलिप्स, सी0 एच0 (सम्पादक) – *दि इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान 1858 टु 1947, सेलेक्ट डॉक्यूमेन्ट्स,* ऑक्सफ़ोर्ड, 1965

1.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 1.3.2 सैयद अहमद खान का अलीगढ़ आन्दोलन।
(ख) देखिए 1.3.3 उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद।

2. (i) 1906 में मुस्लिम लीग की।
(ii) 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट ने।

1. (क) देखिए 1.4.3 पाकिस्तान की अवधारणा।
(ख) देखिए 1.4.5 साम्प्रदायिकता की भावना की निरर्थकता।

2. (i) कांग्रेस के प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के त्यागपत्र पर 12 दिसम्बर, 1939 को।
(ii) वी0 डी0 सावरकर।

1.11 अभ्यास प्रश्न

1. 1906 में सर आगा खां के नेतृत्व में लॉर्ड मिन्टो के समक्ष मुस्लिम शिष्ट मण्डल ने क्या मांगे रखीं?
2. मुस्लिम लीग की स्थापना के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
3. 1909 के इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट में साम्प्रदायिकता की भावना को किस प्रकार बढ़ाया गया?
4. शुद्धि आन्दोलन ने हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में पड़ी दरार को किस प्रकार और चौड़ा किया?
5. अल्लामा इकबाल ने पाकिस्तान की अवधारणा के विकास में क्या भूमिका निभाई?

इकाई दोः राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवासी भारतीयों की भूमिका

2.1 प्रस्तावना

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

4.1.1 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीकी प्रवास

4.1.2 इण्डिया हाउस की स्थापना

4.1.3 वी0 डी0 सावरकर तथा मदन लाल धींगरा की गतिविधियां

4.1.4 इंग्लैण्ड से इतर यूरोप के अन्य भागों में प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

2.4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

2.5 प्रथम विश्वयुद्ध के बाद प्रवासी भारतीयों का भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान

2.5.1. दो विश्वयुद्धों के दौरान प्रवासी भारतीयों की भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए गतिविधियां

2.5.2 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग'

2.5.3 सरदार ऊधम सिंह

2.6 सार संक्षेप

2.7. पारिभाषिक शब्दावली

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

2.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मदनलाल धींगरा

प्रवासी भारतीयों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। हम जानते हैं कि गांधीजी ने अपना राजनीतिक जीवन दक्षिण अफ्रीका में एक प्रवासी के रूप में प्रारम्भ किया था। पिछली इकाइयों में यह चर्चा की जा चुकी है कि पाश्चात्य राजनीतिक चेतना ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित किया था तथा 1776 की अमेरिका की क्रान्ति, 1789 की फ्रांस की क्रान्ति, इटली के एकीकरण तथा 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति ने भी इसे प्रभावित किया था। प्रवासी भारतीयों ने भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को न केवल वैचारिक आधार प्रदान किया था अपितु क्रान्तिकारी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए आर्थिक सहायता व अस्त्र–शस्त्र भी उपलब्ध कराए थे। इस इकाई में हम श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, मदनलाल धींगरा, मैडम कामा, लाला हरदयाल, रासबिहारी बोस आदि प्रवासी भारतीयों की भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका की चर्चा करेंगे।

2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में प्रवासी भारतीयों की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका के विषय में आपको जानकारी दी जाएगी। प्रवासी भारतीयों ने मुख्यतः क्रान्तिकारी गतिविधियों के द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना योगदान दिया था। उन्होंने एक ओर भारत में चल रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन की धन, अस्त्र, शस्त्र से सहायता की तथा उनको क्रान्तिकारी साहित्य उपलब्ध कराया वहीं दूसरी ओर भारत के बाहर से कई बार ब्रिटिश भारतीय सरकार का तख्ता पलटने की योजना बनाई। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगे:

- इण्डिया हाउस की स्थापना के बाद से यूरोप में प्रवासी भारतीयों द्वारा क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में।
- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों द्वारा भारत के बाहर से तथा भारत में ब्रिटिश भारतीय सरकार का तख्ता पलटने की योजनाओं के विषय में।
- प्रथम विश्वयुद्ध के बाद प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में।

2.3 प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

2.3.1 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीकी प्रवास

गांधीजी ने बीस वर्ष से अधिक समय दक्षिण अफ्रीका में बिताया और वहीं सत्याग्रह के द्वारा सरकार की जातिभेद तथा रंगभेद की नीतियों का विरोध कर अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया। इस दौरान उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से निकट का सम्बन्ध बनाए रखा और इंगलैण्ड में उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा जैसे उग्र विचारधारा के नेताओं से भी भेंट की। गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने का

अभियान दक्षिण अफ्रीका में ही प्रारम्भ किया और फिर 1915 में स्थायी रूप से भारत लौटने पर उन्होंने इस नए अस्त्र का व्यापक स्तर पर भारत में प्रयोग किया। इस प्रकार एक प्रवासी भारतीय के रूप में गांधीजी ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को एक नई दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

2.3.2 इण्डिया हाउस की स्थापना

भारतीय प्रेस एक्ट्स के प्रतिबन्धों से बचने तथा विदेशों से शस्त्रों की आपूर्ति हेतु क्रान्तिकारियों ने अब विदेश की धरती का सहारा लिया। 1904 में लोकमान्य तिलक के निर्देश पर श्यामजी कृष्ण वर्मा इंग्लैण्ड गए। उन्हें कांग्रेस के नरमदल की सरकार से याचना, विरोध प्रदर्शन, सहयोग तथा साझेदारी वाली नीति स्वीकार्य नहीं थी। उनकी विचारधारा पर दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक तथा हर्बट स्पेन्सर के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। उन्हें हर्बट स्पेन्सर के कथन –

प्रहार और आक्रमण का प्रत्युत्तर देना न केवल न्यायसंगत है अपितु यह अनिवार्य भी है।

में पूर्ण आस्था थी।

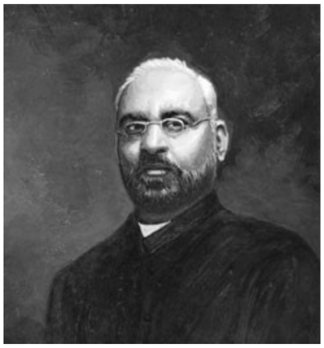

श्यामजी कृष्ण वर्मा

1905 में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारतीय छात्रों के लिए 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की और एक पत्र *इण्डियन सोशियोलोजिस्ट* निकाला। उन्होने 18 फ़रवरी, 1905 को 'इण्डियन होमरूल सोसायटी की स्थापना की जिसके उद्देश्य थे –

1. भारत में होमरूल स्थापित करना।
2. भारत में होमरूल स्थापित करने के उद्देश्य का इंग्लैण्ड में प्रचार करना।
3. भारतीयों में स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय एकता की स्थापना के सन्देश का प्रसार–प्रचार करना।

श्यामजी कृष्ण वर्मा के प्रयासों से भारतीय होमरूल आन्दोलन को इंग्लैण्ड में भी समर्थन प्राप्त हुआ। 1906 तक इसके सदस्यों की संख्या 119 हो गई। इंग्लैण्ड में पढ़ रहे भारतीय छात्रों में राजनीतिक चेतना का विकास करने में इस संस्था को उल्लेखनीय सफलता मिली। 1905 में दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपत राय, मैडम भीकाजी कामा, 'सोशल डेमोक्रैटिक फ़ेडरेशन' के हेनरी हिन्डमैन की उपस्थिति लन्दन में इण्डिया हाउस का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर हेनरी हिन्डमैन ने कहा –

आज की परिस्थितियों में ग्रेट ब्रिटेन के प्रति निष्ठा तथा स्वामिभक्ति भारत के साथ गद्दारी करना है।

इण्डिया हाउस में विश्व की महान हस्तियां श्यामजी कृष्ण वर्मा से विचार विमर्श करने के लिए पहुंचीं। इनमें गांधीजी, लेनिन, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण

गोखले, बिपिन चन्द्र पाल आदि मुख्य थे। इण्डिया हाउस से सम्बद्ध व्यक्तियों में भीकाजी कामा, सरदार सिंह राना,वी0 डी0 सावरकर, बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भाई परमानन्द तथा लाला हरदयाल, वी0 एस0 अय्यर, तिरुमल आचार्य, जी0 एस0 खर्पडे, रामभुज दत्त आदि मुख्य थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा 1905 की रूस की क्रान्ति से बहुत प्रभावित थे। अन्यायी शासन को हिंसा के माध्यम से हटाया जाना उनकी दृष्टि में उचित था, फिर भारत में तो विदेशी शासन था। शीघ्र ही इण्डिया हाउस भारतीय उग्रवादियों का मिलन स्थल बन गया। श्यामजीकृष्ण वर्मा ने भारतीय छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की भी घोषणा की। इस छात्रवृत्ति का लाभ मुख्यतः उग्र विचारधारा के भारतीय युवकों को प्राप्त हुआ। *इण्डियन सोशियोलोजिस्ट* में ब्रिटिश विरोधी लेख प्रकाशित करने पर 'इनर टेम्पिल' से श्यामजी कृष्ण वर्मा को निष्कासित कर दिया गया। 1907 में उन्होंने वीर सावरकर को इण्डिया हाउस का भार सौंपकर अपना मुख्य केन्द्र पेरिस स्थानान्तरित करने का निश्चय किया।

वीर सावरकर

1910 में वीर सावरकर को नासिक षडयन्त्र मामले में आजन्म कारावास दिया गया। श्यामजी कृष्ण वर्मा इस समय पेरिस में थे। उन्होंने सावरकर के आजन्म कारावास के विरोध में *डेली हैराल्ड* में एक लेख – *सावरकर दि हिन्दू पैट्रिएट व्हूज़ सेन्टेन्स एक्सपाइर्स ऑन 24 डैसेम्बर, 1960* (हिन्दू देशभक्त सावरकर जिसकी कि सज़ा 24 दिसम्बर, 1960 को पूरी होगी।) प्रकाशित किया।
1914 में इंग्लैण्ड तथा फ्रांस के सम्बन्धों में सुधार के बाद उनका फ्रांस में रहना भी कठिन हो गया और फिर उन्होंने जेनेवा जाने का निश्चय किया।

लाला हरदयाल

2.3.3 वी0 डी0 सावरकर तथा मदन लाल धींगरा की गतिविधियां

वीर सावरकर के हाथों इण्डिया हाउस का दायित्व आते ही उसकी गतिविधियां अधिक उग्र तथा आक्रामक हो गईं। वीर सावरकर ने लन्दन में 'अभिनव भारत सोसायटी' की स्थापना कर क्रान्तिकारी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। इसके कार्यक्रमों में बम व हथियार बनाना तथा उनको चलाने का प्रशिक्षण तथा गुरिल्ला रणनीति द्वारा सरकार से मुठभेड़ करने के तरीके आदि शामिल थे। रूसी भाषा की पुस्तक *बम मैनुअल* के अंग्रेज़ी अनुवाद की साइक्लोस्टाइल प्रति भारतीय क्रान्तिकारियों में वितरित की गई। सावरकर ने 'फ्री इण्डिया सोसायटी' की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। सावरकर ने 1857 के विद्रोह पर अपना प्रसिद्ध ग्रंथ *फ़र्स्ट वॉर ऑफ इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स* लिखा परन्तु इसे सरकार

मैडम भीकाजी कामा

ने प्रतिबन्धित कर दिया। मैडम भीकाजी कामा ने इसका प्रकाशन नीदरलैण्ड से करवाया तथा फ्रांस और जर्मनी में भी इसको वितरत किया गया। श्यामजी कृष्ण वर्मा का शिष्य तथा वी0 डी0 सावरकर का सहयोगी मदन लाल धींगरा इंग्लैण्ड तथा फ़्रांस में प्रवासी भारतीयों में क्रांति की भावना का प्रचार करने में संलग्न था, इण्डिया हाउस की गतिविधियों में भी वह भाग लेता था। सावरकर तथा धींगरा ने भारत सचिव के सलाहकार तथा ब्रिटिश सांसद कर्जन वाइली की हत्या की योजना बनाई। 1 जुलाई, 1909 को कर्ज़न वाइली की उसने हत्या कर दी। उस पर मुकदमा चला जिसके दौरान उसने अदम्य साहस व देशप्रेम का परिचय दिया। उसकी देशभक्ति से इंग्लैण्ड में विपक्षी दल के नेता विंसटन चर्चिल भी प्रभावित हुए। मदन लाल धींगरा के वक्तव्य का एक अंश उद्धृत है –

मैंने जानबूझ कर भारतीय युवाओं के अमानवीय निर्वासन तथा फांसी चढ़ाए जाने के विरोध में एक उद्देश्य के साथ अंग्रेज़ का खून बहाया है। इस प्रयास में मैंने अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त किसी और से परामर्श नहीं किया है और न ही किसी के साथ मिलकर षडयन्त्र रचा है, मैंने यह अपना कर्तव्य समझ कर किया है। मेरा यह विश्वास है कि विदेशी संगीनों के बल पर गुलाम बनाया गया देश हमेशा युद्ध करने की स्थिति में रहता है और चूंकि खुली लड़ाई असम्भव है इसलिए मैंने अचानक हमला किया है। मैं तोप नहीं ला सकता था इसलिए मैंने रिवॉल्वर का प्रयोग किया है।

एक हिन्दू के रूप में मैं यह मानता हूँ कि मेरे देश की दासता मेरे ईश्वर का अपमान है। मैं न तो योग्य हूँ और न ही धनवान। अपनी भारतमाता की मुक्ति के लिए मैं बस केवल अपना रक्त चढ़ा सकता हूँ। आत्मा अमर है और अगर मेरा हर देशवासी अपने मरने से पहले भारतमाता की मुक्ति के लिए कम से कम दो अंग्रेज़ों को मार दे तो भारतमाता की मुक्ति एक दिन में हो जाएगी। जब तक हमारा देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता तब तक श्री कृष्ण खड़े होकर हमसे कहते रहेंगे –

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महिम्।

(यदि तू रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हुआ तो स्वर्ग जाएगा और यदि जीता तो पृथ्वी पर राज करेगा।)

मेरी यह प्रार्थना है कि मैं इसी भारतमाता के यहां फिर से जन्म लूं और फिर इसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करूं, और मैं तब तक ऐसा करता रहूं जब तक कि मेरी भारतमाता स्वतन्त्र न हो जाए।

वीर सावरकर ने मदनलाल धींगरा के बचाव के लिए हर सम्भव प्रयास किया। उसके कृत्य की निन्दा करने वालों का उन्होंने विरोध किया। 1909 में मदन लाल धींगरा को फांसी दे दी गई। वीर सावरकर ने मदन लाल धींगरा को भारत माता का महान सपूत माना और उसे मातृभूमि पर अपने प्राण न्यौछावर करने वाला शहीद घोषित किया।

वीर सावरकार ने 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट को अपर्याप्त तथा मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था के कारण उसे मुस्लिम समर्थक मानकर उसका विरोध किया।

वीर सावरकर के भाई तथा अभिनव भारत के सदस्य गणेश सावरकर को देशभक्तिपूर्ण गीतों की रचना करने के अपराध में जज जैक्सन द्वारा अण्डमान द्वीप में निर्वासन की सज़ा सुनाई गई थी। दिसम्बर, 1909 में वीर सावरकर द्वारा लन्दन से भेजी गई पिस्तौल से अभिनव भारत के सदस्य अनन्त कन्हारे ने जैक्सन को गोली मार कर उसकी हत्या कर इस अन्यायपूर्ण फ़ैसले का बदला लिया गया। 1910 में वी0 डी0 सावरकर को नासिक षडयन्त्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया। जब जहाज से सावरकर को भारत लाया जा रहा था तो उन्होंने वहीं से भाग निकलने की योजना बनाई। 8 जुलाई, 1910 को सावरकर मर्सेल्स में जहाज के शौचालय से बाहर निकलने में कामयाब होकर समुद्र में दूर तक तैरने के बाद फ़रार होने की कोशिश में पकड़े गए। उनको भारत लाया गया जहां कि उन पर नासिक षडयन्त्र का मुकदमा चला और उन्हें दो आरोपों में दोहरा आजीवन कारावास (कुल 50 वर्ष का कारावास) देकर अण्डमान निकोबार भेज दिया गया।

1. **इण्डिया हाउस पर एक टिप्पणी लिखिये–**

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2.3.4 इंग्लैण्ड से इतर यूरोप के अन्य भागों में प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

वीर पारसी महिला श्रीमती कामा भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रमुख स्तम्भों में मानी जाती हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वह फ्रांस चली गईं। उनके फ्रांसीसी समाजवादी जीन लॉग्ये से निकट के सम्बन्ध थे। मैडम कामा ने पेरिस और जेनेवा से अपनी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। उन्होंने *बन्दे मातरम्* पत्र का प्रकाशन किया। 1905 में इण्डिया हाउस की स्थापना

के समय वो वहां मौजूद थीं। श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर तथा लाला हर दयाल से उनका सम्पर्क था। फ्रांस में रहते हुए उन्होंने अपने घर में गुप्त रूप से दुनिया भर के अनेक क्रान्तिकारियों को पनाह दी और उन्हें धन तथा क्रान्ति हेतु आवश्यक सामग्री पहुंचाई। ब्रिटिश सरकार ने फ्रांसीसी सरकार से अनुरोध किया कि वह उन्हें भारत सरकार को सौंप दे परन्तु यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया। अब ब्रिटिश भारतीय सरकार ने उन्हें भारत से निष्कासित कर दिया। 1905 में मैडम कामा ने अपने साथियों के साथ भारत का पहला तिरंगा ध्वज तैयार किया। हरे और पीले झण्डे पर लाल पट्टियां थीं और उस पर 'बन्दे मातरम्' अंकित था। 22 अगस्त, 1907 को जर्मनी के स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ़्रेंस' में उन्होंने भाग लिया और ब्रिटिश भारतीय शासन की दमनकारी नीतियों तथा भारतीयों की आकांक्षाओं पर एक ओजस्वी भाषण दिया। वहां उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया।

भारतीय क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश पुलिस की कार्यवाहियों से बचने के लिए विदेशों में अपनी गतिविधियों के नए केन्द्र विकसित करने शुरू किए। इनमें बर्लिन, पेरिस तथा जेनेवा प्रमुख थे। आंग्ल–जर्मन सम्बन्धों में खटास पड़ने के बाद बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने बर्लिन को अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। क्रान्तिकारियों ने अब विदेश जाकर हथियार चलाने व उनको बनाने का प्रशिक्षण लेना आवश्यक समझा। हेमचन्द्र कानूनगो सैनिक प्रशिक्षण के लिए पेरिस गए। जनवरी, 1908 में भारत लौटकर उन्होंने मानिकतल्ला में एक धार्मिक विद्यालय में बम बनाने का गुप्त कारखाना खोला। प्रवासी भारतीय यूरोपीय देशों में हुए क्रान्तिकारी आन्दोलनों से बहुत प्रेरित हुए थे। उनका विचार था कि आधुनिक ग्रीस, आयरलैण्ड तथा इटली में गुप्त संगठनों ने जिस प्रकार अपने–अपने देशों में स्वतन्त्रता की अलख जगाई थी, उसी प्रकार भारत में भी इसको प्रज्जवलित किया जा सकता था।

2. **यूरोप के अन्य भागों में प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियों पर चर्चा करें–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियां

भारतीय क्रान्तिकारियों की इंग्लैण्ड तथा शेष यूरोप में छुटपुट गतिविधियां हो रही थी परन्तु ब्रिटिश कोलम्बिया तथा प्रशान्त तटीय क्षेत्र के अमेरिकी राज्यों में भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को एक सुदृढ़ आधार मिल गया था। 1914 में लगभग 15000 धनाढ्य सिख व्यापारी तथा कारीगर यहां आकर बस गए थे जिनको जातीय भेदभाव का शिकार होना पड़ रहा था किन्तु ब्रिटिश भारतीय सरकार इस समस्या के समाधान के लिए कोई कदम नहीं उठा रही थी। सोहन सिंह भाकना तथा लाला हरदयाल ने 1913 में अमेरिका के सैन फ़्रांसिसको नगर में ग़दर पार्टी की स्थापना की। इस दल में मुख्यतः सिख व्यापारी तथा श्रमिक थे जो कि ब्रिटिश भारतीय सरकार से इस बात के लिए नाराज़ थे कि वह उन्हें अमेरिका में उनके ऊपर किए जा रहे रंगभेदी व नस्लभेदी अत्याचारों से बचाने के लिए कुछ भी नहीं कर रही है। इस दल ने अपना एक पत्र *ग़दर* निकाला जो कि अरबी–फ़ारसी लिपि तथा गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित होता था। इस अंक के पहले अंक में ही भारत में क्रान्ति कर अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया गया था। इस दल का मुख्य लक्ष्य भारतीय क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए आवश्यक हथियार उपलब्ध कराना था। ग़दर पार्टी के सदस्यों में मुख्य थे –

बाबा सोहन सिंह भाकना, लाला हर दयाल, मास्टर अमीरचन्द, राजा महेन्द्र प्रताप सिंह, रास बिहारी बोस, बर्कतुल्ला खां, बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, पण्डित जगतराम, चम्पक राम पिल्ले, बाबा ज्वाला सिंह, खान खोजे, सरदार कर्तार सिंह सरभा, बाबा पृथ्वी सिंह आज़ाद लारू तथा भाई परमानन्द। ग़दर पार्टी का मुख्य लक्ष्य भारतीय क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए आवश्यक हथियार उपलब्ध कराना था। ग़दर पार्टी का अपना झण्डा था जिसमें लाल, पीले तथा हरे, तीन रंग थे। ग़दर पार्टी ने उर्दू, पंजाबी तथा हिन्दी में *ग़दर सन्देश, ऐलान–ए–जंग, तिलक, नादर मौका* और *नौजवान उठो* शीर्षक पुस्तिकाओं का प्रकाशन कर उनका प्रवासी भारतीयों तथा भारत में वितरण करवाया। ग़दर पार्टी के पत्रों में छपे विज्ञापनों में नौजवानों को देश को स्वतन्त्रत कराने की नौकरी करने के लिए आवेदन भेजने के लिए कहा जाता था और पारश्रमिक के रूप में उन्हें शहीद कहलाने का मौका दिए जाने का भरोसा दिलाया जाता था। ग़दर पार्टी द्वारा चन्दा एकत्र कर हथियार व विस्फोटक खरीदे गए, फिर उनको भारत भेजा गया। भारत के विभिन्न भागों में जनता में, और सैनिक छावनियों में विद्रोह भड़काने के लिए प्रचारक भेजे गए। सरदार सिंह राना क्रान्तिकारी पत्रकार थे। वह *बंदेमातरम्, इण्डियन फ़्रीडम* तथा *तलवार* जैसे पत्रों से सम्बद्ध थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय सेना के अंग्रेज़ सैनिकों में से अधिकांश लड़ने के लिए बाहर भेज दिए गए थे। एक समय तो ऐसा आया था जब भारत में उनकी संख्या मात्र 15000 रह गई थी। क्रान्तिकारियों को तुर्की और जर्मनी से वित्तीय सहायता मिलने की भी आशा थी। 1915 में बर्लिन में बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, लाला हरदयाल आदि ने जर्मन

विदेश मन्त्रालय की सहायता से 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' की स्थापना की। भारत–ईरान सीमा पर कबीलियाइयों के सहयोग से भारत की अंग्रेज़ सरकार को उलटने की योजना बनाई गई। ग़दर पार्टी के, अक्टूबर, 1914 से फ़रवरी, 1915 तक 2312 सदस्य भारत पहुंचे।

1915 में देवबन्द के मुल्ला महमूद अल हसन ने भारत से अंग्रेज़ों को निष्कासित करने के लिए अपने शिष्य उबैदुल्ला सिन्धी को काबुल के अमीर का सहयोग प्राप्त करने के लिए काबुल भेजा। राजा महेन्द्र प्रताप तथा प्रोफ़ेसर बरकतुल्ला भी उसके साथ थे। दिसम्बर, 1915 में राजा महेन्द्र प्रताप ने स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार की काबुल में स्थापना की और उन्होंने सहयोग प्राप्ति के लिए अपने दल तुर्की, रूस तथा जापान भेजे। काबुल में पंजाब से आए सैनिकों से एक क्रान्तिकारी सेना के गठन के प्रयास किए गए। महमूद अल हसन ने मदीना में हिज़्ब अल्लाह दल का गठन किया। इसकी शाखाएं काबुल, तेहरान तथा कुन्सतुनतुनिया में भी स्थापित की गईं। ईरान में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स आर्मी' का गठन किया गया।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बाघा जतीन ने जर्मन हथियारों की खेप लाने के लिए नरेन भट्टाचार्जी को जावा भेजा परन्तु आपसी तालमेल की कमी से योजना निष्फल रही। रासबिहारी बोस तथा सचिन सान्याल ने ग़दर पार्टी के भारत लौटे सदस्यों के साथ मिलकर भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज़ करने का प्रयास किया। बाघा जतीन, सचिन सान्याल और रास बिहारी बोस जैसे भारतीय क्रान्तिकारी, बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के नेतृत्व में गठित जर्मनी में स्थापित 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' तथा अमेरिका में ग़दर पार्टी ने प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों की व्यस्तता का लाभ उठाकर उसका भारत में तख्ता पलटने की योजना बनाई। इसको सैनफ्रांसिसको में स्थित जर्मन कौंसिलेट, जर्मनी के विदेश विभाग, आइरिश रिपब्लिकन मूवमेन्ट तथा तुर्की की सरकार का समर्थन प्राप्त हुआ। इस योजना के अन्तर्गत भारत में पंजाब से लेकर दक्षिण पूर्व एशिया में सिंगापुर तक ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों में भारत में स्थापित अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह भड़काया जाना था। मनीला से जर्मन रिवॉल्वर की एक बड़ी खेप भारत भेजी गई परन्तु वह अंग्रेज़ों के हाथ लग गई। स्विटज़रलैण्ड में 'इण्डियन रिवोल्यूशनरी सोसायटी' का गठन किया गया।

सिंगापुर में 15 फ़रवरी, 1915 को पंजाबी मुसलमानों की 5 वीं लाइट इनफ़ैन्ट्री तथा 36 वीं सिख बटालियन ने जमादार चिश्ती खान, जमादार अब्दुल ग़नी और सूबेदार दाउद खान के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया गया। विद्रोह को कुचल दिया गया और विद्रोहियों में से 37 को मृत्युदण्ड तथा 41 को आजन्म कारावास दिया गया।

21 फ़रवरी, 1915 को भारतीय सैनिक छावनियों में विद्रोह की तिथि निश्चित की गई। पर सतपाल सिंह की गद्दारी से सरकार को इसका पता चल गया, फ़ीरोज़पुर तथा मियां मीर में सैनिक छावनियों के हथियारों पर कब्ज़ा करने की रणनीति असफल रही। सरकार ने पार्टी के लगभग सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया। 1915 में अंग्रेज़ों द्वारा बग़दाद

पर कब्ज़ा करने के बाद तुर्की से मिलने वाली मदद की सम्भावना समाप्त हो गई। रेशमी रूमाल और लाहौर षडयन्त्र के अन्तर्गत पकड़े गए विद्रोहियों को कठोर सज़ाएं दी गईं। रेशमी रूमाल षडयन्त्र में 17 को फांसी तथा लाहौर षडयन्त्र में 42 को फांसी दी गई। फांसी दिए जाने वाले ग़दर पार्टी के सदस्यों में कर्तार सिंह सरभा, जगत सिंह, विष्णु गणेश पिंगले, हरनाम सिंह सियालकोटी, हाफ़िज़ अब्दुल्ला आदि प्रमुख हैं। ब्रिटिश भारतीय सरकार की तत्परता, सदस्यों की ग़द्दारी, साधनों की कमी, योजना में तालमेल की कमी, ईरान, ईराक़ आदि में ब्रिटिश सेना की सफलता आदि इस महत्वाकांक्षी प्रयास की असफलता के प्रमुख कारण थे। 1917 में अमेरिका में सैन फ्रांसिसको में 'हिन्दू–जर्मन षडयन्त्र' पर लम्बे समय तक मुकदमा चलाया गया।

3. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियों पर लिखें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4. श्यामजी कृष्ण वर्मा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.ग़दर पार्टी का ब्रिटिश भारतीय सरकार का तख्ता पलटने की योजना पर लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकित प्रश्न

(i) 1910 में नासिक षडयन्त्र में वीर सावरकर को कितने वर्ष का कारावास दिया गया?

(ii) 1915 में काबुल में किसने स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार की स्थापना की थी?

2.5 प्रथम विश्वयुद्ध के बाद प्रवासी भारतीयों का भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान

2.5.1. दो विश्वयुद्धों के दौरान प्रवासी भारतीयों की भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए गतिविधियां

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो जाने के बाद प्रवासी भारतीयों की भारतीय स्वतन्त्रता हेतु क्रान्किारी गतिविधियों पर पूर्ण विराम नहीं लगा। इस विषय में प्रोफ़ेसर बर्कतुल्ला का उल्लेख आवश्यक है। अब प्रवासी भारतीयों ने साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले सोवियत रूस की मदद से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को अपना समर्थन देने का निश्चय किया। प्रोफ़ेसर बर्कतुल्ला के प्रयास से फ़रवरी, 1920 में काबुल में भारतीय क्रान्तिकारियों की बैठक हुई जिसमें भारत को स्वतन्त्र करने का संकल्प लिया गया और सोवियत रूस से इस विषय में हर सम्भव सहायता मांगी गई। 13 मई, 1920 को लेनिन ने मॉस्को रेडियों से भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए प्रसारित अपने सन्देश में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध उनके प्रयासों का स्वागत किया तथा उनकी सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं दीं। एम0 एन0 राय, हेराम्ब लाल गुप्ता, भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा नलिनी दासगुप्त के साथ बर्कतुल्ला और बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय मार्च, 1921 में मॉस्को गए और वहां उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए रूस की साम्यवादी सरकार का सहयोग मांगा। बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय बर्लिन में अभी भी 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' के महासचिव थे। उन्होंने दिसम्बर, 1921 में *इण्डियन न्यूज़ एण्ड इन्फ़ोर्मेशन ब्यूरो* की स्थापना की। उन्होंने 1927 में जवाहर लाल नेहरू से भेंट कर उनके समक्ष 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठबन्धन का प्रस्ताव रखा।

ग़दर पार्टी ने 1920 में एक बार फिर भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयास प्रारम्भ किए। अब इस दल का रुझान साम्यवादी विचारों की ओर हो गया था। अब कैलिफ़ोर्निया में उनकी गतिविधियों पर नज़र रखी जा रही थी इसलिए उन्होंने अपनी गतिविधियों का केन्द्र पूर्वी एशिया बना लिया जहां कि उन्हें चीन के साम्यवादी दल का समर्थन भी प्राप्त हुआ। ग़दर पार्टी के भूतपूर्व सदस्य ज्ञानी प्रीतम सिंह ढिल्लों ने इण्डोनेशिया में रहकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए अपना योगदान जारी रखा। उन्होंने इण्डोनेशिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया और फिर 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' के संस्थापकों में से एक रहे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीत सिंह ब्राज़ील चले गए और वहां उन्होंने 'सोसायटी फ़ॉर इण्डियन्स' की स्थापना की। 1932 से 1938 में अपने स्विटज़रलैण्ड प्रवास में उन्होंने क्रान्तिकारी प्रवासी भारतीयों से सम्पर्क साधने का प्रयास किया। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व वो इटली चले गए और वहां मुसोलिनी की सरकार से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए सहयोग मांगा। विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने इटली के कब्ज़े में भारतीय सैनिक युद्धबन्दियों में से एक क्रान्तिकारी सेना का गठन किया। रेडियो रोम से उन्होंने हिन्दुस्तानी में अपनी योजनाओं को प्रस्तुत किया।

2.5.2 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग'

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार से वैमनस्य रखने वाले तथा तटस्थ देशों में प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारियों ने जिस प्रकार अपने केन्द्र बनाए थे उसी प्रकार द्वितीय विश्युद्ध के दौरान भी यह प्रयास जर्मनी, इटली तथा दक्षिण पूर्व एशिया में किया गया था। दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवासी भारतीयों ने 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की। पहली 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना रासबिहारी बोस ने 1928 में ही कर दी थी। सिंगापुर में के0 पी0 के0 मेनन, नेदियम राघवन, प्रीतम सिंह, एस0 सी0 गोहो आदि ने 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की जिसको कि सिंगापुर पर अधिकार करने वाली जापानी सेना ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' में सम्मिलित होने के लिए स्थानीय भारतीय आबादी के युवकों को आमन्त्रित किया गया और उसके सदस्यों को सिंगापुर पर कब्ज़ा करने वाली सत्ता ने राशन, रेलवे टिकट तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की सुविधा उपलब्ध करने का प्रलोभन भी दिया। रासबिहारी बोस द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से पहले ही जापानी सरकार से भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम हेतु सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। मलाया पर जापानी अधिकार हो जाने के बाद ब्रिटिश सेना के लगभग 60000 भारतीय सैनिकों ने जापानियों के सामने आत्मसमर्पण किया था। रास बिहारी बोस ने जापानी सेना के मेजर फ़ूजीवारा तथा युद्धबन्दी कैप्टिन मोहन सिंह की मदद से भारत को मुक्त करने के लिए एक सेना गठित करने की योजना बनाई। 28 से 30 मार्च, 1942 को रास बिहारी बोस ने टोकियो में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' का एक सम्मेलन आयोजित किया परन्तु सिंगापुर की 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' ने जापानी इरादों पर शंका व्यक्त की। भारतीय युद्धबन्दियों की देखरेख करने वाले निरंजन सिंह को भी जापानियों की नीयत

पर शक था। यह निश्चित किया गया कि अगली बैठक जापान में नहीं होगी 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' अपना अगला अधिवेशन 22 जून, 1942 को बैंकाक में आयोजित किया गया। इसमें 'आल मलायन इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' के अध्यक्ष नेद्यम राघवन और 'सिंगापुर इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' के के० पी० के मेनन तथा एस० सी० गोहो ने आदि ने लीग के संविधान का निर्माण किया। लीग के अध्यक्ष रासबिहारी बोस बनाए गए। इसके नागरिक सदस्य के० पी० के० मेनन तथा नेद्यम राघवन बनाए गए। इण्डियन नेशनल आर्मी के मान सिंह तथा गिलान इसके सैनिक सदस्य बनाए गए। यह निश्चित किया गया कि इण्डियन नेशनल आर्मी 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' के अधीन काम करेगी। 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' ने जापानी सरकार के समक्ष अपना 34 सूत्री प्रस्ताव रखा उससे यह आश्वासन मांगा गया कि वह भारत की स्वतन्त्रता को मान्यता देगा और इण्डियन नेशनल आर्मी को अपनी अधीनस्थ नहीं, अपितु अपनी सहयोगी सेना मानेगा। अगस्त, 1942 तक 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' के सदस्यों की संख्या बढ़कर एक लाख तक हो गई। आज़ाद हिन्द फ़ौज के माध्यम से भारत को स्वतन्त्र कराने के अभियान में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' का महत्वपूर्ण योगदान रहा। नवम्बर, 1943 में टोकियो में 'ग्रेटर ईस्ट एशिया कॉन्फ्रेन्स' का आयोजन हुआ। इसमें सुभाष चन्द्र बोस ने स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार के राज्याध्यक्ष के रूप में भाग लिया। रासबिहारी बोस ने सुभाष चन्द्र बोस को आज़ाद हिन्द फ़ौज का झण्डा प्रदान किया। 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' ने दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के संचालन के लिए प्रचुर मात्रा में धन एकत्र किया। आज़ाद हिन्द फ़ौज के लिए चन्दा एकत्र करने के लिए सुभाष चन्द्र बोस को तराजू में बिठाकर सोने से तौला गया और उनकी सेना में स्वेच्छा से हज़ारों भारतीय सम्मिलित हुए। आज़ाद हिन्द फ़ौज तथा 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' का अभियान सफल नहीं रहा किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

5. इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग पर चर्चा करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.5.3 सरदार ऊधम सिंह

सरदार ऊधम सिंह

सरदार ऊधम सिंह जलियांवाले बाग हत्याकांड का असली मुजरिम पंजाब के तत्कालीन लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर को मानते थे। उन्होंने संकल्प किया था कि वो उसको मौत के घाट उतारेंगे। सरदार ऊधम सिंह का सम्पर्क सदैव क्रान्तिकारियों से रहा। वो अमेरिका गए और 1924 में उनका सम्पर्क ग़दर पार्टी के पुराने सदस्यों से हुआ। भारतीय क्रान्तिकारियों से भी उनका सम्पर्क रहा। भगत सिंह आदि भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए वो रिवॉल्वर तथा विस्फोटक के साथ अमृतसर में पकड़े गए। उनके पास से रिवॉल्वर तथा प्रतिबन्धित ग़दर पार्टी पत्र *ग़दर–ए–गूंज* बरामद हुआ। सरदार ऊधम सिंह को चार वर्ष की कैद हो गई। 1931 में जेल से छूटने के 3 साल बाद वो इटली, फ्रांस, स्विटज़रलैण्ड और ऑस्ट्रिया होते हुए इंग्लैण्ड पहुंचे। अपने गंतव्य तक पहुंचने में उन्हें कई वर्ष लगे। उन्होंने गोलियों के साथ एक 6 चैम्बर वाला रिवॉल्वर खरीदा।

13 मार्च, 1940 को लन्दन के कैक्सटन हॉल में पंजाब के भूतपूर्व लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर को ऊधम सिंह ने अपनी रिवॉल्वर से दो गोलियां मारीं। उसके पास खड़े भारत सचिव लॉर्ड ज़ेटलैण्ड पर भी गोली चलाई, वह घायल तो हुआ पर गम्भीर रूप से नहीं। बगल में खड़ा सर लुई डेन गम्भीर रूप से घायल हुआ। ऊधम सिंह ने भागने की कोई कोशिश नहीं की और खुद को गिरफ्तार होने दिया। गिरफ्तार होने के बाद उन्होंने यह मालूम किया कि ज़ेटलैण्ड मरा या नहीं। जब उन्हें पता चला कि माइकिल ओडवेयर के अतिरिक्त कोई और नहीं मरा तो उन्होंने दुख प्रकट किया और कम लोगों के मारे जाने का कारण यह बताया कि आसपास बहुत सी महिलाएं थीं इसलिए उनको बचाने की कोशिश में उनका निशाना ठीक तरह से नहीं लगा। 1 अप्रैल, 1940 से उनपर मुकदमा चलाया गया। उन्होंने अदालत में अपना कृत्य ठीक ठहराया। 31 जुलाई, 1940 को पैन्टनविले जेल में उनको फांसी दी गई। स्कॉटलैण्ड यार्ड के ब्लैक म्यूज़ियम में उनकी रिवॉल्वर, चाकू, डायरी आदि आज भी सुरक्षित हैं।

सरदार ऊधम सिंह के कृत्य पर भारत में मिलीजुली प्रतिक्रिया हुई। यह समय द्वितीय विश्वयुद्ध का था और प्रेस पर कठोर निगरानी रखी जा रही थी फिर भी *अमृत बाज़ार पत्रिका* ने सरदार ऊधम सिंह के साहस की प्रशसा की थी। महात्मा गांधी ने अपने पत्र *हरिजन* में लिखा था कि उनका माइकिल ओडवेयर तथा लॉर्ड ज़ेटलैण्ड की नीतियों से अवश्य विरोध रहा है पर वह अन्याय का प्रतिकार हिंसा से लिए जाने के पक्ष में नहीं हैं और कैक्सटन हुई हत्या की वह भर्त्सना करते हैं। जवाहर लाल नेहरू की दृष्टि में भी यह एक निरर्थक आतंकवादी घटना थी। देश के बड़े नेताओं में केवल सुभाष चन्द्र बोस ने उनके साहस और

उनकी वीरता की प्रशंसा की। अप्रैल, 1940 में कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में युवा कांग्रेसियों ने 'ऊधम सिंह ज़िन्दाबाद' के नारे लगाए। लन्दन के *टाइम्स* ने उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी कहा। जर्मन रेडियो ने ऊधम सिंह के साहस की प्रशंसा की और यह टिप्पणी की कि भारतीय 20 वर्ष बाद भी बदला लेना नहीं भूलते। *बर्लिन बोर्से ज़ीटुंग* पत्र में भी ऊधम सिंह की प्रशंसा की गई।

प्रवासी भारतीयों ने ब्रिटिश भारतीय शासन के लिए अनेक कठिनाइयां पैदा कीं। उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को हर सम्भव सहायता देने का प्रयास किया। भारतीय क्रान्तिकारियों से उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा। भारत में क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण कराकर उन्होंनें भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की और भारतीयों को बम बनाने और हथियार चलाने के प्रशिक्षण सम्बन्धी पाठ्य सामग्री भी भेजी। उनके द्वारा गुप्त रूप से हथियार और विस्फोटक भी भारत भेजे गए। प्रवासी भारतीयों का यह मानना था कि शत्रु का शत्रु मित्र होता है और इसी दृष्टिकोण से उन्होंने दोनों विश्वयुद्धों में इंग्लैण्ड के शत्रुओं से अपने अभियान हेतु सहायता लेने में कोई संकोच नहीं किया। उन्होंने भारतीयों को स्वतन्त्रता का मूल्य समझने और उसको प्राप्त करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाने की प्रेरणा दी। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में प्रवासी भारतीयों के योगदान को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना उन्हें दिया जाना चाहिए इस दृष्टि से स्वतन्त्रता आन्दोलन के इस उपेक्षित किन्तु महत्वपूर्ण अध्याय का इतिहासकारों द्वारा पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

6. सरदार ऊधम सिंह के विषय में जानकारी दीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) एक प्रवासी के रूप में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में रास बिहारी बोस का योगदान।

(ख) सरदार ऊधम सिंह।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) मई, 1920 में किस देश के राष्ट्राध्यक्ष ने भारतीय क्रान्तिकारियों को अपना शुभकामना सन्देश भेजा था?

(ii) जर्मनी में *इण्डियन न्यूज़ एण्ड इन्फ़ोर्मेशन ब्यूरो* की स्थापना किसने की थी?

2.6 सार संक्षेप

लन्दन में 1905 में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारतीय छात्रों के लिए 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की और एक पत्र *इण्डियन सोशियोलोजिस्ट* निकाला। वीर सावरकर ने लन्दन में 'अभिनव भारत सोसायटी' की स्थापना कर क्रान्तिकारी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। 1909 में मदन लाल धींगरा ने भारत सचिव के सलाहकार तथा ब्रिटिश सांसद कर्जन वाइली की हत्या कर दी। 1910 में वी0 डी0 सावरकर को नासिक षडयन्त्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया। मैडम कामा ने 22 अगस्त, 1907 को जर्मनी के स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ़्रेंस' में उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया। सोहन सिंह भाकना तथा लाला हरदयाल ने 1913 में अमेरिका के सैन फ़्रांसिसको नगर में ग़दर पार्टी की स्थापना की। ग़दर पार्टी का मुख्य लक्ष्य भारतीय क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए आवश्यक हथियार उपलब्ध कराना था। 1915 में बर्लिन में बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, लाला हरदयाल आदि ने जर्मन विदेश मन्त्रालय की सहायता से 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' की स्थापना की। भारत–ईरान सीमा पर कबीलियाइयों के सहयोग से भारत की अंग्रेज़ सरकार को उलटने की योजना बनाई गई। ग़दर पार्टी के, अक्टूबर, 1914 से फ़रवरी, 1915 तक 2312 सदस्य भारत पहुंचे। ईरान में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स आर्मी' का गठन किया गया। रासबिहारी बोस तथा सचिन सान्याल ने ग़दर पार्टी के भारत लौटे सदस्यों के साथ मिलकर भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज़ करने का प्रयास किया। इस योजना के अन्तर्गत भारत में पंजाब से लेकर दक्षिण पूर्व एशिया में सिंगापुर तक ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों में भारत में स्थापित अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह भड़काया जाना था।

सिंगापुर में 15 फ़रवरी, 1915 को भारतीय सैनिकों के विद्रोह को कुचल दिया गया।

21 फ़रवरी, 1915 को भारतीय सैनिक छावनियों में विद्रोह की तिथि निश्चित की गई पर इससे पहले ही सरकार को इसकी सूचना मिल गई। रेशमी रूमाल षडयन्त्र में 17 को फांसी तथा लाहौर षडयन्त्र में 42 को फांसी दी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान बीरेन्द्रनाथ चट्‌टोपाध्याय बर्लिन में *इण्डियन न्यूज़ एण्ड इन्फ़ोर्मेशन ब्यूरो* की स्थापना की। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीत सिंह ने ब्राज़ील में 'सोसायटी फ़ॉर इण्डियन्स' की स्थापना की। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवासी भारतीयों ने 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना की। रास बिहारी बोस ने जापानी सेना के मेजर फूजीवारा तथा युद्धबन्दी कैप्टिन मोहन सिंह की मदद से भारत को मुक्त करने के लिए एक सेना गठित करने की योजना बनाई। आज़ाद हिन्द फ़ौज के माध्यम से भारत को स्वतन्त्र कराने के अभियान में 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग' का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सरदार ऊधम सिंह ने 13 मार्च, 1940 को लन्दन के कैक्सटन हॉल में पंजाब के भूतपूर्व लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर की हत्या कर दी। प्रवासी भारतीयों ने ब्रिटिश भारतीय शासन के लिए अनेक कठिनाइयां पैदा कीं। उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को हर सम्भव सहायता देने का प्रयास किया।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

सोशल डैमोक्रैटिक फ़ेडरेशनः समाजवादी लोकतान्त्रिक संघ

पैट्रिएटः देशभक्त

ऐलान–ए–जंगः युद्ध की घोषणा

हिन्दुस्तानीः हिन्दी–उर्दू मिश्रित भाषा

मुजरिमः अपराधी

ग़दर–ए–गूंजः विद्रोह का उद्‌घोष

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

एच0 चक्रबर्ती – *पॉलिटिकल प्रोटैस्ट इन बैंगालः बॉयकॉट एण्ड टैरेरिज़्म, 1905–18*, कलकत्ता, 1992

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बॉम्बे, 1969

बोस, ए0 सी0 – *इण्डियन रिवोल्यूशनरीज़ एब्रॉड 1905–22 इन दि बैकग्राउण्ड ऑफ इण्टरनेशनल डवलपमेन्ट्स*, पटना, 1971

जलाल, याज्ञनिक – *श्यामजी कृष्ण वर्मा – लाइफ़ एण्ड टाइम्स ऑफ एन इण्डियन रिवोल्यूशनरी*, बम्बई, 1950

जोश, सोहन सिंह – *हिन्दुस्तान ग़दर पार्टीः ए शॉर्ट हिस्ट्री*, नई दिल्ली, 1977

2.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (i) 50 वर्ष का।

(ii) राजा महेन्द्र प्रताप सिंह ने।

1. (क) देखिए 2.5.2 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग'।

(ख) देखिए 2.5.3 सरदार ऊधम सिंह।

2. (i) सोवियत रूस के राष्ट्राध्यक्ष लेनिन ने।

(ii) बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. मदनलाल धींगरा के बलिदान पर प्रकाश डालिए।
2. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास की मुख्य उपलब्धियों की चर्चा कीजिए।
3. मैडमकामा की क्रान्तिकारी गतिविधियों का आकलन कीजिए।
4. क्रान्तिकारी आन्दोलन में लाला हरदयाल के योगदान का आकलन कीजिए।
5. इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग की गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई का शीर्षकः राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 सशस्त्र क्रान्ति में भारतीय महिलाओं की भूमिका

3.3.1 1857 के विद्रोह में महिलाओं की भूमिका

3.3.2 भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

3.3.3 श्रीमती एनीबीसेन्ट और उनका होमरूल आन्दोलन

3.4 भारत की स्वतन्त्रता हेतु शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

3.4.1 गांधीजी से पूर्व स्वतन्त्रता आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

3.4.2 गांधीजी के आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

3.5 सार संक्षेप

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

3.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल, मैडम कामा, श्रीमती एनीबीसेन्ट, श्रीमती कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, कल्पना दत्त, अरुणा आसफ़ अली, लक्ष्मी मेनन आदि की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका की चर्चा कर चुके हैं। भारत में अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति शोचनीय होने के बावजूद स्त्रियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सराहनीय भूमिका निभाई थी। गांधीजी के सभी आन्दोलनों में, विशेषकर उनके सृजनात्मक कार्यों यथा खादी का उत्पादन एवं उसकी बिक्री, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार तथा प्रचार, मद्य–निषेध कार्यक्रम, दलितोद्धार, ग्राम–सुधार, अस्पृश्यता निवारण, नारी–उत्थान, शिक्षा–प्रसार आदि से वे घनिष्ठ रूप से जुड़ी थीं। इस इकाई में हम 1857 से लेकर देश की स्वतन्त्रता तक राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका का आकलन करेंगे।

3.2 इकाई के उद्‌देश्य

भारतीय महिलाओं ने 1857 के विद्रोह से लेकर भारत को स्वतन्त्रता मिलने तक राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रत्येक चरण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस इकाई में आपको भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका क विषय में जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगे:

- 1857 के विद्रोह में महिलाओं की भूमिका के विषय में।
- ब्रिटिश शासन–विरोधी आन्दोलनों में महिलाओं के योगदान के विषय में।
- भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका के विषय में।
- राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक कार्यक्रमों में महिलाओं के योगदान के विषय में।

3.3 सशस्त्र क्रान्ति में भारतीय महिलाओं की भूमिका

3.3.1 1857 के विद्रोह में महिलाओं की भूमिका

झांसी के निःसंतान शासक गंगाधर राव की मृत्यु के बाद व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत उनके राज्य का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया गया था। उनकी विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने नाना साहब और तात्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेज़ी शासन को भारत में जड़ से खत्म करने के उद्‌देश्य से विद्रोह का नेतृत्व किया। रानी ने एक हिन्दू विधवा के परम्परागत धार्मिक जीवन का परित्याग कर देश को स्वतन्त्र करने के लिए एक सैनिक का जीवन अपनाया था। लक्ष्मीबाई की सेना में स्त्री–पुरुष, हिन्दू–मुसलमान का कोई भेद नहीं था। उनकी जनानी फौज और गुलाम गौस खां के तोपखाने ने अंग्रेज़ी सेना के दांत खट्टे कर दिए। झांसी और कालपी में पराजित होकर ग्वालियर पर अभियान कर उस पर अधिकार कर लिया किन्तु अंग्रेज़ी सेना ने पुनः ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों से लड़ते हुए जून, 1858 में ग्वालियर में 22 वर्ष की आयु में वीरगति प्राप्त की। उनके विरोधी अंग्रेज़ों ने भी उनके साहस और रणकौशल की प्रशंसा की है। ब्रिटिश शासन में रानी लक्ष्मीबाई

का उल्लेख करना भी वर्जित था रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ी शासन समाप्त कर फिर से भारतीय को राज तो स्थापित नहीं कर पाईं किन्तु उन्होंने देशवासियों के हृदय पर अवश्य राज किया। ब्रिटिश शासन में रानी लक्ष्मीबाई की वीरता और उनके बलिदान का उल्लेख तक करना वर्जित था परन्तु सुभद्राकुमारी चौहान ने उनपर अपनी प्रसिद्ध कविता *झांसी की रानी* लिखी थी। इस कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवियित्री रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान को नमन करते हुए कहती हैं –

जाओ रानी याद रखेंगे, हम कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा, स्वतन्त्रता अविनाशी।
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को, चाहे फांसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे, गोलों से चाहे झांसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू ही अमर निशानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी,
खुब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।

नवाब वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल 1857 के आन्दोलन की एक प्रमुख सेनानी थीं। उन्होंने अपने पुत्र बिरजीस कद्र को अवध का नवाब घोषित किया था और बादशाह बहादुर शाह को हिन्दुस्तान के बादशाह के रूप में स्वीकार किया था। *दि टाइम्स* के सम्वाददाता डब्लू0 एच0 रसेल ने उनकी योग्यता और पराक्रम की प्रशंसा की है। बेगम की फ़ौज में जनानी पल्टन भी थी। बेगम हज़रत महल युद्ध में हार कर भी हिम्मत हारने वाली नहीं थीं। लखनऊ पर अंग्रेज़ों का फिर से अधिकार हो जाने के बाद उन्होंने बौंडी से विद्रोह का संचालन किया। बाद में वो अपने बेटे बिरजीस कद्र और अपने समर्थकों के साथ नेपाल चली गईं और फिर आजीवन वहीं रहीं। 1858 के महारानी के घोषणापत्र पर नेपाल से भेजी गई उनकी विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक प्रतिक्रिया उनकी राजनीतिक परिपक्वता की परिचायक है। बेगम हज़रत महल ने अंग्रेज़ों के आत्म समर्पण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और निर्वासन में आजीवन अभाव का जीवन व्यतीत किया।

बेगम हज़रत महल की जनानी पलटन की वीर सेनानी उदा देवी पासी ने नवम्बर, 1857 में लखनऊ में सिकन्दराबाद के युद्ध में पुरुष वेश में भाग लेकर एक पेड़ पर चढ़कर अनेक अंग्रेज़ों को अपनी बन्दूक से मार गिराया परन्तु बाद में अंग्रेज़ों की गोली से वह शहीद हुई। कृतज्ञ देशवासियों ने लखनऊ के सिकन्दराबाद के चौराहे पर उदा देवी पासी की मूर्ति स्थापित की है। रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल और उनकी सहयोगिनी झलकारी देवी ने युद्ध के दौरान दुश्मनों से घिरी रानी लक्ष्मी बाई के प्राण बचाने के लिए रणक्षेत्र में खुद को रानी के रूप में प्रस्तुत कर उन्हें सुरक्षित निकल जाने दिया और खुद उसने अंग्रेज़ों से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की।

1.1857 के विद्रोह में महिलाओं की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए–

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3.3.2 भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

बंगाल विभाजन के विरोध में भारतीय क्रान्तिकारियों ने क्रान्तिकारी चरमपंथ के प्रचार हेतु 'जुगान्तर दल' का गठन किया। इस दल के द्वारा क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण, पुलिस थानों पर हमले तथा राजनीतिक डकैतियां की जाती थीं। महिलाएं क्रान्तिकारियों को उनके सन्देश पहुंचाने में तथा क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण करने में उनकी सहायता करती थीं। श्रीमती लोनीबाला 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जुगान्तर दल से सम्बद्ध रहीं। विवेकानन्द की शिष्या सिस्टर निवेदिता ने भी भारतीय क्रान्तिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया।

मैडम कामा भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रमुख स्तम्भों में मानी जाती हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वह फ्रांस चली गईं। मैडम कामा ने पेरिस और जेनेवा से अपनी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। उन्होंने *बन्दे मातरम्* पत्र का प्रकाशन किया। श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर तथा लाला हर दयाल से उनका सम्पर्क था। फ्रांस में रहते हुए उन्होंने अपने घर में गुप्त रूप से दुनिया भर के अनेक क्रान्तिकारियों को पनाह दी और उन्हें धन तथा क्रान्ति हेतु आवश्यक सामग्री पहुंचाई। मैडम कामा से मिलने लेनिन भी उनके घर पहुंचे थे। ब्रिटिश

सरकार ने फ्रांसीसी सरकार से अनुरोध किया कि वह उन्हें भारत सरकार को सौंप दे परन्तु यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया। अब ब्रिटिश भारतीय सरकार ने उन्हें भारत से निष्कासित कर दिया। 1905 में मैडम कामा ने वीर सावरकर आदि अपने साथियों के साथ भारत का पहला तिरंगा ध्वज तैयार किया। हरे और पीले झण्डे पर लाल पट्टियां थीं और उस पर 'बन्दे मातरम्' अंकित था और इसमें भारत के आठ प्रान्तों के प्रतीक के रूप में आठ कमल थे। इस झण्डे में चाँद और सूरज हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक थे। 22 अगस्त, 1907 को जर्मनी के स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ़्रेंस' में उन्होंने भाग लिया और ब्रिटिश भारतीय शासन की दमनकारी नीतियों तथा भारतीयों की आकांक्षाओं पर एक ओजस्वी भाषण दिया। वहां उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया। इस ध्वज को फहराते हुए उन्होंने अपने भाषण में कहा –

यह झण्डा स्वतन्त्र भारत का झण्डा है। देखिए ! इसने जन्म ले लिया है। यह स्वतन्त्रता के लिए शहीद हो जाने वाले भारतीयों के खून से पवित्र किया गया है। मैं आप सभी महानुभावों का आवाहन करती हूँ कि आप इस भारतीय स्वतन्त्रता के झण्डे को सलाम करें।

पेरिस के बाद मैडम कामा अमेरिका चली गईं और वहां उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए जन–समर्थन हेतु अनुकूल वातावरण बनाने के प्रयास किया।

'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' में चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह आदि के साथ श्रीमती दुर्गारानी वोहरा ने अपने पति के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लिया था। अपने साथियों में दुर्गा भाभी के रूप में प्रसिद्ध श्रीमती वोहरा ने सॉन्डर्स की हत्या के बाद भगत सिंह को पुलिस की नज़रों से बचकर लाहौर से बाहर निकलने में मदद की थी। बाद में श्रीमती वोहरा समाज सेवा के कार्यक्रम में सम्मिलित हो गईं।

मास्टर सूर्य सेन द्वारा स्थापित 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' ने 18 अप्रैल, 1930 को चिटगांव के शस्त्रागार पर कब्ज़ा कर लिया। कल्पना दत्त 'चिटगांव आर्मरी रेड' में सम्मिलित थीं। 22 अप्रैल, 1930 पकड़े गए क्रान्तिकारियों में कल्पना दत्त शामिल नहीं थीं। मास्टर सूर्यसेन के साथ और उनकी गिरफ्तारी के बाद भी वह क्रान्तिकारी गतिविधियों में व्यस्त रहीं। मई, 1933 में उन्हें गिरफ्तार किया गया और फिर उन्हें आजन्म कारावास दिया गया। 1939 तक वह जेल में रहीं। जेल से रिहा होकर वह साम्यवादी दल में सम्मिलित हो गईं।

कल्पना दत्त

दिसम्बर 1931 में शान्ति घोष तथा सुनीति चौधरी नामक दो युवतियों ने कोमिला के जिलादण्डाधिकारी को गोली मार कर उसकी हत्या कर दी। फ़रवरी, 1932 में बीना दास नामक नवयुवती ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में उपाधि वितरण के समय बंगाल के गवर्नर की हत्या कर दी। सितम्बर, 1932 में प्रीति

लता वाडेकर ने चटगांव में पहाड़तली रेलवे इन्सटीट्यूट पर हमला बोल दिया किन्तु वह इसमें स्वयं गम्भीर रूप से घायल हो गई। पकड़े जाने से पहले उसने आत्महत्या कर ली।

आजाद हिंद फौज की 600 महिलाओं की सैनिक टुकड़ी 'रानी झांसी रेजिमेंट' की कमाण्डर कैप्टन डॉक्टर लक्ष्मी स्वामीनाथन ने सुभाष चन्द्र बोस के आदेश पर मुक्ति अभियान में घायल हुए अपने साथियों की सेवा–सुश्रूसा का दायित्व सम्भाला था। आईएनए के अधिकारियों पर जब दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया जा रहा था तब वो वहां मौजूद थीं। अपने साथी सहगल, ढिल्लों तथा शाहनवाज़ की रिहाई पर उनका स्वागत करने के लिए भी वो मौजूद थीं।

3. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका पर चर्चा करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.3.3 श्रीमती एनीबीसेन्ट और उनका होमरूल आन्दोलन

थियोसोफ़िकल सोसायटी से सम्बद्ध श्रीमती एनीबीसेन्ट ने 1914 में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और वह इसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्य बनीं। वह आयरलैण्ड के होमरूल मूवमेन्ट से बहुत प्रभावित थीं। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने भारत में 3 सितम्बर, 1916 को अद्यार में होमरूल लीग की स्थापना की। इस आन्दोलन में स्वशासन अर्थात् होमरूल की स्थापना को लक्ष्य रखा गया और इसके साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को भी महत्व दिया गया। होमरूल का लक्ष्य ग्राम पंचायतों, जिला परिषदों, प्रांतीय विधान सभाओं

और केन्द्रीय विधान सभा के स्तर तक स्वशासन स्थापित करना था। भारत की संवैधानिक स्थिति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य स्वशासित उपनिवेशों जैसे ऑस्ट्रेलिया, कैनाडा आदि के समकक्ष बनाना और इन्हीं स्वशासित उपनिवेशों की भांति भारत के प्रतिनिधियों को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में बड़ी संख्या में प्रवेश दिलाना भी होमरूल का लक्ष्य था। देश में इसकी कुल 200 शाखाएं थीं और 1917 तक इसके सदस्यों की संख्या 27000 तक पहुंच गई थी। इसके सदस्यों में मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, तेज बहादुर सप्रू, सी0 वाई0 चिन्तामणि, मुहम्मद अली जिन्ना, हसन इमाम, सुब्रमनिय अय्यर आदि सम्मिलित थे। श्रीमती बीसेन्ट को पहली बार मध्यवर्गीय महिलाओं को राजनीतिक आन्दोलनों में सम्मिलित करने का श्रेय दिया जाता है। उनके आवाहन पर इलाहाबाद में नेहरू परिवार की अनेक महिलाएं इस आन्दोलन में शामिल हुई थीं।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के सम्पादन में इलाहाबाद से प्रकाशित *स्त्री दर्पण* के जनवरी, 1916 के अंक में सम्पादकीय लेख – *एकमात्र सुधार और कल्पवृक्ष स्वराज्य है* में होमरूल आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता के विषय में लिखा गया था –

इतनी संख्या में भारत के भविष्य के निर्णय में भाग लेते देख आनंद की लहरें हृदय तट से भिड़कर खेलने लगीं। अन्तःकरण ने कूक मारी कि जिस दिन हमारी भारतीय बहिनों में एनीबीसेन्ट दिखाई देंगी उस दिन स्वराज्य के लिए प्रार्थना की ज़रूरत न रहेगी।

1916 के होमरूल आन्दोलन ने देशव्यापी राजनीतिक चेतना जागृत की और यह सरकार पर राजनीतिक सुधार के लिए दबाव डालने में काफ़ी हद तक सफल रहा। अगस्त, 1917 की मॉन्टेग्यू की घोषणा के बाद श्रीमती बीसेन्ट अगले कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष बनाई गईं। 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रांतीय स्तर पर आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार स्थापित कर दी गई।

4. श्रीमती एनीबीसेन्ट और उनका होमरूल आन्दोलन पर टिप्पणी कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में रानी लक्ष्मीबाई की भूमिका।

(ख) मैडम कामा का राष्ट्रध्वज।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) चिटगांव आर्मरी रेड में शामिल होने के आरोप में किस महिला को आजन्म कारावास दिया गया था?

(ii) श्रीमती एनी बीसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना कब की थी?

3.4 भारत की स्वतन्त्रता हेतु शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

3.4.1 गांधीजी से पूर्व स्वतन्त्रता आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

1890 के कांग्रेस अधिवेशन में स्वर्ण कुमारी घोषाल तथा कादम्बरी गांगुली सम्मिलित हुई थीं। सम्मेलन में महिलाओं के भाग लेने पर काफ़ी टीका–टिप्पणी हुई थी। मशहूर उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी का यह प्रसिद्ध शेर उस काल के आम भारतीय की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है –

दो उसे शौहरो–अतफ़ाल के ख़ातिर तालीम ।
क़ौम के वास्ते तालीम न दो औरत को ।।

(स्त्री को अपने पति और अपने बच्चों के लिए अर्थात कुशल गृह–संचालन हेतु शिक्षित करो। राष्ट्र–निर्माण या जाति के उत्थान जैसे भारी–भरकम लक्ष्य लेकर उसे शिक्षित मत करो।)

कस्तूरबा गांधी

स्वदेशी आंदोलन के दौरान स्त्रियों ने बहिष्कार अभियान में उत्साहपूर्वक भाग लिया था। सन् 1909 में इलाहाबाद से हिन्दी की प्रतिष्ठित महिलोपयोगी पत्रिका *स्त्री दर्पण* का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था । इसकी सम्पादिका श्रीमती रामेश्वरी नेहरू महिलाओं में राजनीतिक चेतना के प्रसार व स्वदेशी की भावना जाग्रत करने के लिए सतत प्रयत्नशील थीं। गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पादन में कानपुर से प्रकाशित *प्रताप* के 12 मई, 1919 के अंक में श्रीमती लज्जावती देवी का लेख – *स्वदेशी आंदोलन* प्रकाशित हुआ था । इस लेख में श्रीमती लज्जादेवी ने यह दिखलाया था कि अपनी शारीरिक दुर्बलता के बावजूद स्त्रियां स्वराज्य और स्वदेशी के लक्ष्य प्राप्ति में किस प्रकार अपना योगदान दे सकती हैं –

स्वदेशी की प्रतिज्ञा एक कठिन साधना है, तपस्या है, त्याग है। ऐसे समय में स्वदेशी के लिए देश के नवयुवकों के नेतृत्व का काम वही आत्माएं कर सकती हैं जो त्याग के लिए तत्पर और दृढ़ प्रतिज्ञ हों। इतिहास इस बात का साक्षी है कि शारीरिक दुर्बलता तथा समय के प्रभाव से कई न्यूनताएं होने पर भी स्त्रियों में सर्वदा ये दो गुण प्रधान रहे हैं। भारतीय गृहणियां त्याग की जीती–जागती प्रतिमाएं होती हैं। प्रतिज्ञा में दृढ़ रहना उनकी नस–नस में कूट–कूट कर भरा हुआ होता है।

कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के साथ स्वदेशी उत्पादों की प्रदर्शिनी लगाई जाती थी जहां कि स्त्रियों द्वारा निर्मित वस्तुओं का एक अलग मण्डप होता था।

3.4.2 गांधीजी के आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका

आगरा से प्रकाशित *सैनिक* के 1 दिसम्बर, 1933 के अंक में कुँवर रानी गुणवन्ती महाराज सिंह का लेख – *हमारी जाग्रति* प्रकाशित हुआ था। इस लेख में उन्होंने गांधीजी के राजनीतिक आंदोलन, विशेषकर स्वदेशी आंदोलन की सफलता का मुख्य श्रेय भारतीय महिलाओं को दिया था –

महात्मा गांधी का राजनैतिक आंदोलन कभी इतना सफल न होता, यदि भारतीय महिलाओं ने उसमें भाग न लिया होता। स्वदेशी आंदोलन की सफलता बहुत करके इसलिए सम्भव हो सकी कि भारतीय महिलाएं देश की सहायता के लिए कोमल विदेशी कपड़ों का व्यवहार छोड़ने को तैयार हो गईं।

गांधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में सत्यागह आन्दोलन में महिलाओं को शामिल किया था। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने उनके हर आन्दोलन में उनका पूर्ण निष्ठा के साथ सहयोग किया था। स्वदेश लौटने पर भी कस्तूरबां उनके हर आन्दोलन में उनके साथ रहीं। 1917 में चम्पारन में नील के किसानों को उनके न्यायसंगत अधिकार दिलाए जाने हेतु आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। कैरा गुजरात में कर न देने का अभियान और 1939 में राजकोट सत्याग्रह में भी उन्होंने भाग लिया। देश के अधिकांश स्वतन्त्रता सेनानी उनको अपनी माँ मानते थे। 1943 में उनके देहावसान पर सुभाष चन्द्र बोस ने विदेश से लिखे गांधीजी को लिखे पत्र में अपने सर पर से अपनी माँ का साया उठ जाने पर दुख प्रकट किया था।

गांधीजी ने अपने बहिष्कार और स्वदेशी अभियान में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था। उनकी दृष्टि में इन आंदोलनों को सफल बनाने के लिए जिस त्याग, बलिदान और अनुशासन की आवश्यकता थी वह भारतीय स्त्रियों की प्रकृति में जन्मजात था। वे घर–घर में स्वदेशी की भावना का प्रसार–प्रचार कर सकती थीं। चरखे और तकली को वे आत्म–उत्थान और राष्ट्र–उत्थान का साधन बना सकतीं थीं। स्वराज्य का संदेश वे अपने घर–परिवार के सभी सदस्यों तक पहुँचा सकती थीं। आर्थिक स्वदेशी के अंतर्गत वे विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा दे सकती थीं और उनके प्रयासों से भारत में सास्कृतिक स्वदेशी का पुनरुत्थान हो सकता था। वे स्वदेशी शिक्षा–पद्धति को अपना कर अपने घर–परिवार के सदस्यों में पाश्चात्य शिक्षा–पद्धति की भौतिकवादी प्रवृत्ति के अंधानुकरण को रोक सकती थीं और अपने धर्म, संस्कृति व अपने संस्कारों को अक्षुण्ण रखने में अपना योगदान दे सकती थीं।

देशबन्धु चितरंजनदास की पत्नी श्रीमती बासन्ती देवी असहयोग आन्दोलन के समय खादी बेचते हुए गिरफ़्तार होने वाली पहली महिला थीं। अपने पति चितरंजनदास के कारावास

के बाद उन्होंने निर्भीकतापूर्वक काज़ी नज़रुल इस्लाम की विद्रोह की भावना से परिपूर्ण कविताओं का प्रकाशन करने का साहस दिखाया। अपने पति की मृत्यु के बाद उन्होंने राजनीतिक जीवन से सन्यास ले लिया और समाज सेवा हेतु 'चितरंजन सेवा सदन' की स्थापना की जिसने कि पूर्वी बंगाल में हरिजन कल्याण में सराहनीय कार्य किया। लाला लाजपतराय की मृत्यु पर आयोजित शोकसभा में उन्होंने इतने बड़े अन्याय पर शान्त बैठने वाले भारतीय नौजवानों को अपनी चूड़ियां भेंट करने के लिए कहा। कुछ ही समय बाद चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह और उनके साथियों ने सॉन्डर्स को मारकर लालाजी की मृत्यु का बदला ले लिया।

सरोजिनी नायडू

कांग्रेस की सबसे महत्वपूर्ण महिला नेत्री, प्रसिद्ध वक्ता एवं कवियित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू गांधी जी की निकट सहयोगी थीं। उन्होंने रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकांण्ड का विरोध किया तथा खिलाफ़त आन्दोलन व असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। 5 अप्रैल, 1930 को नमक सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिए साबरमती आश्रम से डांडी पहुंचने पर उन्होंने गांधीजी का स्वागत किया। मई, 1930 में धरसाना सॉल्ट वर्क्स में 2000 आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करते समय उन्हें गिरफ्तार किया गया। सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष भी रहीं। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता मिलने तक हर आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभाई।

मिठूबेन पेटिट ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया और वो डांडी यात्रा में गांधीजी के साथ रहीं। उन्होंने गुजरात में आदिवासियों तथा समाज के पिछड़े समुदायों के उत्थान के लिए मरोली में 'कस्तूरबा वनातशाला' की स्थापना की। अपने आश्रम में उन्होंने निर्धन वर्ग के बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके पाठ्यक्रम में सूत कातना, कपास की धुनाई, बुनाई, चर्म–शिल्प, सिलाई, डेरी उत्पादन आदि का प्रशिक्षण सम्मिलित किया। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान उन्होंने एक मनो–चिकित्सालय की भी स्थापना की थी।

गांधीजी तथा देश के अन्य प्रमुख नेता भारतीय महिलाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक कार्यक्रम में योगदान की अपेक्षा रखते थे। मद्यनिषेध, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण ग्रामोत्थान और स्वयं नारी–उत्थान के कार्यक्रम को सफल बनाने में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा सकती थीं और इनके लिए किसी राजनीतिक आन्दोलन के सहारे की भी आवश्यकता नहीं थी।

राष्ट्रवादी कवि गयाप्रसाद शुक्ल सनेही उर्दू में त्रिशूल उपनाम से रचनाएं लिखते थे । हिन्दी पत्र *स्वराज्य* के 18 जुलाई, 1921 के अंक में उनकी एक क़ौमी ग़ज़ल प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने भारतीय महिलाओं को अपने परम्परागत आभूषण प्रेम का परित्याग कर स्वदेशी व खादी को अपनाने के लिए प्रेरित किया था –

निहायत बेहया हैं अब भी जो ज़ेवर पहिनते हैं।
जिन्हें है मुल्क का कुछ दर्द, वो खद्दर पहनते हैं।।

सुभाष चन्द्र बोस की सहयोगिनी लतिका घोष ने 1928 में 'महिला राष्ट्रीय संघ' की स्थापना की थी, इस संघ में छात्राओं को शामिल किया गया। उर्मिला देवी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 'देश सेविका संघ' और 'नारी सत्याग्रह समिति' जैसे राष्ट्रवादी महिला संघों की स्थापना की और विदेशी सामानों, शराब के दुकानों पर धरने दिए तथा जुलूसों का नेतृत्व कर पुलिस की लाठियों के प्रहार सहे। गांधीजी की दो विदेशी मानस पुत्रियों मीरा बेन (मैडलीन स्लेड) तथा सरला बेन (कैथरीन मेरी हीलमैन) ने भी उनके खादी विकास कार्यक्रम में अपना योगदान दिया। मीरा बेन ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया तथा दूसरी गोलमेज़ सभा में वह गांधीजी के साथ लन्दन गईं। सरला बेन ने राजनीतिक बन्दियों के परिवारों की देखरेख करने में अपना समय बिताया।

कमला देवी चट्टोपाध्याय 1923 में लन्दन से भारत आईं। वह गांधीजी के सेवा दल के नारी जत्थे की संचालिका बनीं। 1927 में स्थापित ऑल इण्डिया वीमेन्स कॉन्फ्रेन्स की वह पहली संगठन सचिव बनीं। 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस द्वारा प्रथम स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में उन्होंने तिरंगा फहराया। नमक सत्याग्रह में अवन्तिकाबाई गोखले के साथ उन्होंने बम्बई में नमक सत्याग्रह की कमान सम्भाली। मैजिस्ट्रेट को नमक बेचने का प्रयास के प्रयास में उन्हें बन्दी बनाया गया जिसके अपराध में उन्हें एक साल की जेल हुई। 1936 में वह कांग्रेस सोशलिस्ट दल की अध्यक्ष बनीं। कमलादेवी चट्टोपाध्याय स्त्री अधिकार के लिए सतत प्रयत्नशील रहीं।

नीली सेनगुप्ता एक आंग्ल महिला थीं। उनका विवाह जतीन्द्रमोहन सेनगुप्ता से हुआ था। 1921 में उन्होंने अपने पति के साथ असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। उन्होंने घर–घर जाकर खादी की बिक्री की। आसाम–बंगाल रेलवे हड़ताल में भाग लेने के कारण उन्हें बन्दी बनाया गया और सज़ा सुनाई गई। 1931 में सविनय अवज्ञा के दौरान उन्हें कानून तोड़कर भाषण देने के कारण 4 महीने का कारावास दिया गया। 1931 में कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व ही घोषित अध्यक्ष मदनमोहन मालवीय की गिरफ्तारी के बाद नीली सेनगुप्ता को कांग्रेस अध्यक्ष बनाया गया। श्रीमती एनीबीसेन्ट के बाद वह यूरोपीय मूल की दूसरी महिला कांग्रेस अध्यक्ष थीं। नीली सेनगुप्ता 1933 तथा 1936 में कलकत्ता कारपोरेशन की एल्डरमैन रहीं। 1940 व 1946 में वह कांग्रेस की टिकट पर बंगाल विधानसभा की सदस्य भी रहीं।

सन् 1931 की गर्मियों में गांधीजी ने नैनीताल यात्रा की थी जहाँ कि उनकी भेंट वहाँ रह रही काशीपुर की महारानी विमला देवी से हुई। असहयोग आन्दोलन के दौरान उनका व उनके पति का खादी के प्रति लगाव हो गया था। गांधीजी के पत्र *हिन्दी नवजीवन* के

4 जून, 1931 के अंक में *रानी विमला देवी* शीर्षक टिप्पणी में उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा गया था –

रानी विमलादेवी ने नैनीताल की अनेक बहनों को इकट्ठा करके विदेशी वस्त्र बहिष्कार का कार्य किया, चर्खे के वर्ग शुरू किए और एक सेविका मण्डल कायम किया। उनके पास आज सेविका की तरह काम करने वाली 55 स्थानीय स्त्रियां हैं। आज रानी अपने चर्खावर्ग में इधर से उधर घूमती हुई अपने मोटे सूत की अनेक चीज़े गूंथती हैं, और उन्हें बेचकर जो आमदनी होती है, उसे चर्खा वर्ग में जमा कराती हैं।

राजकुमारी अमृतकौर कपूरथला राजपरिवार से सम्बद्ध थीं। 1919 में वह गांधीजी में मिलीं। वह आल इण्यिा वीमन्स कॉन्फ्रेस की संस्थापकों में से एक थीं। अमृत कौर लम्बे समय तक गांधीजी की सचिव रहीं। उन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया। वह सार्वजनिक मताधिकार के लिए आन्दोलन रत रहीं।

नेहरू परिवार की अनेक महिलाओं ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया। मोती लाल नेहरू की पत्नी श्रीमती स्वरूप रानी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बीमारी की हालत में भी पुलिस की लाठियां खाईं। जवाहर लाल नेहरू ने आत्मकथा में इस प्रकरण का उल्लेख किया है। जवाहर लाल नेहरू की पत्नी कमला नेहरू ने संयुक्त प्रान्त में कर की अदायगी न करने वाले आन्दोलन का नेतृत्व किया। मोती लाल नेहरू की पुत्री विजय लक्ष्मी ने और जवाहर लाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा ने भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया। इन्दिरा ने बाल्यावस्था में वानर सेना के अन्तर्गत राजनीतिक बन्दियों के सन्देश उनके परिवारों तक पहुंचाने तथा इन परिवारों तक सहायता पहुंचाने का दायित्व सम्भाला। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान वह जेल भी गईं।

1932 में मणिपुर की अल्पायु रानी गैडिनलियु ने नागा आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ दिया। उसे बन्दी बनाया गया और उसे आजन्म कारावास दिया गया। देश की स्वतन्त्रता के बाद ही उसे रिहा किया गया।

अरुणा आसफ़ अली

अरुणा आसफ़ अली ने नमक सत्याग्रह से अपना राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ किया। वह कांग्रेस समाजवादी दल की सक्रिय सदस्य रहीं। 8 अगस्त, 1942 को गवालिया टैंक मैदान में भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा की गई। अगले दिन से यह आन्दोलन प्रारम्भ होने वाला था परन्तु 8 अगस्त की रात को ही कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को बन्दी बना लिया गया। 9 अगस्त, 1942 को उसी गवालिया टैंक मैदान में अरुणा आसफ़ अली ने उषा मेहता के साथ तिरंगा फहराया और पड़े जाने से पहले ही भूमिगत हो गईं। उन्होंने और उषा मेहता ने भूमिगत कांग्रेस रेडियो का संचालन किया और देश की जनता तक तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया। यह रेडियो स्टेशन 3 महीने तक चला। उषा मेहता ने 1942 में पुलिस द्वारा

पकड़े जाने के बाद अदालत में अपना कोई बचाव नहीं किया। सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण उन्हें 4 वर्ष का कारावास दिया गया।

मृदुला साराभाई 10 वर्ष की आयु से वानर सेना की सदस्य रहीं। इस दल का कार्य सत्याग्रहियों तक सन्देश पहुंचाने का था। 1927 में उन्होंने यूथ कॉन्फ्रेन्स के आयोजन में सहयोग दिया। वह नमक सत्याग्रह में कांग्रेस सेवादल में सम्मिलित हुईं। 1934 में वह ऑल इण्डिया कांग्रेस कमटी की सदस्य रहीं। 1946 में गांधीजी के साथ वह साम्प्रदायिक दंगों को शान्त करने के लिए नोआखाली गईं।

दुर्गाबाई देशमुख, एस0 अम्बुजम्मल, मुथु लक्ष्मी रेड्डी, सुशीला नैयर आदि ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक पहलू पर विशेषकर नारी–उत्थान कार्यक्रम पर ध्यान दिया। सुचेता कृपलानी 1946 में कस्तूरबा गांधी स्मारक निधि की संगठन सचिव नियुक्त हुईं। सुचेता कृपलानी गांधीजी के साथ साम्प्रदायिक दंगों को शान्त करने के उद्देश्य से नोआखाली गईं। वह संविधान सभा की सदस्य बनीं। 15 अगस्त, 1947 को सविंधान सभा में राष्ट्रगान के गायन का गौरव सुचेता कृपलानी को जाता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में भारतीय महिलाओं की गाथा प्रायः उन शहरी मध्य वर्ग की पढ़ी–लिखी जागरूक महिलाओं की संघर्ष यात्रा की जानकारी देती है जिनके परिवार के पुरुष भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में सम्मिलित थे। प्रायः अपने परिवार के पुरुषों की छाया बनकर ही उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया था। दादा भाई नौरोजी की पौत्रियां, गोशी बेन नौरोजी कैप्टिन तथा पेरिन कैप्टिन, गांधीजी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गांधी, देशबन्धु चितरन्जन दास की पत्नी बासन्ती देवी, नेहरू परिवार की महिलाएं, जतीन्द्र मोहन सेनगुप्ता की पत्नी नीली सेनगुप्ता, आसफ़ अली की पत्नी अरुणा आसफ़ अली आदि किसी न किसी रूप में स्वतन्त्रता सेनानियों से सम्बद्ध थीं किन्तु क्रान्तिकारी महिलाओं को ऐसी कोई राजनीतिक विरासत नहीं मिली थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन महिलाओं के योगदान की चर्चा नहीं की जाती है जिन्होंने कस्बे–कस्बे, गांव–गांव स्वदेशी, स्वराज और स्वतन्त्रता की अलख जगाई थी और या तो अपने परिवार के पुरुषों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया था या उनके स्वतन्त्रता सेनानी बनने पर अपना पूर्ण सहयोग दिया था। मैक्सिम गोर्की की *मदर* की भांति उन्होंने बिना नाम कमाए देश के लिए बड़ी कुर्बानी दी थी।

5. गांधीजी के आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका पर लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) सरोजिनी नायडू का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान।

(ख) नेहरू परिवार की महिलाओं की स्वतन्त्रता आन्दोलन में भूमिका।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) श्रीमती एनीबीसेन्ट के बाद यूरोपीय मूल की कांग्रेस की दूसरी महिला अध्यक्ष का क्या नाम था?

(ii) 9 अगस्त, 1942 को गवालिया टैंक मैदान में तिरंगा फहराने वाली महिलाओं के नाम बताइए।

3.5 सार संक्षेप

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने नाना साहब और तात्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेज़ी शासन को भारत में जड़ से खत्म करने के उद्‌देश्य से विद्रोह का नेतृत्व किया। नवाब वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल 1857 के आन्दोलन की एक प्रमुख सेनानी थीं। मैडम कामा ने 1907 में जर्मनी के स्टुटगार्ड में आयोजित 'इंटरनेशनल सोशलिस्ट कॉफ्रेंस' में उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के प्रतीक के रूप में राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को फहराया। मास्टर सूर्य के नेतृत्व में 'चिटगांव आर्मरी रेड' में कल्पना दत्त सम्मिलित थीं। आजाद हिंद फौज की महिला सैनिक टुकड़ी 'रानी झांसी रेजिमेंट' की कमाण्डर कैप्टन डॉक्टर लक्ष्मी स्वामीनाथन थीं।

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने 1916 में होमरूल आन्दोलन में स्वशासन अर्थात् होमरूल की स्थापना को लक्ष्य रखा। गांधीजी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने उनके हर आन्दोलन में उनका सहयोग किया था। गांधीजी ने अपने बहिष्कार और स्वदेशी अभियान में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था। प्रसिद्ध वक्ता एवं कवियित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू गांधी जी की निकट सहयोगी थीं। सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष भी रहीं। मिठूबेन

पेटिट राष्ट्रीय आन्दोलन तथा समाज सेवा के कार्यों से सम्बद्ध रहीं। सुभाष चन्द्र बोस की सहयोगिनी लतिका घोष ने 1928 में 'महिला राष्ट्रीय संघ' की स्थापना की। उर्मिला देवी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 'देश सेविका संघ' और 'नारी सत्याग्रह समिति' जैसे महिला संघों की स्थापना की। मीरा बेन तथा सरला बेन ने गांधीजी के खादी विकास कार्यक्रम में अपना योगदान दिया। नमक सत्याग्रह में अवन्तिकाबाई गोखले के साथ उन्होंने बम्बई में नमक सत्याग्रह की कमान सम्भाली। आंग्ल मूल की नीली सेनगुप्ता 1931 में कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। राजकुमारी अमृतकौर लम्बे समय तक गांधीजी की सचिव रहीं। उन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया। नेहरू परिवार की अनेक महिलाओं ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया।

1932 में मणिपुर की अल्पायु रानी गैडिनलियु ने नागा आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन से जोड़ दिया। 9 अगस्त, 1942 को उसी गवालिया टैंक मैदान में अरुणा आसफ़ अली ने उषा मेहता के साथ तिरंगा फहराया और पड़े जाने से पहले ही भूमिगत हो गईं। मृदुला साराभाई 1946 में गांधीजी के साथ वह साम्प्रदायिक दंगों को शान्त करने के लिए नोआखाली गईं। सुचेता कृपलानी 1946 में कस्तूरबा गांधी स्मारक निधि की संगठन सचिव नियुक्त हुईं। 15 अगस्त, 1947 को सविंधान सभा में राष्ट्रगान के गायन का गौरव सुचेता कृपलानी को जाता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

स्वतन्त्रता अविनाशीः कभी न मिटने वाली स्वतन्त्रता।

बुन्देले हरबोलेः बुन्देलखण्ड में वीर गाथा गा–गा कर भिक्षा मांगने वाले।

अन्तःकरण ने कूक मारीः ह्रदय से आवाज़ निकली।

शौहरो अतफ़ालः पति और परिवार

क़ौमः देश और जाति

बेहयाः निर्लज्ज, बेशर्म

मानस पुत्रियोः मानी हुई बेटियों

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

बोस, ए0 सी0 – *इण्डियन रिवोल्यूशनरीज़ एब्रॉड 1905–22 इन दि बैकग्राउण्ड ऑफ इण्टरनेशनल डवलपमेन्ट्स*, पटना, 1971

बसु, अपर्णा, रे, भारती – *ए हिस्ट्री ऑफ ऑल इण्डिया वीमेन्स कॉन्फ्रेन्स 1927–1990*, नई दिल्ली, 1990

बेग, तारा अली – *वीमेन ऑफ इण्डिया,* नई दिल्ली, 1958

देसाई, नीरा – *वोमैन इन मॉडर्न इण्डिया,* बम्बई, 1957

गम्भीरानन्द, स्वामी – *ग्रेट वीमन ऑफ इण्डिया,* अल्मोड़ा, 1953

अली, अरुणा – *दि रिसर्जेन्स इण्डियन वीमेन,* लन्दन, 1991

रे, भारती (सम्पादक) – *एसेज़ ऑन इण्डियन वीमेन,* दिल्ली, 1995

3.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 3.3.1 1857 के विद्रोह में महिलाओं की भूमिका।

(ख) देखिए 3.3.2 भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) कल्पना दत्त को।

(ii) 3 सितम्बर, 1916 को।

1. (क) देखिए 3.4.2 गांधीजी के आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका।

(ख) देखिए 3.4.2 गांधीजी के आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) श्रीमती नीली सेनगुप्ता।

(ii) अरुणा आसफ़ अली तथा उषा मेहता।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. श्रीमती एनीबीसेन्ट के होमरूल आन्दोलन की उपलब्धियों का आकलन कीजिए।
2. असहयोग आन्दोलन में महिलाओं के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्रीय आन्दोलन में श्रीमती कस्तूरबा गांधी के योगदान का आकलन कीजिए।
4. राष्ट्रीय आन्दोलन में श्रीमती अरुणा आसफ़ अली के योगदान का आकलन कीजिए।
5. स्वदेशी आन्दोलन के विकास में महिलाओं की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

ब्लॉक चार

इकाई – 1 : राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेस (समाचार पत्रों की भूमिका)

इकाई – 2 : भारत में संवैधानिक विकास (1861, 1909, 1919 तथा 1935 के अधिनियम)

इकाई – 3 : भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव

ब्लॉक परिचयः

1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। 1857 के विद्रोह में *सादिकुल अख़बार,देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन* तथा *सुल्तानुल अख़बार* और *पयामें आज़ादी* ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। *हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, अमृत बाज़ार पत्रिका, कवि वचन सुधा, श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका, मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी, मराठा, हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन , बैंगाली* आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक तथा राजनीतिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से *इण्डियन ओपिनियन* का, श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लन्दन से *इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट* का और लाला हर दयाल ने सैन फ्रांसिसको से *ग़दर* का प्रकाशन किया था। बंगला भाषा के *आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट,* हिन्दी के *भारत मित्र* , मराठी के *केसरी,* अंग्रेज़ी के *डॉन* आदि पत्रों ने बंगाल विभाजन के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने *जुगान्तर* का और अरबिन्दो घोष ने *बन्देमातरम्* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। गांधीजी ने *यंग इण्डिया, नवजीवन, हिन्दी नवजीवन, हरिजन सेवक, हरिजन, हरिजन बन्धु* आदि पत्रों का प्रकाशन किया। अंग्रेज़ी में मार्क्सवादी पत्र *न्यू स्पार्क* तथा मराठी पत्र *क्रान्ति* पत्र का प्रकाशन हुआ। और समाजवादियों ने समाजवादी पत्र *कांग्रेस सोशलिस्ट* का प्रकाशन किया।

1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभागीय प्रणाली का, अर्थात् कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ किया गया। 1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में चुनाव की व्यवस्था लागू की गई और मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। पृथक प्रतिनिधित्व से हिंदू–मुस्लिम सम्बंधों में तनाव बढ़ा और इसने द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त की भावना को बढ़ावा दिया। 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा मताधिकार का विस्तार किया गया। केन्द्र सरकार में पहली बार द्वि–सदनीय व्यवस्था स्थापित की गई। प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था नितान्त दोषपूर्ण थी। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में केन्द्र में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत द्वैध शासन स्थापित किया गया और प्रान्तों में प्रान्तीय स्वायत्ता स्थापित की गई। भारतीय शासकों द्वारा संघीय व्यवस्था अस्वीकार करने के कारण इसे लागू नहीं किया गया।प्रान्तीय स्वायत्तता इस एक्ट की प्रमुख विशेषता थी।

अंग्रेज़ों के सम्पर्क में आने के बाद भारतीयों को अपनी धार्मिक कुरीतियों, धार्मिक विकृतियों तथा धार्मिक अनाचार के आलोचनात्मक विश्लेषण करने की प्रेरणा मिली। हर बात को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखने की प्रवृत्ति ने किसी भी धार्मिक परम्परा व अनुष्ठान को आँख मूंदकर स्वीकार करने अथवा उनका पालन करने पर गतिरोधक का काम किया। भारत को बेंथम के अनुयायियों ने उनके सिद्धान्तों को परखने के लिए एक प्रयोगशाला के रूप में प्रयुक्त किया और भारत की धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए धार्मिक–सामाजिक चेतना तथा धर्मनिर्पेक्ष शिक्षा का विकास किया। लॉर्ड विलियम बेंटिंग के शासनकाल में सती प्रथा का उन्मूलन किया गया। लॉर्ड डलहौज़ी के शासन काल में 1856 में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दी गई। ब्रिटिश शासन में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। जात–पांत के बन्धनों में शिथिलता आई।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार–प्रसार से भारत में सामाजिक, वैचारिक, आर्थिक तथा

राजनीतिक चेतना का अभूतपूर्व विकास हुआ। मैटकॉफ़ जैसे उदार प्रशासक ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को भारत में स्थापित किया जिसके फलस्वरूप भारत में प्रेस ने देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय साहित्यकारों पर पाश्चात्य प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। गद्य के विकास के साथ निबन्ध, कहानी, उपन्यास और इतिहास जैसी विधाओं का विकास हुआ। स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत, नृत्य सभी पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। भारतीयों ने पाश्चात्य वेशभूषा, खान–पान, प्रसाधन आदि को अपना लिया।

अंग्रेज़ों ने भारत को एकसूत्र में बांधा। समस्त साम्राज्य में एक सी प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, डाक–तार सेवा, एक सी शिक्षा प्रणाली, मुद्रा प्रणाली, एक संगठित सेना, रेलवे के रूप में पूरे देश को जोड़ने वाली यातायात व्यवस्था, पूरे देश में सड़कों का जाल, राज भाषा और समस्त राष्ट्र के सम्भ्रान्त वर्ग की सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का उपहार अंग्रेज़ी शासन की देन थी। अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना का आधुनिकीकरण किया।

भारत की राजनीतिक एकता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द को नष्ट करने के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई हर नीति में विघटनकारी तत्वों को बढ़ावा दिया गया। अंग्रेज़ों ने समृद्ध भारत को दरिद्र बना दिया। ब्रिटिश आर्थिक शोषण, देशी उद्योगों का पतन, उनकी जगह लेने में आधुनिक उद्योगों की विफलता, करों का भारी बोझ और भारत का धन ब्रिटेन को निरन्तर भेजा जाना, कृषि–विकास की उपेक्षा आदि ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था को बिलकुल पिछड़ा हुआ बना दिया। ब्रिटिश शासन की यह विडम्बना थी कि उसने जिन उदार एवं प्रगतिशील विचारों से भारतीयों को परिचित कराया था, उन्हीं पर आधारित भारतीयों की राजनीतिक एवं संवैधानिक मांगों को कुचलने में उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। अंग्रेज़ी शासन का राजनीतिक प्रभाव राजनीतिक दमन तक सीमित रहा।

इकाई एक : राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेस (समाचार पत्रों की भूमिका)

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 पूर्व गांधीयुगीन पत्रकारिता में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.1 वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट से पूर्व की पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना

1.3.2 1878 के बाद भारतीय पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.3 बंगाल का विभाजन और भारतीय पत्रकारिता

1.3.4 1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट

1.4 गांधीयुगीन पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना का विकास

1.4.1 भारतीय पत्रकारिता में खिलाफ़त एवं असहयोग आन्दोलन का प्रतिबिम्बन

1.4.2 पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक भारतीय पत्रकारिता का विकास

1.4.3 द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय पत्रकारिता की विकास यात्रा

1.5 सार संक्षेप

1.6पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में पत्रकारिता की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि भारतीय पुनर्जागरण, नवजागरण तथा राजनीतिक चेतना के अग्रणी नेताओं ने अपने विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए पत्रकारिता का भरपूर उपयोग किया था। आधुनिक प्रेस के विकास के साथ पत्र जन–साधारण तक अपनी बात पहुंचाने के सबसे सहज और सुलभ साधन बन गए थे। भारतीय राजनीतिक चेतना और पत्रकारिता का अन्तः सम्बन्ध राजा राममोहन राय के युग से ही स्थापित हो गया था। इस इकाई में 1857 के विद्रोह में उर्दू अखबारों की भूमिका, राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में पत्रों के योगदान, क्रान्ति का सन्देश जनता तक पहुंचाने में पत्रों की महत्ता का मूल्यांाकन किया जाएगा। इस इकाई में गांधीयुगीन पत्रकारिता का गांधीजी के आन्दोलनों के अध्ययन स्रोत के रूप में उपयोग भी किया जाएगा और सरकार द्वारा प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाए जाने के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान प्रमुख पत्रकारों के कार्यों का आकलन भी किया जाएगा।

1.2इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न चरणों में भारतीय प्रेस के योगदान की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई में भारत की विभिन्न भाषाओं के प्रमुख राष्ट्रवादी पत्रों से आपको परिचित कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- पूर्व गांधीयुगीन पत्रकारिता में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना के विकास के विषय में।
- स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य तथा स्वतन्त्रता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आन्दोलनों में गांधीयुगीन पत्रकारिता के योगदान के विषय में।
- भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व की पत्रकारिता में क्रान्तिकारी, समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा के विकास के विषय में।
- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अध्ययन स्रोत के रूप में पत्रकारिता की महत्ता के विषय में।

1.3 पूर्व गांधीयुगीन पत्रकारिता में आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.1 वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट से पूर्व की पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना

1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय की *सम्बाद कौमुदी* तथा अक्षय कुमार दत्त की *तत्व बोधिनी पत्रिका*, लोकहितवादी के पत्र *हितवादी* में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र *बैंगाल हरकारा* के

1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए 1830 की फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी।

राजा राममोहन राय

1857 के विद्रोह में दिल्ली के *सादिकुल अख़बार* और मौलाना मोहम्मद बाकर के *देहली उर्दू अख़बार*, कलकत्ते से प्रकाशित *दूरबीन* तथा *सुल्तानुल अख़बार* ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन–चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। *दूरबीन* तथा *सुल्तान–उल–अखबार* को बहादुर शाह का फ़रमान (जिसमें उसने अंग्रेज़ों को खदेड़ने की बात कही थी) छापने पर मुकदमा चलाकर दण्डित किया गया। बरेली से प्रकाशित *अम्दतुल अखबार* ने विद्रोह के दौरान अपना नाम बदल कर फ़तेहुल अखबार रख दिया था और खान बहादुर का समर्थन किया था। इस पत्र को भी दण्डित किया गया। बादशाह बहादुर शाह के पौत्र बेदार बख्त के संचालन में प्रकाशित *पयामें आज़ादी* को विद्रोह का सिरमौर पत्र कहा जा सकता है । इस पत्र में अज़ीमुल्ला खां का कौमी तराना प्रकाशित हुआ था –

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है क़ौम का, जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानी से, रौशन है जग सारा।
कितना क़दीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है ज़रखेज़ जिसे, गंग–जमन की धारा।
आज शहीदों ने है तुमको, अहले–वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की ज़न्जीरें, बरसाओ अंगारा ।
हिन्दु–मुसल्मां, सिक्ख हमारा, भाई प्यारा–प्यारा,
यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा ।।

इस पत्र से सम्बद्ध हर व्यक्ति को सज़ा–ए–मौत मिली और जिस घर में भी इस पत्र की प्रति मिली उस घर के सभी वयस्क पुरुषों को फांसी दे दी गई। 13 जून, 1857 को लॉर्ड केनिंग का दमनकारी एक्ट पारित हुआ जिसके अन्तर्गत देशी भाषाओं के समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए।

विद्रोह के एक दशक बाद से भारतीय भाषाओं के पत्रों पर लगाए गए प्रतिबन्धों को शिथिल किए जाने के बाद अंग्रेज़ी, बंगला, मराठी, हिन्दी, उर्दू, तमिल आदि सभी भाषाओं में प्रकाशित पत्रों में सरकार की आर्थिक नीतियों की कटु आलोचना की जाने लगी तथा देशवासियों को अपनी आर्थिक दुर्दशा के निवारण के लिए आत्मनिर्भर होने का सन्देश दिया गया। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय पत्रकारों में से अनेक स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी नेता थे इसलिए

हमको स्वतन्त्रता से पूर्व की भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण का विस्तृत, जीवन्त एवं प्रामाणिक चित्रण उपलब्ध होता है। गिरीश चन्द्र घोष का पत्र *हिन्दू पैट्रिएट,* सम्पादक हरीशचन्द्र मुकर्जी, 1861 में दीन बन्धु मित्र का नाटक *नील दर्पण* प्रकाशित किया। बाद में इस पत्र पर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नियन्त्रण हो गया। इस पत्र ने सरकार की ज़्यादतियों की कटु आलोचना की और भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने की मांग की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का एक अन्य पत्र *सोमप्रकाश* भी एक राष्ट्रवादी पत्र था।

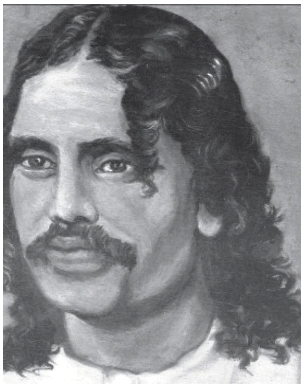
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इस पत्र ने किसानो को उनके अधिकार दिलाने के लिए अभियान छेड़ा था। मोती लाल घोष के पत्र *अमृत बाज़ार पत्रिका* का प्रकाशन पहले जेसोर से प्रारम्भ हुआ। सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करने के कारण इसके मालिकों पर मुकदमा चला। 1871 से इसका प्रकाशन कलकत्ते से किया जाने लगा। 1867 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्र *कवि वचन सुधा* का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तन–मन–धन से स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता पर ज़ोर देते थे क्योंकि जब तक देशवासी दृढ़–निश्चय कर स्वदेशी व्रत धारण नहीं करते तब तक भारतीय उद्योग के पुनरुत्थान की कोई सम्भावना नहीं थी। *कवि वचन सुधा* के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की *कविवचन सुधा* में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अध्यक्षता में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में बनारस वासियों द्वारा अंगीकार किया गया एक प्रतिज्ञा–पत्र प्रकाशित हुआ था–

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान और नित्य सत्य–परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा पहिले मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे।

अपने एक अन्य पत्र *श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका* के जून, 1874 के अंक मे भारतेन्दु ने अपने लेख *भरत खण्ड की स्मृति* में भारतीयों को यह सलाह दी थी कि वह विकसित देशों से तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर अपने देश में नई तकनीकों का प्रयोग कर देश के उत्पादन को बढ़ाएं –

भरतखण्ड निवासी इस समय अखण्ड निद्रा में निमग्न हो रहे हैं। देखो पीटर दि ग्रेट, महाराजा रूस ने दूसरी विलायतों में कलों का काम सीखकर अपने देश में प्रचलित किया। हाल में ईरान के बादशाह भी इसी आशय से इंग्लैण्ड गए थे। परंतु आश्चर्य है कि हमारे

बांधव इस विषय में कुछ उपाय नहीं करते। इंग्लिश्तान की वृद्धि का मुख्य कारण ये ही है कि वहां के निवासी दूसरे की निकाली हुई बात के सिद्ध करने में बहुत परिश्रम करते हैं।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक *मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन* में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। एम0 जी0 रानाडे के मराठी पत्र *ज्ञान प्रकाश* तथा *इन्दु प्रकाश* दोनों ही पत्रों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया जाता था।

1. **वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट से पूर्व की पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना टिप्पणी कीजिए–**

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
.

1.3.2 1878 के बाद भारतीय पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना का विकास

भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में सरकार की शोषक एवं दमनकारी नीतियों की कटु आलोचना पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन ने 1878 में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट लागू किया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के पत्र *सोमप्रकाश* पर वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट के अन्तर्गत प्रतिबन्ध लगाया गया था। *अमृत बाज़ार* ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट के प्रकोप से बचने के लिए अपना प्रकाशन बंगला भाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी में प्रारम्भ कर दिया। लॉर्ड रिपन के उदारवादी शासनकाल में दमनकारी वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद्द कर दिया गया। सैयद अहमद के एंग्लो मोहम्मडन ओरिएन्टल कॉलेज को सरकारी अनुदान व उनके पत्र *अलीगढ़ इन्सटीट्यूट गज़ट* को सरकारी विज्ञापन दिए गए। अंग्रेज़ों ने उन्हें मुसलमानों के सबसे बड़े प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जब कि मुस्लिम समाज में उनकी लोकप्रियता

कम और विरोध ज्यादा था। लोकमान्य तिलक ने पूना से अपने मराठी भाषा के पत्र *केसरी* का प्रकाशन 1 जनवरी, 1881 से प्रारम्भ किया। ईमानदार स्वदेशी की व्याख्या करते हुए लोकमान्य ने इस पत्र में लिखा था –

वास्तव में स्वदेशी एक विस्तृत विषय है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक और आर्थिक, वो सभी मुद्दे आते हैं जिनके आधार पर कोई देश विकसित और सभ्य देशों की श्रेणी में आता है। यदि कोई व्यक्ति इमानदारी के साथ स्वदेशी है तो वह हर क्षेत्र में स्वदेशी के चलन के लिए प्रयास करेगा अन्यथा वह झूठा और ढोंगी स्वदेशी है।

लोकमान्य तिलक ने अंग्रेज़ी में आगरकर तथा चिपलूणकर के साथ मिलकर *मराठा* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। तिलक तथा आगरकर पर ब्रिटिश सरकार तथा कोल्हापुर के दीवान के विरुद्ध सामग्री प्रकाशित करने पर मुकदमा चला। लोकमान्य तिलक के पत्र *मराठा* के 25 मई, 1884 के अंक में भारत से कच्चे माल के निर्यात तथा इंग्लैण्ड से तैयार माल भारत आना भारतीय कारीगरों तथा उद्योग के लिए हानिकारक बताया गया था। अनाज का निर्यात भी भारत के लिए दो प्रकार से हानिकारक सिद्ध हुआ। लोकमान्य ने *मराठा* में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का इसी लिए विरोध किया। *हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन* आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। भारतीय पत्रों में अब राजनीतिक दलों के गठन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। अपने पत्र *बैंगाली* के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा –

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नही तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन में पहला प्रस्ताव *हिन्दू* के सम्पादक जी0 एस0 अय्यर द्वारा रखा गया था जिसमें उन्होंने मांग की थी कि भारतीय प्रशासन के कामकाज पर जांच के लिए एक कमेटी की नियुक्ति की जाए।

बालकृष्ण भट्ट के सम्पादन में इलाहाबाद से प्रकाशित *हिन्दी प्रदीप* के मार्च, 1888 के अंक में *फ़्री ट्रेड* शीर्षक लेख में मुक्त व्यापार के नाम पर अंग्रेज़ों की आयात कर को समाप्त करने की नीति की कटु आलोचना की गई थी। इस मुक्त व्यापारकी बुनियाद तब से रखी गई जब से भारतीयों ने आधुनिक कपड़ा उद्योग का विकास किया। तब मैनचेस्टर के कपड़ा मिल मालिकों में खलबली मच गई और उनके दबाव में ब्रिटिश भारतीय सरकार ने आयातित वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर फ्री ट्रेड के नाम पर बन्द करा दिया ताकि

भारतीय बाज़ार में ब्रिटेन में बना कपड़ा भारतीय मिलों में बने कपड़े की तुलना में सस्ता या उसी भाव का पड़े। इटावा से प्रकाशित *नजमुल अख़बार* के 8 जून, 1888 के अंक में 1887 में बम्बई प्रेसीडेंसी में यूरोप से आयातित माल का ब्यौरा दिया गया था जिसके अनुसार 3400000 रुपयों की माचिस तथा 3713025 रुपयों के छाते और 1342526 रूपयों के जूते खरीदे गए थे। इस पत्र में यह टिप्पणी की गई थी कि शिक्षित भारतीय अपनी देशभक्ति पर गर्व करते हैं परन्तु वही यूरोपीय माल के सबसे बड़े खरीदार हैं। इस पत्र में इस तथ्य को स्पष्ट किया कि इस वर्ग के लोगों को वास्तव में अपने देश का हमदर्द बनने के लिए स्वदेशी उत्पादों को ही प्रयुक्त करने की कसम खानी पड़ेगी। गांधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में *इण्डियन ओपिनियन* का प्रकाशन किया था जिसमें दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार की रंगभेद तथा जातिभेद की नीतियों के विरुद्ध एक संगठित आन्दोलन की हिमायत की गई थी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में इलाहाबाद से प्रकाशित *सरस्वती* के जून, 1904 के अंक में जमशेदजी टाटा के इस्पात के कारखाने से प्रेरणा लेकर भारतीय धनवानों, विशेषकर राजे–महाराजों से यह अपेक्षा की गई थी कि वो स्वदेशी व्रत को सफल बनाने मे अपनी पूंजी का निवेश करेंगे।

2.1878 के बाद भारतीय पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना पर टिप्पणी लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.3.3 बंगाल का विभाजन और भारतीय पत्रकारिता

बंगला भाषा के *आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट*, हिन्दी के *भारत मित्र* , मराठी के *केसरी* आदि पत्रों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। इन पत्रों ने यह स्पष्ट किया कि सभ्यता, भाषा, आचार–विचार, भू–राजस्व प्रशासन आदि की दृष्टि से पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल दोनों एक दूसरे के करीब हैं। उन्होंने यह टिप्पणी की कि प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने के लिए यदि विभाजन करना ही है तो बंगाल से भिन्न बिहार व उड़ीसा को उससे अलग कर दिया जाए। कलकत्ते से प्रकाशित हिन्दी पत्र *भारत मित्र* के सम्पादक बालमुकुन्द गुप्त ने *शिव शम्भु के चिठ्ठे* में लॉर्ड कर्ज़न को 17 वीं शताब्दी के अत्याचारी बंगाल के सूबेदार शायिस्ता खां की पदवी दे डाली। कृष्णकुमार मित्र के साप्ताहिक पत्र *संजीवनी* के 13 जुलाई, 1905 के अंक में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। सतीशचन्द्र मुकर्जी के पत्र *डॉन* ने राष्ट्रीय शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला। बिपिन चन्द्र पाल ने अगस्त, 1906 में *बन्दे मातरम* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके सम्पादक अरबिन्दो घोष थे। बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में बंगला साप्ताहिक पत्र *जुगान्तर* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। *सांध्य* भी एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी पत्र था। *जुगान्तर* के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया था।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लन्दन से *इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट* का प्रकाशन किया। इस पत्र में इण्डिया हाउस की गतिविधियों के समाचार प्रकाशित होते थे। 1909 में इस पत्र के दो प्रकाशकों पर मुकदमा चला। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने बाद में पेरिस से और फिर जेनेवा से इसका प्रकाशन जारी रखा। यूरोप की धरती से ही लाला हर दयाल, मैडम कामा तथा सरदार सिंह रावजी राना ने *वन्दे मातरम्* तथा *तलवार* का प्रकाशन किया।

पंजाब में 1907 में *पंजाबी* पत्र में अंग्रेज़ों के लिए जातीय अपशब्दों का प्रयोग करने के कारण उसके सम्पादक पर मुकदमा चलाया गया जब कि *सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट* जैसे अंग्रेज़ी पत्र भारतीयों को खुलेआम गालियां दिया करते थे। तमिल में जी0 सुब्रहमन्य का पत्र *स्वदेशमित्रम्*, श्री निवास शास्त्री का *सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया* तथा फ़ीरोज़शाह मेहता का *बॉम्बे क्रॉनिकिल*, मदनमोहन मालवीय के *दैनिक हिन्दोस्तान* एवं *अभ्युदय* सभी राष्ट्रवादी पत्र थे। लाला लाजपत राय ने लाहौर से *पंजाबी, वन्दे मातरम्* तथा *पीपुल* का प्रकाशन किया।

2. बंगाल के विभाजन के समय भारतीय पत्रकारिता पर लेख लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.3.4 1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट

1910 के प्रेस एक्ट के अन्तर्गत जिलाधीश को अपने जिले में प्रकाशित होने वाले पत्रों से 500 से 5000 की ज़मानत मांगने का अधिकार दिया गया और किसी भी प्रकार की भड़काने वाली सामग्री प्रकाशित करने पर उस पत्र की ज़मानत ज़ब्त करने का अधिकार भी दिया गया। भारतीय शासकों, न्यायधीशों, प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध सामग्री को सत्ता विरोधी माना गया और शक के आधार पर डाकखाने में कोई भी प्रकाशित अथवा लिखित सामग्री ज़ब्त की जा सकती थी। इस एक्ट के सेक्शन 4 के अन्तर्गत 1000 से 10000 की ज़मानत की व्यवस्था की गई और पत्र की नीतियों से असन्तुष्ट जिलाधिकारी को उसकी ज़मानत ज़ब्त करने का अधिकार दिया गया। इस एक्ट के अन्तर्गत 200 प्रिन्टिग प्रेस और 130 पत्र बन्द किए गए और 400 प्रकाशनों पर जुर्माना किया गया। *अमृत बाज़ार पत्रिका, हिन्दू, ट्रिब्यून, बॉम्बे क्रॉनिकिल, दि पंजाबी, हिन्दुवासी, अल्मोड़ा अखबार* आदि पत्रों पर जुर्माना किया गया अथवा उनकी ज़मानतें जब्त कर ली गईं। होमरूल आन्दोलन की गतिविधियों का सजीव चित्रण एनीबीसेन्ट के पत्र *न्यू इण्डिया* में किया गया। मोती लाल नेहरू इलाहाबाद से प्रकाशित पत्र *लीडर* के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के चेयरमैन थे तथा इसके सम्पादक सी0 वाई0 चिन्तामणि थे।

लाला हर दयाल के पत्र *ग़दर* की 10 लाख प्रतियां हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेज़ी में छापी गईं। विदेशी कपड़ों के पार्सलों के बीच में छिपा कर इस पत्र की प्रतियां भारत भेजी जाती थीं। इस पत्र के पहले अंक में ही भारत में क्रान्ति कर अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया गया था। लाला हर दयाल को अमेरिका से भारत निष्कासित किए जाने के बाद उनके सहयोगी पण्डित रामचन्द्र ने अंग्रेज़ी में *हिन्दुस्तान ग़दर* का प्रकाशन किया। उनको जेल हुई जहां कि उनके एक विरोधी ने उनकी हत्या कर दी।

बद्रीदत्त पाण्डे

सरदार अजीत सिंह ने लाहौर से *भारतमाता* पत्र निकाला। माखनलाल चतुर्वेदी का पत्र प्रभा एक निर्भीक राष्ट्रदी पत्र था। बद्रीदत्त पाण्डे के सम्पादकत्व (1913–18) में *अल्मोड़ा अखबार* जैसा सरकारी नीतियों का समर्थक पत्र राष्ट्रवादी विचारधारा का पोषक बन गया। सरकार की आलोचना करने के कारण इस पत्र पर सरकार की कोप दृष्टि पड़ी और 1918

में इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। 1918 में बद्रीदत्त पाण्डे ने अल्मोड़ा से ही राष्ट्रवादी पत्र *शक्ति* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। गांधी युग से पूर्व ही भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्रवादी स्वर मुखर हो गया था और सरकार के अनेक दमनकारी कानून भी भारतीय पत्रों तथा पत्रकारों की सरकार विरोधी नीतियों पर नियन्त्रण स्थापित करने में असफल सिद्ध हुए थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पत्र *कवि वचन सुधा*।

(ख) 1910 का प्रेस एक्ट

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट किस गवर्नर जनरल के काल में पारित हुआ था?

(ii) दक्षिण अफ्रीका से *इण्डियन ओपिनियन* का प्रकाशन किसने किया था?

1.4 गांधीयुगीन पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना का विकास

1.4.1 भारतीय पत्रकारिता में खिलाफ़त एवं असहयोग आन्दोलन का प्रतिबिम्बन

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीयों राजनीतिक सुधार देने के स्थान पर रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का उपहार दिया था। प्रेस पर नियन्त्रण का शिकन्जा और कस दिया गया था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड को समाचार पत्रो में प्रकाशित न किए जाने के सरकारी आदेश पर कटाक्ष करते हुए कहा था –

हम आह भी भरते हैं तो, हो जाते हैं बदनाम।
वो क़त्ल भी कर दे तो, चर्चा नहीं होता।।

ए0 जी0 होर्नीमैन के सम्पादन में *बॉम्बे क्रॉनिकिल* ने जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का विषद वर्णन किया था। इसके सम्वादाता गोवर्धनदास को सैनिक अदालत ने तीन वर्ष की सज़ा दी थी और इसके सम्पादक होर्नीमैन को गिरफ्तार कर लन्दन वापस भेज दिया गया था।

ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता मौलाना मुहम्मद अली ने अपने अंग्रेज़ी पत्र *कामरेड* तथा उर्दू पत्र *हमदर्द* में खलीफ़ा की सत्ता को पुनर्स्थापित करने की मांग को रखा था और समय की आवश्यकता को समझते हुए हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रचार किया था। गांधीजी ने *यंग इण्डिया, नवजीवन, हिन्दी नवजीवन, हरिजन सेवक, हरिजन, हरिजन बन्धु* आदि पत्रों का प्रकाशन किया था। इन पत्रों को हम गांधीयुगीन राजनीतिक आन्दोलन के अध्ययन के लिए प्रामाणिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। सी0 आर0 दास तथा सुभाष चन्द्र बोस ने *फॉरवर्ड* तथा *एडवांस* का प्रकाशन कराया। राष्ट्रवादी कवि गयाप्रसाद शुक्ल सनेही उर्दू में त्रिशूल उपनाम से रचनाएं लिखते थे। हिन्दी पत्र *स्वराज्य* के 18 जुलाई, 1921 के अंक में उनकी एक क़ौमी ग़ज़ल प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने भारतीय महिलाओं को अपने

परम्परागत आभूषण प्रेम का परित्याग कर स्वदेशी व खादी को अपनाने के लिए प्रेरित किया था –

निहायत बेहया हैं अब भी जो ज़ेवर पहिनते हैं।
जिन्हें है मुल्क का कुछ दर्द, वो खद्दर पहनते हैं।।

बिहार में सच्चिदानन्द सिन्हा ने *सर्चलाइट* का प्रकाशन किया था। देवब्रत शास्त्री का पत्र *नवशक्ति* एक राष्ट्रवादी पत्र था। बिहार के अन्य प्रमुख पत्र *राष्ट्रवाणी, योगी* तथा *हुंकार* थे।

असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद भी भारतीय समाचार पत्रों में स्वराज प्राप्ति की आकांक्षाओं में कमी नहीं आई। मथुरा से प्रकाशित हिन्दी पत्र *प्रेम* के 12 जनवरी, 1923 के अंक में *कौल रहे मर्दानों का*, शीर्षक कविता प्रकाशित हुई थी। इस कविता में जलियांवाला बाग हत्याकांड और पंजाब में मार्शल लॉ लगाए जाने और निहत्थे असहयोगियों पर लाठी या गोली बरसाने जैसे अमानवीय कृत्य करने वाली गोरी सरकार को हिन्दुस्तान के मर्दों की ओर से यह चुनौती दी गई है कि वह चाहे जैसे भी अत्याचार कर ले पर
हिन्दुस्तानी बिना स्वराज लिए पीछे नहीं हटेंगे –

गणेश शंकर विद्यार्थी

निकल पड़ो अब बनकर सैनिक, भंग करो फ़रमानों का।
बिन स्वराज के नहीं उठेंगे, कौल रहे मर्दानों का।
नर, नारी, बच्चों को गोरे अत्याचारी खूब हनें।
भारत के कोने कोने में, जलियाँवाला बाग बनें ।
चिंता नहीं, बहे लहराता, चहुँदिश खून जवानों का।
बिन स्वराज के नहीं उठेंगे, कौल रहे मर्दानों का ।।

असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद क्रान्तिकारी आन्दोलन एक बार फिर उभरा। बंगाली पत्रिकाएं *आत्मशक्ति, सारथी* तथा *बिजौली* क्रान्तिकारी शहीदों की गाथाएं प्रकाशित कर रही थीं। काज़ी नज़रुल इस्लाम ने *धूमकेतु* साप्ताहिक का प्रकाशन किया जिसमें विद्रोह का संदेश दिया गया। इलाहाबाद से प्रकाशित हिन्दी पत्रिका *चाँद* ने 1928 में काकोरी के अमर शहीदों को श्रद्धांजलि देने के उद्‌देश्य से अपना फांसी विशेषांक प्रकाशित किया था। अब मार्क्सवादी तथा समाजवादी विचारधारा का पोषण करने वाले पत्रों का प्रकाशन भी होने लगा था। अंग्रेज़ी में मार्क्सवादी पत्र *न्यू स्पार्क* तथा मराठी पत्र *क्रान्ति* पत्र का प्रकाशन हुआ। एम0 एन0 राय ने साम्यवादी विचारधारा के पोषक पत्र *इण्डिपेन्डेन्ट इण्डिया* का प्रकाशन किया और समाजवादियों ने समाजवादी पत्र *कांग्रेस सोशलिस्ट* का प्रकाशन किया। बम्बई से प्रकाशित मराठी साप्ताहिक पत्र *क्रान्ति* किसानों तथा मज़दूरों के अधिकारों का पक्षधर

था। पंजाब की मज़दूर एवं किसान पार्टी ने उर्दू में *मेहनतकश* पत्र का प्रकाशन किया।

3. गांधीयुगीन पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना के विकास को बतलाइये––

....

....

....

....

....

....

....

1.4.2 पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक भारतीय पत्रकारिता का विकास

साइमन कमीशन की कूटनीतिक चाल को नकारते हुए कांग्रेस ने 1929 के प्रारम्भ में ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने का निश्चय कर लिया था। मार्च, 1929 में अपने पत्र *नवजीवन* में स्वराज्य प्राप्ति हेतु गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के औचित्य पर दलील देते हुए लिखा था –

मैं भलीभांति जानता हूँ कि सविनय भंग कैसी भयंकर चीज़ है। लेकिन जो आदमी आज़ादी का भूखा हो, वह क्या करे? आज़ादी के लिए तड़पते हुए मनुष्य के लिए, आज़ादी के पीछे पागल बने हुए व्यक्ति के लिए अनेक जोखिमों को अपने सिर लेने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है।

कांग्रेस के 1929 के लाहौर अधिवेशन में होने वाले अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू द्वारा कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज घोषित किया जाना था। इस घोषणा से पूर्व ही इस ऐतिहासिक अधिवेशन की पूर्व संध्या पर कानपुर से प्रकाशित श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के पत्र *प्रताप* के 15 दिसम्बर, 1929 के अंक में श्री हरिदत्त की कविता – *लाहौर कांग्रेस* प्रकाशित हुई थी –

भारत में गुल खिलाएगी लाहौर कांग्रेस,
परतन्त्रता मिटाएगी, लाहौर कांग्रेस।
खुशकिस्मती कि सद्र हुए मोती से जवाहर,
सर ताज अब रखाएगी, लाहौर कांग्रेस ।
साइमन रिपोर्ट का न वहाँ इन्तज़ार हो,
बल अपना आज़माएगी, लाहौर कांग्रेस ।
पूरी स्वतंत्रता लिए बिन, हम न रहेंगे,
ऐलान यह सुनाएगी, लाहौर कांग्रेस ।।

12 मार्च को गांधीजी ने साबरमती आश्रम से नमक सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिए

डांडी यात्रा प्रारम्भ की। 16 मार्च, 1930 को बाबूराव विष्णु पराड़कर के सम्पादन में बनारस से प्रकाशित *आज* ने अपने सम्पादकीय में इस यात्रा का इन शब्दों में स्वागत किया –

रणभेरी बज चुकी है। सेनापति ने आगे बढ़ने का हुक्म दे दिया है। गत 12 मार्च के दिन महात्मा गांधी साम्राज्यवाद के किले को तोड़ने के लिए अपने 78 जवानों को लेकर चल पड़े। न केवल इस मुल्क के, वरन सम्पूर्ण संसार के करोड़ों मनुष्यों की आँखें इस वक्त हमारे उस अनोखे सेनापति की तरफ़ लगी हुई हैं। सेना का यह मार्ग–भ्रमण सम्पूर्ण भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए है।

गांधीजी ने अस्पृश्यता निवारण के कार्यक्रम को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया था। अल्मोड़ा से प्रकाशित बद्रीदत्त पाण्डे के पत्र *शक्ति* में दलितोद्धार के लिए अनुकूल वातावरण बनाने का निरन्तर प्रयास किया जाता था। इसके 16 अप्रैल, 1932 के अंक में नटखट का लेख – *दादा सनातन धर्म* प्रकाशित हुआ था जिसमें सनातन धर्म के विकृत और अमानवीय रूप को देख कर उसे 'सड़ातन धर्म' की संज्ञा दी गई थी –

चौके की दीवारें ही जिनकी भौगोलिक सीमा है। रसोई के बर्तनों में ही जिस धर्म की आत्मा निवास करती हो। जो अपने सात करोड़ कमज़ोर और दुर्बल भाइयों को अछूत समझता है पर अन्य शक्तियों के जूते रगड़ता है। ऐसे धर्म को हम सनातन तो नहीं सड़ातन अवश्य कहते हैं।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही थी। गांधीजी के आदेश पर विरोध कर रहे जुलूसों की अंग्रिम पंक्ति महिलाओं की ही बनाई जाती थी। मादक पदार्थों और विपदेशी वस्तुओं की दुकानों पर धरने भी मुख्यतया महिलाएं ही देती थीं और स्वदेशी कार्यक्रम को सफल बनाने का मुख्य श्रेय भी उन्हीं को जाता था। कृष्णदत्त पालीवाल के आगरा से प्रकाशित पत्र *सैनिक* के 1 दिसम्बर, 1933 के अंक में कुँवर रानी गुणवन्ती महाराज सिंह का लेख – *हमारी जाग्रति* प्रकाशित हुआ था। इस लेख में उन्होंने गांधीजी के राजनीतिक आंदोलन, विशेषकर स्वदेशी आंदोलन की सफलता का मुख्य श्रेय भारतीय महिलाओं को दिया था –

महात्मा गांधी का राजनैतिक आंदोलन कभी इतना सफल न होता, यदि भारतीय महिलाओं ने उसमें भाग न लिया होता। स्वदेशी आंदोलन की सफलता बहुत करके इसलिए सम्भव हो सकी कि भारतीय महिलाएं देश की सहायता के लिए कोमल विदेशी कपड़ों का व्यवहार छोड़ने को तैयार हो गईं।

माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र *कर्मयोगी* तथा प्रेमचंद के पत्र *जागरण* में नियमित रूप से स्वदेश–प्रचार होता था। *जागरण* के प्रत्येक अंक में प्रायः इस बात की सूचना दी जाती थी कि कौन सी स्वदेशी वस्तु कहां प्राप्त हो सकती थी। *जागरण* के 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर, 1933 के अंक में मोटे–मोटे अक्षरों में एक नारा छपा था जिसमें कि खादी को अपनाकर देश के दारिद्र को दूर करने का उपाय सुझाया गया था –

खद्दर पहनो और देश के दुःख–दारिद्र्य को दूर भगाओ।

जागरण के 4 सितम्बर, 1933 के अंक में भी एक नारा छपा था और साथ में स्वदेशी वस्तु की विस्तार से व्याख्या भी की गई थी –

देश के सुदिन लाने के लिए स्वदेशी का व्यहार प्रथम कर्तव्य है।

लेकिन स्वदेशी वस्तु कौन है? – वह, जो स्वदेशी सामग्री से बनी हो, जिसमें स्वदेश की पूंजी लगी हो, जो स्वदेश–वासियों के परिश्रम से तैयार हुई हो और जिसका लाभ भी स्वदेश–वासियों को ही प्राप्त हो।

जवाहर लाल नेहरू की धर्मनिर्पेक्षता की नीति साम्प्रदायिक विचारधारा को देशद्रोह से कम नहीं आंकती थी। *इण्डियन ट्रिब्यून* के 27 नवम्बर, 1933 के अंक में प्रकाशित अपने लेख – *हिन्दू एण्ड मुस्लिम कम्युनलिज़्म* में उन्होंने मुस्लिम साम्पदायिकता के पोषक सर आगा खा, अल्लामा इक़बाल और हिन्दू राष्ट्रवाद के पोषक भाई परमानन्द पर एक साथ प्रहार किया था और उन्हें क्रमशः मुस्लिम तथा हिन्दू समुदाय का सच्चा प्रतिनिधि मानने से इंकार किया था।

4. पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक भारतीय पत्रकारिता के विकास को दर्शाइये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4.3 द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय पत्रकारिता की विकास यात्रा

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश भारतीय सरकार ने प्रेस की स्वतन्त्रता पर पुनः भीषण आघात किया। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवादी प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए गए। सरकार के दमन चक्र के समाचार छापे जाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। परन्तु भारतीय पत्रों ने स्वतन्त्रता अभियान में अपना निर्भीक योगदान देना जारी रखा। शिक्षा के सीमित प्रचार–प्रसार के बावजूद भारतीय पत्रों, विशेषकर भारतीय भाषाओं के पत्रों ने राजनीतिक चेतना के प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई तथा सामाजिक परिष्कार एवं आर्थिक चेतना के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। गांधीजी के पत्रों *हरिजन, यंग*

इण्डिया, हरिजन सेवक आदि में असृप्श्यता निवारण, नारी–उत्थान, ग्राम स्वराज्य, मद्यनिषेध और साम्प्रदायिक सद्भाव को स्वतन्त्रता से पूर्व ही हासिल करने का प्रयास किया गया था। एक पत्रकार के रूप में भी गांधीजी ने सैकड़ों पत्रों और पत्रकारों के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य किया था। जवाहर लाल नेहरू का पत्र *नेशनल हैराल्ड* भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व ही उसे स्वतन्त्र मानता था। इसके मुखपृष्ठ पर अंकित रहता था – *फ्रीडम इज़ इन पेरिल, डिफ़ेन्ड इट विद ऑल योर माइट* (स्वतन्त्रता खतरे में है अपनी पूरी शक्ति के साथ इसकी रक्षा कीजिए)। इस पत्र की धर्मनिर्पेक्षता की नीति भी स्पष्ट थी। धर्म के नाम पर देश और समुदायों को बांटना *नैशनल हैराल्ड* की दृष्टि में देशद्रोह से कम नहीं था। 1946 के पत्रों में सुभाष चन्द्र बोस एक महानायक के रूप में उभरकर आए। गांधीजी के पत्रों तक में सुभाष की स्तुति की जाने लगी। यह प्रतिबद्ध पत्रकारिता का युग था धर्नाजन के लिए कोई देशभक्त पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं जाता था। इन कलम के सिपाहियों ने अपने देशवासियों को स्वतन्त्रता के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया था और ब्रिटिश शासन के लिए निरन्तर कठिनाइयां उत्पन्न की थीं। अपनी निर्भीकता तथा अपनी देशभक्ति के प्रति प्रतिबद्धता के लिए स्वतन्त्रता पूर्व की भारतीय पत्रकारिता निःसन्देह प्रशंसा की पात्र है।

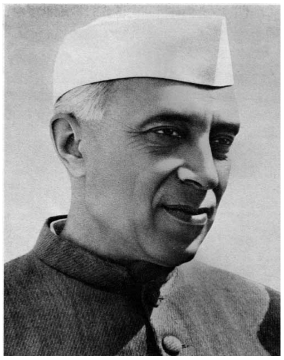

जवाहरलाल नेहरू

5. **द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय पत्रकारिता की विकास यात्रा को बताइये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की घोषणा।

(ख) साम्प्रदायिक सद्भाव के विकास में पत्रकारिता का योगदान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) *शक्ति* का समदक कौन था?

(ii) जवाहर लाल नेहरू ने किस पत्र का प्रकाशन किया था?

1.5 सार संक्षेप

1857 के विद्रोह में दिल्ली के *सादिकुल अख़बार* और *देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन* तथा *सुल्तानुल अख़बार* ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन–चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। *हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, अमृत बाज़ार पत्रिका, कवि वचन सुधा, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी, मराठा, हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, हिन्दी प्रदीप, नजमुल अखबार, भारत जीवन, बैंगाली* आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक तथा राजनीतिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था।

गांधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में *इण्डियन ओपिनियन* का प्रकाशन किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इलाहाबाद से प्रकाशित *सरस्वती* में स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। *आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट, भारत मित्र, केसरी, डॉन* आदि पत्रों ने बंगाल विभाजन के विरुद्ध अभियान छेड़ा। बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने क्रान्किारी पत्र *जुगान्तर* का और अरबिन्दो घोष ने *बन्देमातरम्* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। *सांध्य* भी एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी पत्र था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लन्दन से *इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट* का प्रकाशन किया। लाला हर दयाल, मैडम कामा तथा सरदार सिंह रावजी राना ने *वन्दे मातरम्* तथा *तलवार* का प्रकाशन किया। श्री निवास शास्त्री का *सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया* तथा फ़ीरोज़शाह मेहता का *बॉम्बे क्रॉनिकिल,* मदनमोहन मालवीय के *दैनिक हिन्दोस्तान* एवं *अभ्युदय,* लाला लाजपत राय के *पंजाबी, वन्दे मातरम्* तथा *पीपुल,* श्रीमती एनीबीसेन्ट का *न्यू इण्डिया* आदि राष्ट्रवादी पत्र थे। 1910 के प्रेस एक्ट के अन्तर्गत 200 प्रिन्टिग प्रेस और 130 पत्र बन्द किए गए और 400 प्रकाशनों पर जुर्माना किया गया।

भारत में क्रान्ति कर अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प करने वाले लाला हर दयाल ने *ग़दर* निकाला। 1918 में बद्रीदत्त पाण्डे ने अल्मोड़ा से *शक्ति* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता मौलाना मुहम्मद अली ने अपने अंग्रेज़ी पत्र *कामरेड* तथा उर्दू पत्र *हमदर्द* का प्रकाशन किया। गांधीजी ने *यंग इण्डिया, नवजीवन, हिन्दी नवजीवन, हरिजन सेवक, हरिजन, हरिजन बन्धु* आदि पत्रों का प्रकाशन किया। अंग्रेज़ी में मार्क्सवादी पत्र *न्यू स्पार्क* तथा मराठी पत्र *क्रान्ति* पत्र का प्रकाशन हुआ और समाजवादियों ने *कांग्रेस*

सोशलिस्ट, मेहनतकश आदि पत्रों का प्रकाशन किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश भारतीय सरकार ने प्रेस की स्वतन्त्रता पर पुनः भीषण आघात किया। स्वतन्त्रता पूर्व की पत्रकारिता प्रतिबद्ध पत्रकारिता की एक मिसाल है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

रूहानी: आत्मिक प्रकाश

क़दीम: पुरातन

नईम: दिव्योपहार

ज़रखेज: सिंचित

साहिल: किनारा

अहले वतन: देशवासी

हने: मारें

चहुंदिश: चारों ओर

1.7 सन्दर्भ ग्रंथ

तिवारी, अर्जुन – *स्वतन्त्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता*, वाराण्सी, 1985

ब्रह्मानन्द – *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता*, दिल्ली, 1986

नटराजन, जे0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन जर्नलिज़्म*, नई दिल्ली, 1955

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, कलकत्ता, 1959

1. (क) देखिए 1.3.1 वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट से पूर्व की पत्रकारिता में राजनीतिक चेतना।

(ख) देखिए 1.3.4 1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट।

2. (i) लॉर्ड लिटन के शासनकाल में।

(ii) गांधीजी ने।

1. (क) देखिए 1.4.2 पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक भारतीय पत्रकारिता का विकास।

(ख) देखिए 1.4.2 पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक भारतीय पत्रकारिता

का विकास।

2. (i) बद्रीदत्त पाण्डे।

(ii) *नेशनल हैराल्ड*।

अभ्यास प्रश्न

---

1. 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार करने में *पयामे आज़ादी* पत्र की भूमिका का आकलन कीजिए।
2. भारतीय भाषाओं के पत्रों द्वारा आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भूमिका का आकलन कीजिए।
3. लॉर्ड लिटन ने 1878 में वर्नाक्युलर प्रस एक्ट क्यों लागू किया था?
4. बंगला भाषा के क्रान्तिकारी पत्रों की बंगाल विभाजन के विरोध में भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. एक पत्रकार के रूप में गांधीजी की उपलब्धियों का आकलन कीजिए।

. इकाई दो : भारत में संवैधानिक विकास (1861, 1909, 1919 तथा 1935 के अधिनियम)

2.1 प्रस्तावना

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 भारत में चुनाव प्रणाली का प्रारम्भ

2.3.1 1861 के एक्ट से पूर्व की संवैधानिक स्थिति

2.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान

2.3.3 1861 के एक्ट के गुण

2.3.4 1861 के एक्ट के दोष

2.4 1909 का इण्डियन काउंसिल एक्ट

2.4.1 भारतीयों द्वारा स्वराज्य अर्थात् स्वशासन की मांग

2.4.2 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान

2.4.3 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के गुण

2.4.4 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के दोष

2.5 1919 का गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट

2.5.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान संवैधानिक सुधार हेतु अनुकूल वातावरण का विकास

2.5.2 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

2.5.3 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के गुण

2.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष

2.6 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट

2.6.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट से लेकर 1933 के व्हाइट पेपर के प्रकाशन तक की गतिविधियां

2.6.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

2.6.3 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण

2.6.4 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के दोष

2.7 सार संक्षेप

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ

2.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.11 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हो गया था। पिछली इकाइयों में यह चर्चा हो चुकी है कि 1857 के विद्रोह का दमन करने के बाद अंग्रेज़ों ने यह समझ लिया था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में भारतीयों को किसी भी प्रकार हिस्सेदारी न दिया जाना तथा शासक एवं प्रजा में दूरी बनाए रखना अनुचित था। महारानी विक्टोरिया के 1858 के घोषणा पत्र में भारतीयों तथा ब्रिटिश प्रजा में किसी प्रकार का भेदभाव न करने के आश्वासन की चर्चा भी हो चुकी है। इस इकाई में अंग्रेज़ों द्वारा भारत में संवैधानिक सुधारों की अत्यधिक मन्द गति तथा उनके भारतीयों की आंकाक्षाओं तथा मांगों से बहुत कम होने की विवेचना की जाएगी।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रखर तथा विकसित होने के साथ ब्रिटिश भारतीय सरकार पर संवैधानिक सुधार तथा लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित करने के लिए दबाव निरन्तर बढ़ता चला गया। इन परिस्थितियों में भी सरकार टुकड़े–टुकड़े में ही सुधार परोसती रही। इस इकाई में भारतीयों द्वारा संवैधानिक सुधारों की मांगों को लेकर आन्दोलन करने तथा उनके कारण सरकार को सुधार करने के लिए विवश होने की समीक्षा की जाएगी। भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के विभिन्न चरणों की इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

2.2 इकाई के उद्देश्य

1858 में भारत ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया था। स्वाभाविक रूप से इसके कारण भारत में संवैधानिक परिवर्तन अपेक्षित थे। इस इकाई में आपको ब्रिटिशकालीन भारत में संवैधानिक विकास से अवगत कराया जाएगा। इसको पढ़ने के बाद आप अवगत होंगे:

- भारत में इंग्लैण्ड के समान लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित किए जाने की दिशा में क्रमिक विकास से।
- भारत में सीमित चुनाव प्रणाली के प्रचलन, प्रान्तों में और फिर केन्द में आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना से।
- भारत में संवैधानिक सुधार की धीमी गति और भारतीयों की संवैधानिक सुधार हेतु बढ़ती हुई मांगों के लिए किए गए आन्दोलनों से।

2.3 भारत में चुनाव प्रणाली का प्रारम्भ

2.3.1 1861 के एक्ट से पूर्व की संवैधानिक स्थिति

1765 में बादशाह शाहआलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर अंग्रेज़ों ने भारत में अपने साम्राज्य की नींव डाली थी। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत की सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्थापित किया गया और गवर्नर जनरल व गवर्नरों की कार्यकारिणी का गठन हुआ। अगले साठ वर्षों में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी

का शासन एक ओर सुदृढ़ हुआ, दूसरी ओर उसका विस्तार भी हुआ। 1833 के चार्टर एक्ट में शक्ति का केन्द्रीयकरण करने के उद्देश्य से बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रास की सरकारों से कानून बनाने का अधिकार तक छीन लिया गया और यह दायित्व गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के विधि सदस्य को सौंपा गया। 1853 के चार्टर एक्ट से पूर्व ही भारतीयों द्वारा केद्र तथा प्रान्तों में विधान सभाओं के गठन और उनमें भारतीयों के प्रतिनिधित्व की मांग उठने लगी थी। 1857 के विद्रोह के दमन के बाद यह अनुभव किया गया कि शासक वर्ग और प्रजा के मध्य किसी प्रकार का वैचारिक आदान–प्रदान नहीं है। सैयद अहमद खान ने अपनी पुस्तक *असबाब–ए–बग़ावत–ए–हिन्द* में शासक और प्रजा के बीच की इस दूरी को विद्रोह का एक प्रमुख कारण माना था। अगस्त, 1858 में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया। महारानी विक्टोरिया ने 1858 के अपने घोषणापत्र में भारतीयों को यह आश्वासन दिया कि वो भारतीयों को अपनी अन्य प्रजा के समान ही अधिकार और सुविधाएं देंगी। इस प्रकार भारतीयों को संवैधानिक एवं राजनीतिक सुधारों की आशा बंधने लगी। सर बार्टल फ्रेयर (गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य) जैसे उदार ब्रिटिश अधिकारी सेफ़्टी वॉल्व के रूप में भारतीयों को राजनीतिक एव संवैधानिक सुधार दिए जाने पर ज़ोर दे रहे थे। इन परिस्थितियों में 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट पारित हुआ।

2.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान

1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में इंग्लैण्ड की भांति भारत में संसदीय प्रणाली और प्रतिनिधि सभा के गठन का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इसमें वाइसरॉय की परिषद के सदस्यों की संख्या 4 से बढ़ाकर 5 कर दी गई। इन 5 सदस्यों में से 3 की नियुक्ति भारत सचिव द्वारा और 2 की ब्रिटिश ताज द्वारा की जानी थी (1869 से सभी सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार ब्रिटिश ताज के हाथों में आ गया)। नया सदस्य कानून का विशेषज्ञ रक्खा गया। शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभागीय प्रणाली का, अर्थात् कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ किया गया। विभिन्न सदस्यों को अलग–अलग विभागों के संचालन का दायित्व दिया गया परन्तु महत्वपूर्ण मामलों में समस्त परिषद का निर्णय मान्य होना था।

वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद का विस्तार किया गया। इसमें कानून बनाने के लिए न्यूनतम 6 और अधिकतम 12 अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान रक्खा गया जिनमें कमसे कम 5 गैर सरकारी सदस्य होने थे। गैर सरकारी अतिरिक्त सदस्यों में भारतीयों को भी नियुक्त किया जाना था। इन अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर जनरल को दिया गया और इनका कार्यकाल 2 वर्ष रखा गया।

प्रान्तीय परिषदों में भी अतिरिक्त सदस्यों का प्रावधान रक्खा गया। इनकी न्यूनतम संख्या 4 और अधिकतम 8 रक्खी गई।

2.3.3 1861 के एक्ट के गुण

शक्ति के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाते हुए अनेक अधिकार केन्द्र के नियन्त्रण से हटाकर प्रान्तों को दे दिए गए।

कार्यकारी परिषद में अतिरिक्त सदस्य के रूप में भारतीय सदस्य रक्खे जाने से शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी की शुरूआत हुई।

विभागीय प्रणाली लागू होने से शासन को सुचारु रूप से चलाने में सहायता मिली। इस एक्ट से शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ने गति पकड़ी। लॉर्ड मेयो के शासनकाल में इसमें और गति आई।

इस एक्ट के फलस्वरूप पहली बार भारतीय वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में उसके समक्ष बैठ सके। शासन में भारतीयों को हिस्सेदारी की शुरूआत को लॉर्ड रिपन के शासन काल में और अधिक विस्तार दिया गया। मई, 1882 के 'लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट एक्ट' के अन्तर्गत स्थानीय निकायों – नगर पालिकाओं और जिला परिषदों में स्वायत्त शासन की स्थापना की गई। लॉर्ड डफ़रिन के शासनकाल में दिसम्बर, 1885 में सर बार्टल फ्रेयर तथा ए0 ओ0 ह्यूम के मतानुसार भारतीयों के आक्रोश को विद्रोह में विकसित न होने देने के उद्देश्य से सेफ़्टी वॉल्व के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए भी इस एक्ट ने अनुकूल वातावरण विकसित किया।

2.3.4 1861 के एक्ट के दोष

इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल के विस्तार के बावजूद गवर्नर–जनरल और गवर्नरों की शक्तियां असीमित रहीं।

कार्यकारी परिषद के अतिरिक्त सदस्यों में हैदराबाद के सालारजंग और महाराजा पटियाला जैसे भारतीयों को सम्मिलित तो किया गया परन्तु आमतौर पर वह सरकार के चाटुकार ही होते थे। गैर सरकारी यूरोपियन सदस्यों में अधिकांश व्यापारी होते थे जिनकी कि अभिरुचि मुख्य रूप से अपने व्यापारिक हितों को सुरक्षित रखने में होती थी, आम भारतीयों के हितों की उनको कोई चिन्ता नहीं होती थी।

इस एक्ट से लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की दिशा में पहला प्रयास तो हुआ पर कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। इस एक्ट ने चुनाव की प्रणाली लागू नहीं की। चार्ल्स वुड द्वारा हाउस ऑफ कॉमन्स में यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत में इंग्लैण्ड जैसी पार्लियामेन्ट स्थापित किए जाने की कोई योजना नहीं है।

1.1861 के एक्ट के गुण एवं दोशों पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

.

2.4 1909 का इण्डियन काउंसिल एक्ट

2.4.1 भारतीयों द्वारा स्वराज्य अर्थात् स्वशासन की मांग

1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में भारतीयों को अपेक्षित सुधार नहीं दिए गए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस निरन्तर मांग कर रही थी कि भारत में जन–प्रतिनिधि सभाओं का गठन किया जाए और इसके लिए चुनाव की प्रक्रिया लागू की जाए। परन्तु इस एक्ट को लागू किए जाने से पहले ही भारत सचिव लॉर्ड क्रॉस ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार का भारत में संसदीय प्रणाली लागू करने का कोई इरादा नहीं है। यह अवश्य किया गया कि केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद के अतिरिक्त सदस्यों की न्यूनतम संख्या 10 और अधिकतम 16 कर दी गई और उनके कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि कर दी गई। गवर्नर जनरल को विभिन्न संस्थाओं से अपने प्रतिनिधियों के नाम मंगवाने और उनमें से अतिरिक्त भारतीय सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में सरकारी सदस्यों का बहुमत बनाए रखा गया। अब विधान परिषद में प्रश्न कर सकते थे और पूरक प्रश्न भी कर सकते थे। सदस्य बजट पर बहस भी कर सकते थे किन्तु उस पर वोट नहीं दे सकते थे इसलिए अभी भी नीति निर्धारण में उनकी भूमिका मात्र सलाहकार और आलोचक की थी। स्वाभाविक रूप से भारतीय संवैधानिक सुधारों की इस कछुआ चाल से सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। लोकमान्य तिलक जैसे उग्रवादी नेता स्वराज्य से कम कुछ भी लेने को तैयार नहीं थे। लॉर्ड कर्ज़न के दमनकारी शासन (1899 से 1905) ने भारतीयों के रोष में वृद्धि की। उसने शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को पलट दिया और उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण बढ़ा दिया। उसके बंगाल विभाजन के निर्णय ने भारतीयों के सब्र का बांध तोड़ दिया। 1905 से स्वदेशी आन्दोलन और क्रान्तिकारी आतंकवाद ने सरकार की मुश्किलें बढ़ा दीं। अब स्वराज्य अथवा स्वशासन की मांग ज़ोर पकड़ने लगी।

1905 में लॉर्ड कर्ज़न के बाद लॉर्ड मिन्टो भारत का वाइसराय बनकर आया और इसके कुछ ही समय पश्चात उदारवादी जॉन मॉर्ले ने भारत सचिव का कार्य भार सम्भाला। लॉर्ड मॉर्ले के मस्तिष्क में ब्रिटेन की सरकार और भारत के उदारवादी राजनीतिज्ञों बीच एक गठबन्धन की योजना थी। बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण भारत में व्यापक अशान्ति थी। 1905 के कांग्रेस अधिवेशन में तत्कालीन

अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने एक ओर भारत में स्वशासन की मांग की थी तो दूसरी ओर उन्होंने भारत सचिव की काउंसिल में कम से कम तीन भारतीय सदस्यों की मांग रखी थी। सरकार की फूट डाल कर शासन करने की नीति के फलस्वरूप एक ओर मुस्लिम शिष्ट मण्डल द्वारा मुसलमानों के लिए विशेष शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक सुविधाओं और अधिकारों की मांग को लॉर्ड मिन्टो द्वारा सहानुभूतिपूर्वक सुना गया और कुछ ही समय बाद मुस्लिम लीग की स्थापना हो गई तो दूसरी ओर 1907 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन परिस्थितियों में नए वाइसराय तथा भारत सचिव ने आपस में मिलकर विधान परिषदों में सुधार की एक योजना प्रस्तुत की जिसे 1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट का नाम दिया गया परन्तु इसकी प्रसिद्धि इसके निर्माताओं – मॉर्ले तथा मिन्टो के नाम पर 'मॉर्ले–मिन्टो सुधार' के रूप में ही हुई।

2.4.2 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान

1. 1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में चुनाव की व्यवस्था लागू की गई किन्तु मताधिकार के लिए सम्पत्ति की शर्त रख दी गई जिसके कारण मात्र 3 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हो सका।

2. मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया। मुसलमानों के निर्वाचक मण्डल को मुस्लिम प्रतिनिधियों का चुनाव करना था।

3. काउंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 69 की गई जिसमें से 37 सरकारी और 32 गैर सरकारी होने थे। गैर सरकारी सदस्यों में 5 गवर्नर–जनरल द्वारा नामित और 27 चुने हुए सदस्य होने थे। चुने हुए 27 सदस्यों में 7 प्रान्तों के 7 ज़मींदारों, 5 प्रान्तों के 5 मुसलमान, और 2 चैम्बर ऑफ कॉमर्स के प्रतिनिधि होने थे। केवल 13 स्थान सामान्य वर्ग के लिए थे। इन 13 स्थानों के लिए दोहरी अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अपनाई गई थी। चुने हुए सदस्यों को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निश्ठा की शपथ लेना आवश्यक था। प्रान्तीय विधान परिषदों के 200 गैर सरकारी सदस्य केन्द्रीय विधान परिषद के इन 13 सदस्यों का चुनाव करते थे।

4. प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या 30 से 50 तक रखी गई और इनमें गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया।

5. इस एक्ट में भारत सचिव की कार्यकारिणी परिषद, वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद तथा प्रान्तीय कार्यकारिणी में दो–दो भारतीय सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया।

6.केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की गई। सदस्य अब प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते थे, किसी भी विषय पर बहस कर सकते थे किन्तु उस पर मत नहीं दे सकते थे। वे सदन में प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे किन्तु कानून बनाने का उन्हें अधिकार नहीं था। काउंसिल के क्षेत्र में विस्तार के बाद भी वह मुख्य रूप से सरकार की सलाहकार की भूमिका निभा रही थी। वास्तविक शक्ति उसके पास नहीं थी।

2. 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान लिखिये–

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2.4.3 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के गुण

इस एक्ट में पहली बार चुनाव की प्रक्रिया लागू की गई और केन्द्रीय विधान परिषद एवं प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या में और उनके अधिकारों में काफ़ी वृद्धि की गई। प्रान्तों में तो गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया। केन्द्रीय विधान परिषद के सदस्यों में देश के प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, दिनशा वाचा, मदन मोहन मालवीय, तेज बहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना, नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर, श्री निवास शास्त्री आदि सम्मिलित थे। भारतीयों को संसदीय प्रणाली का आंशिक अनुभव इस एक्ट ने उपलब्ध कराया था। भारत सचिव, वाइसराय तथा गवर्नरों की कार्यकारिणी में दो–दो भारतीय सदस्यों की नियुक्ति भारत के शासन में भारतीयों की बढ़ती हुई हिस्सेदारी की ओर संकेत करती थी।

2.4.4 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के दोष

पृथक प्रतिनिधित्व से हिन्दू–मुस्लिम सम्बंधों में तनाव बढ़ा और इसने द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त की भावना को बढ़ावा दिया। पृथक निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था अन्याय और भेदभाव की नीति पर आधारित थी और समानता की भावना के सर्वथा विरुद्ध थी। इस व्यवस्था से हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य में वृद्धि हुई और साम्प्रदायिकता का ज़हर धीरे–धीरे अन्य समुदायों में भी फैलने लगा था। इस एक्ट के तुरन्त बाद हिन्दू साम्प्रदायिक दलों का गठन भी होने लगा था। मुसलमानों के साथ पक्षपात किया गया। प्रान्तीय परिषदों में जनसंख्या में उनके प्रतिशत की तुलना में उनके लिए अधिक स्थान थे। इस एक्ट में मुस्लिम मतदाताओं के लिए और शेष मतदाताओं के लिए योग्यता की शर्तों में भी भेदभाव किया गया था। मुसलमानों में ज़मींदारों, समृद्ध व्यापारियों, स्नातकों तथा वकीलों, डॉक्टरों आदि को मताधिकार प्रदान किया गया था जबकि अन्य को मताधिकार के लिए नगरपलिका या जिला परिषद का सदस्य

होना आवश्यक था। इस एक्ट से मुसलमान सन्तुष्ट होने के स्थान पर दिनों–दिन और अधिक अधिकारों तथा सुविधाओं की मांग करने लगे।

मुसलमानों की देखा–देखी अन्य समुदाय भी पृथक प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे और धीरे–धीरे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के दायरे में अन्य समुदाय भी आने लगे। 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में इस व्यवस्था के विस्तार की चर्चा की जाएगी।

यह एक्ट उग्रवादियों की आकांक्षाओं पर खरा उतर ही नहीं सकता था। इसका उद्‌देश्य मुसलमानों तथा नरमपंथियों को सन्तुष्ट करना था परन्तु इससे नरमपंथी भी सन्तुष्ट नहीं हुए। दिसम्बर, 1909 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं ने इस एक्ट में मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था किए जाने का कड़ा विरोध किया।

4. 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के गुण एवं दोषों पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान।

(ख) 1909 के के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) 1861 के एक्ट में वाइसराय की कार्यकारिणी में अतिरिक्त सदस्यों की न्यूनतम संख्या क्या थी?

(ii) 1909 के एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कितनी थी?

2.5 1919 का गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट

2.5.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान संवैधानिक सुधार हेतु अनुकूल वातावरण का विकास

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मित्र राज्यों द्वारा यह घोषणा की गई थी कि वो लोकतान्त्रिक

मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग ले रहे हैं। 1916 के होमरूल आन्दोलन में डोमिनियन स्टेटस दिए जाने की मांग की सरकार ने उपेक्षा नहीं की और अगस्त, 1917 में भारत सचिव मॉन्टेग्यू की यह घोषणा हुई –

हिज़ मैजेस्टी की सरकार तथा भारत की सरकार की यह नीति है कि प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को धीरे–धीरे अधिक से अधिक भागीदारी दी जाए और स्वायत्त शासित संस्थाओं का इस प्रकार क्रमिक विकास किया जाए कि ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जाए।

इस घोषणा में भारतीयों की स्वशासन दिए जाने की मांग को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि भारतीयों को स्वशासन **कब, कितना और किस प्रकार** दिया जाएगा। भारतीयों ने प्रथम विश्वयुद्ध में प्राण–प्रण से अपना सहयोग दिया था। स्वाभाविक था कि इस बिना शर्त सहयोग के पुरस्कार के रूप में सरकार भारतीयों को संवैधानिक सुधार दे और भारतीयों को यही पुरस्कार उसने 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में प्रदान किया।

2.5.2 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का वर्गीकरण किया गया। केन्द्र सरकार को प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, भारतीय रियासतों से सम्बन्ध, मुद्रा, सार्वजनिक ऋण, धार्मिक मामले, रेलवे, फ़ौजदारी एवं दीवानी कानून, भारतीय सर्वेक्षण विभाग, पुरातत्व विभाग, जनगणना, संचार और लोक सेवा आयोग का दायित्व दिया गया। प्रान्तों को स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ऊर्जा, भू–राजस्व, जंगलात, सहकारी समिति, जेल, आबकारी और प्रेस पर नियन्त्रण आदि विषय प्रदान किए गए। इस एक्ट में समवर्ती (कॉनकरेन्ट) विषयों की कोई सूची नहीं थी।

इस एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था, इनमें प्रमुख थे – वित्त, कानून एवं शान्ति व्यवस्था, संचार, पुलिस तथा अकाल सहायता। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर तथा उसकी 4 सदस्यीय कार्यकारी परिषद द्वारा संचालित होना था। आमतौर पर इन 4 कार्यकारी परिषद सदस्यों में से 2 भारतीय हुआ करते थे। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। इन हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, स्थानीय स्वशासन आदि सम्मिलित थे। इन हस्तान्तरित विषयों पर भी गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया था। इन सबके ऊपर केन्द्र सरकार थी जो आवश्यक समझ कर प्रान्तीय सरकारों पर इच्छानुसार अपना निर्णय थोप सकती थी। प्रान्तीय स्तर पर हस्तांतरित विषयों के सन्दर्भ में भारत सचिव के नियन्त्रण को कम किया गया।

प्रान्तीय विधान सभाओं तथा परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। बंगाल में 140, बम्बई में 114, मद्रास में 132 तथा संयुक्त प्रान्त में यह संख्या 123 रखी गई। इनमें सदस्यों को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाना था। मताधिकार के लिए सम्पत्ति और वार्षिक आय की शर्त लगा दी गई। इस एक्ट में ब्रिटिश भारत की लगभग 25 करोड़ आबादी में से लगभग 53 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ जो उसकी वयस्क जन संख्या का लगभग 4 प्रतिशत था। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिए सुरक्षित सीटों पर मताधिकार की शर्तें अपेक्षाकृत आसान थीं ।

केन्द्रीय विधान सभा का विस्तार किया गया परन्तु उसमें उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं की गई।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया और अब सिक्खों, एंग्लो–इण्डियनों तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को भी इसके घेरे में लिया गया।

केन्द्रीय विधान सभा में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। केन्द्र सरकार में पहली बार द्वि–सदनीय व्यवस्था अर्थात् विधान सभा तथा काउंसिल ऑफ स्टेट स्थापित की गई। काउंसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों की संख्या 60 रखी गई जिनमें 34 सदस्य निर्वाचित और 26 मनोनीत होने थे। भारतीय शासकों को काउंसिल ऑफ स्टेट में अपने प्रतिनिधि नामांकित करने का अधिकार दिया गया था। काउंसिल ऑफ स्टेट में सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया।

विधानसभा के सदस्यों की संख्या 144 निश्चित की गई जिनमें 104 निर्वाचित तथा शेष सरकारी व गैर सरकारी मनोनीत सदस्य होने थे। निर्वाचित 104 सीटों में 52 सीटें सामान्य वर्ग के लिए, 30 मुसलमानों के लिए, 2 सिखों के लिए, 9 यूरोयिनों के लिए, 7 ज़मींदारों के लिए और 4 भारतीय व्यापारियों के लिए निर्धारित थीं। विधानसभा में सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष रखा गया।

केन्द्र में कोई विधेयक तभी अधिनियम का रूप ले सकता था जब कि वह दोनों सदनों से पारित हो तथा गवर्नर जनरल द्वारा उसे स्वीकार कर लिया जाए।

केन्द्र सरकार में विधान मण्डल के अधिकार बहुत सीमित रखे गए। केन्द्र में विधान मण्डल को गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद को संचालित अथवा नियन्त्रित करने का कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद की सदस्यों की संख्या 6 रखी गई थी जिसे आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद केन्द्रीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी बल्कि गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव के प्रति जवाबदेह थी।

केन्द्र में दोनों विधान मण्डलों में बजट को प्रस्तुत किए जाने की व्यवस्था की गई परन्तु इन सदनों में केवल सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते थे। गवर्नर जनरल को ही इन पर निर्णय लेने का अधिकार था जिसकी कि शक्ति इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री और संयुक्त राज्य

अमेरिका के राष्ट्रपति से भी अधिक थी।

इस एक्ट में लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान रखा गया था।

लन्दन में भारत के हाई कमिश्नर की नियुक्ति का प्रावधान।

इस एक्ट के पारित होने के 10 वर्ष बाद शासन–व्यवस्था की जांच के लिए एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी परन्तु इसके पारित होने के 8 वर्ष बाद ही इस कार्य के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति कर दी गई।

3.1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधानों पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.5.3 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के गुण

इस एक्ट में पहली बार भारतीयों को उत्तरदायी शासन (प्रान्तों में आंशिक रूप से) का अवसर प्रदान किया गया और 1917 की मॉन्टेग्यू की घोषणा को क्रियान्वित कर भारतीयों की दीर्घ काल से चली आ रही स्वशासन की मांग को (आंशिक रूप से) स्वीकार कर लिया गया। इस एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या में काफ़ी वृद्धि की गई और उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई। इंग्लैण्ड में भारतीय हाई कमिश्नर की नियुक्ति से परतन्त्र भारत की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। इस एक्ट से प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ, पहली बार भारतीयों को शासन करने का अवसर मिला और उन्हें इसका उपयोगी अनुभव प्राप्त हुआ।

2.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष

1919 के एक्ट में भारतीयों को उनकी आशाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए गए थे। डोमिनियन स्टेटस, होम रूल अथवा स्वराज्य की मांग से ये सुधार बहुत कम थे। मॉन्टेग्यू की 1917 की घोषणा के बाद भारतीयों ने इससे कहीं अधिक सुधार की अपेक्षा की थी। द्वैध शासन की संकल्पना और सरंचना दोनों ही दोषपूर्ण थीं। बंगाल में 1765 में क्लाइव ने द्वैध शासन स्थापित किया था और तभी इस प्रणाली की दुर्बलताएं स्पष्ट हो गई थीं।

शासकीय कार्य का एक–दूसरे से स्वतन्त्र दो इकाइयों में विभाजन नितान्त अव्यावहारिक था। सुरक्षित और हस्तान्तरित विषयों का विभाजन भी दोषपूर्ण था। इन विषयों को भी एक–दूसरे से पूरी तरह अलग करके दो स्वतन्त्र इकाइयों को नहीं सौंपा जा सकता था। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से आए हुए मन्त्री अपने क्षेत्र की जनता के प्रति जवाबदेह थे इसलिए उनके लिए जनता के हित सर्वोपरि थे जबकि गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और नौकरशाही की निष्ठा ब्रिटिश ताज तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति थी और उनके लिए साम्राज्यवादी हित ही सर्वोपरि थे इसलिए मन्त्रियों का गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा इण्डियन सिविल सर्विस अथवा इण्डियन पुलिस के अधिकारियों से तालमेल बैठ पाना असम्भव था। मन्त्री अपने ही विभाग के उच्च अधिकारियों पर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। अपनी जनता और विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के साथ–साथ मन्त्री गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन भी थे और वही उनको नियुक्त अथवा अपदस्थ करने का अधिकार भी रखता था।

सुरक्षित विषयों का वित्तीय आधार सुदृढ़ था जब कि हस्तान्तरित विषयों को वित्तीय आवंटन में प्रायः उपेक्षा का सामना करना पड़ता था।

प्रान्तीय विधान परिषदों में मतदाताओं की संख्या लगभग 53 लाख थी किन्तु केन्द्रीय विधान परिषद के लिए मतदाताओं की संख्या मात्र 5 लाख थी।

भारत में राजनीतिक दलों को संसदीय प्रणाली का विशेष अनुभव नहीं था और न ही सरकार चलाने के लिए ये दल आपसी तालमेल बिठाने में सक्षम थे। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों के कार्यों और उनकी नीतियों पर साम्प्रदायिकता और स्थानीयता की भावना इतनी हावी रहती थी कि वह आपस में तालमेल बिठाकर जनता को हित को सर्वोपरि रखकर कार्य नहीं कर पाते थे। हस्तान्तरित विषय सुरक्षित विषयों की तुलना में कम महत्वपूर्ण थे। उनका संचालन करने के बाद भी मन्त्रीगण भारत के संवैधानिक विकास में अपना कोई योगदान नहीं दे सकते थे। हसन इमाम की अध्यक्षता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में इस एक्ट को कांग्रेस ने खारिज कर दिया और असहयोग आंदोलन में स्वराज्य प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कांग्रेस का चुनाव के बहिष्कार का निर्णय स्वीकार नहीं किया। उन्होंने 'इण्डियन लिबरल फ़ेडरेशन' का गठन किया और 1920 के चुनाव में भाग लिया और उसमें चुने जाने के बाद वह बंगाल में मन्त्री भी बने। प्रान्तों में द्वैध शासन लगभग डेड़ दशक तक चला। भारतीयों को शासन संचालन का आंशिक दायित्व दिए जाने का यह अव्यावहारिक एवं आधा–अधूरा प्रयोग पूरी तरह से असफल और निष्फल रहा।

4.1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के गुण एवं दोषों पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....
....
....
....
....
....

2.6 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट

2.6.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट से लेकर 1933 के व्हाइट पेपर के प्रकाशन तक की गतिविधियां

प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था जो कि 1919 के एक्ट के बाद 1920 में लागू की गई थी, वह पूर्णतया असफल सिद्ध हुई थी। भारतीयों में असन्तोष एवं आक्रोश बढ़ता जा रहा था और इसकी परिणति समाजवादी, समाम्यवादी एवं क्रान्तिकारी विचारधारा के विकास में परिलक्षित हो रही थी। कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस जैसे युवा पूर्ण स्वराज की मांग कर रहे थे और चन्द्रशेखर आज़ाद व भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी समाजवादी लोकतान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाना चाहते थे। इस अशान्तिपूर्ण वातावरण में सरकार ने स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन 1929 के स्थान पर 1927 में ही ब्रिटिश सांसद जॉन साइमन के नेतृत्व में 7 यूरोपियन सांसदों के दल, साइमन कमीशन के रूप में कर दिया। समस्त श्वेत सांसदों के इस कमीशन का सभी भारतीय राजनीतिक दलों ने विरोध किया और कांग्रस ने 1928 में संवैधानिक सुधार की योजना 'नेहरू रिपोर्ट' के रूप में प्रस्तुत की जिसमें भारत को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने का प्रावधान था। सरकार ने इस रिपोर्ट की अवज्ञा की जिसके जवाब में 1929 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया। 1930 में गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा नमक सत्याग्रह के रूप में पूर्ण स्वराज्य के लिए व्यापक आन्दोलन हुआ जो कि मार्च, 1931 के गांधी–इर्विन समझौते के बाद स्थगित हुआ। अब गांधीजी 1931 की दूसरी गोल मेज़ सभा में भाग लेने के लिए लन्दन गए।

जून, 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बंटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी।

1930, 1931 तथा 1932 की तीन गोल मेज़ सभाओं के बाद मार्च, 1933 में भारत के नए संविधान पर एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया और इसे संयुक्त संसदीय समिति के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। 2 अगस्त, 1935 को एक विधेयक पारित किया गया जिसके

पश्चात 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट अस्तित्व में आया।

2.6.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

संयुक्त संसदीय समिति ने 1933 के व्हाइट पेपर पर विचार विमर्श करने के बाद 22 नवम्बर, 1934 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। 2 अगस्त, 1935 को एक विधेयक पारित किया गया जिसके पश्चात 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट अस्तित्व में आया। इस एक्ट में केन्द्र में संघीय शासन स्थापित किया गया और प्रान्तों में नई शासन प्रणाली के अन्तर्गत भारतीयों को अपनी सरकार चलाने का अवसर दिया गया जिसे प्रान्तीय स्वायत्ता के नाम से जाना जाता है।

इस एक्ट में बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया और अदन को भी ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य से अलग कर उसे पृथक उपनिवेश बना दिया गया।

बम्बई प्रान्त में से सिंध को अलग कर उसे एक पृथक प्रान्त बनाया गया और इसी प्रकार उड़ीसा को बिहार से अलग कर एक पृथक प्रान्त बनाया गया। इस प्रकार भारत में इन दो नवगठित प्रान्तों को मिलाकर कुल 11 प्रान्त हो गए।

संघ में ब्रिटिश भारत के प्रान्त तथा भारतीय रजवाड़ों के शासकों को अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार था जबकि ब्रिटिश राज्यों से सदस्य चुन कर भेजे जाने थे।

केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई अर्थात् आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान रखा गया। गवर्नर जनरल को रक्षा, विदेश, संचार और धार्मिक मामलों के शासन का दायित्व दिया गया था। शेष विषयों का दायित्व केन्द्रीय विधान परिषद के चुने हुए सदस्यों में से गठित मन्त्रिमण्डल को दिया जाना था। यह संघीय व्यवस्था इंग्लैण्ड की कन्ज़रवेटिव पार्टी की नीतियों के अनुरूप बनाई गई थी।

केन्द्रीय विधान परिषद के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई। भारतीय शासकों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया और उन्हें अपने राज्य में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य नहीं किया गया।

विदेश विभाग के अन्तर्गत ब्रिटिश जहाज कम्पनियों के हितों की रक्षा का प्रावधान रखा गया। रिज़र्व बैंक, मुद्रा, भारतीय ऋण, रेलवे बोर्ड, ब्रिटिश भारतीय सेना आदि पर केन्द्रीय विधान परिषद का कोई अधिकार नहीं रखा गया। गवर्नर जनरल की सम्मति के बिना कोई वित्तीय बिल केन्द्रीय विधान परिषद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। 80 प्रतिशत बजट पर केन्द्रीय विधान परिषद को कोई अधिकार नहीं मिला। इस एक्ट ने अगली पीढ़ी तक भारतीय सेना, भारतीय वित्त, विदेश सम्बन्ध पर ब्रिटिश नियन्त्रण स्थापित कर दिया।

गवर्नर जनरल को भारत सचिव की निगरानी में अत्यधिक सर्टिफ़ाइंग शक्तियां दी गईं।

मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए जिन्ना की 14 सूत्री मांगों में से अधिकांश को स्वीकार कर लिया गया।

इस एक्ट में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा पृथक निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था को और सीटों के आवंटन की व्यवस्था को पूर्ववत बनाए रखा गया।

एक संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान रखा गया।

संघीय व्यवस्था तभी लागू हो सकती थी जब कि आधे से अधिक रियासतें उसमें शामिल होना स्वीकार करतीं। अधिकांश भारतीय रियासतों ने संघ में शामिल होने से इंकार कर दिया इस कारण संघीय व्यवस्था लागू नहीं हो सकी।

प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था जो कि 1919 के एक्ट के बाद 1922 में लागू की गई थी, और जो पूर्णतया असफल सिद्ध हुई थी, उसे समाप्त कर दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्तता इस एक्ट की प्रमुख विशेषता थी। 1935 के एक्ट में उसे समाप्त कर दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्तता साइमन कमीशन की संस्तुति पर स्थापित की गई थी। इस एक्ट के द्वारा प्रान्तों को स्वतन्त्र वैधानिक इकाइयों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। कुछ विषयों को छोड़कर शेष सभी में, प्रान्तों को, केन्द्र सरकार से नियन्त्रण से मुक्त रखा गया।

11 प्रान्तों में से 6 प्रान्त – बंगाल, बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार और आसाम में द्वि–सदनीय व्यवस्था की गई।

इस एक्ट में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था को तो लागू नहीं किया गया किन्तु मताधिकार की न्यूनतम योग्यताओं को शिथिल किया गया। इसके फलस्वरूप प्रान्तीय विधान परिषदों के लिए मतदाताओं की कुल संख्या जो 1919 के एक्ट के अन्तर्गत मात्र 53 लाख थी, अब वह बढ़कर 3.5 करोड़ हो गई।

प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था को ध्यान में रखकर गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को संवेदनशील विषयों के लिए विशेष अधिकार प्रदान किए गए। गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को न्याय–व्यवस्था, भारतीय रियासतों, अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों तथा ब्रिटिश व्यापारिक एवं औद्योगिक हितों की रक्षार्थ विशेषाधिकार प्रदान किए गए जिनका प्रयोग उसे अपने विवेक के आधार पर करना था परन्तु ऐसा करते समय उसके लिए गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त करना आवश्यक था।

इस एक्ट के आधार पर 1937 में आम चुनाव हुए और उसके बाद 11 प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ।

5. **1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान क्या थे? लिखिये–**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.6.3 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण

इस एक्ट ने पहली बार भारतीयों की पूर्ण स्वराज को प्रान्तीय स्तर पर स्वीकार कर प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की थी जो कि पिछले सभी एक्ट्स की तुलना में बहुत बड़ा और व्यापक सुधार था। इस एक्ट के आधार पर प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ जिन्होंने जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी नीतियों के संचालन का प्रयास किया और ऐसे अनेक सुधार किए जिनकी कल्पना भी ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं की जा सकती थी।

लोकप्रिय सरकारों ने अनेक राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया।

इस एक्ट में मताधिकार की शर्तों को शिथिल कर लगभग 20 प्रतिशत वयस्कों को प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए मताधिकार प्रदान कर दिया गया था।

2.6.4 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के दोष

संघीय द्वैध शासन की व्यवस्था में गवर्नर जनरल को रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया, रेलवे बोर्ड, भारतीय ऋण, ब्रिटिश भारतीय सेना, प्रतिरक्षा, विदेशी मामले आदि पर समस्त निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया गया और 80 प्रतिशत वित्तीय मामलों पर मतदान किया ही नहीं जा सकता था। यह व्यवस्था एक ऐसी गाड़ी थी जिसका इंजिन कमज़ोर परन्तु ब्रेक्स बहुत शक्तिशाली थे। यह व्यवस्था उत्तरदायी शासन का उपहास थी, इसीलिए भारतीय राजनीतिक दलों ने इसे खारिज कर दिया। भारतीय रियासतों ने इसे इसलिए खारिज किया क्योंकि संघ में शामिल होने के बाद उन्हें अपने–अपने राज्यों में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। भारतीय रियासतों के बहुमत द्वारा स्वीकृति के बाद ही इस संघीय व्यवस्था को लागू करने की शर्त भी अंग्रेज़ों की एक चाल थी। भूला भाई देसाई ने संघीय व्यवस्था की आलोचना की, विशेषकर वाणिज्य के क्षेत्र में गवर्नर जनरल के पास अपरिमित शक्तियों की व्यवस्था उन्हें लोकतान्त्रिक प्रणाली के विरुद्ध लग रही थी।

प्रान्तीय स्वायत्तता में भी गवर्नर को अपरिमित शक्तियां प्रदान की गईं। 1939 में जब कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों ने भारत को विश्वयुद्ध में भारतीयों से परामर्श किए बगैर शामिल किए जाने के विरोध में त्यागपत्र दिए तो उसके बाद से द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक गवर्नरों ने उन प्रान्तों में निर्बाध शासन किया और इस प्रकार प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान किए जाने के पीछे भी ब्रिटिश सदाशयता पर सन्देह किया जा सकता है। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस एक्ट में भी भारतीयों की आकांक्षाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए और भारतीयों को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने से

रोकने के लिए आवश्यकता से अधिक सावधानियां बरती गईं। यह एक्ट सुधार कम और सुधार का नाटक अधिक था।

6. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण एवं दोषों पर चर्चा करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) प्रान्तों में द्वैध शासन की कार्य प्रणाली।

(ख) 1935 के एक्ट में संघीय शासन की व्यवस्था के दोष ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) किस वरिष्ठ नेता ने कांग्रेस छोड़कर नए राजनीतिक दल की स्थापना कर 1920 के चुनाव में भाग लिया था?

(ii) क्या भारतीय रियासतों ने संघीय शासन की व्यवस्था को स्वीकार किया था?

2.7 सार संक्षेप

1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभागीय प्रणाली का, अर्थात् कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ किया गया। वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद तथा प्रान्तीय परिषदों का विस्तार किया गया।

1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में चुनाव की व्यवस्था लागू की गई किन्तु इसमें मात्र 3 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हो सका। मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या और उनके अधिकारों में वृद्धि की गई। पृथक प्रतिनिधित्व से हिंदू–मुस्लिम सम्बंधों में तनाव बढ़ा और इसने द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त की भावना को बढ़ावा दिया।

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट

गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। प्रान्तीय विधान सभाओं तथा परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। इस एक्ट में ब्रिटिश भारत में लगभग 53 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया। केन्द्र सरकार में पहली बार द्वि–सदनीय व्यवस्था स्थापित की गई। केन्द्र सरकार में विधान मण्डल के अधिकार बहुत सीमित रखे गए। प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था नितान्त दोषपूर्ण थी। इस एक्ट को कांग्रेस ने खारिज कर दिया और असहयोग आंदोलन में स्वराज्य प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया।

1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में केन्द्र में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत द्वैध शासन स्थापित किया गया और प्रान्तों में प्रान्तीय स्वायत्ता स्थापित की गई। केन्द्रीय विधान परिषद के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई। भारतीय शासकों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया और उन्हें अपने राज्य में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य नहीं किया गया। भारतीय शासकों द्वारा संघीय व्यवस्था अस्वीकार करने के कारण इसे लागू नहीं किया गया।

प्रान्तीय स्वायत्तता इस एक्ट की प्रमुख विशेषता थी। इस एक्ट में मताधिकार की न्यूनतम योग्यताओं को शिथिल किया गया। इस एक्ट के आधार पर 1937 में आम चुनाव हुए। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस एक्ट में भारतीयों की आकांक्षाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

सेफ़्टी वॉल्वः जनता के असन्तोष को विद्रोह के रूप में विकसित होने से पहले ही उसका निदान।

कैबिनेट सिस्टमः मन्त्रिमण्डल प्रणाली।

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्टः स्वशासित स्थानीय निकाय, जैसे जिला परिषद और नगरपालिका।

अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणालीः एक निर्वाचक मण्डल द्वारा प्रतिनिधियों का चुनाव करने की व्यवस्था।

काउंसिल ऑफ़ स्टेटः उच्च सदन।

कन्ज़र्वेटिव पार्टीः अनुदारवादी दल

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ

फिलिप्स, सी0 एच0 (सम्पादक) – *दि इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान 1858 टु 1947, सेलेक्ट डॉक्यूमेन्ट्स*, ऑक्सफ़ोर्ड, 1965

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ़्रीडम*, बम्बई, 1969

काश्यप, सुभाष – *भारत का सांविधानिक विकास और संविधान*, दिल्ली, 1997

बैनर्जी ए0 सी0 (सम्पादक) – *इण्डियन कॉन्सटीट्यूशनल डॉक्यूमेन्ट्स* (भाग,1,2,3,4), कलकत्ता, 1961

2.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 2.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान।

(ख) देखिए 2.3.2 1909 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान।

2.(i) 6 सदस्य।

(ii) 27 निर्वाचित सदस्य।

1. (क) देखिए 2.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष।

(ख) देखिए 2.5.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी।

(ii) नहीं।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के गुण–दोषों की समीक्षा कीजिए।
2. 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के अन्तर्गत सीमित मताधिकार की व्यवस्था का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की प्रान्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत हस्तान्तरित विषयों का वर्णन कीजिए।
4. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत संघीय शासन में भारतीय रियासतों के शासकों के लिए क्या व्यवस्था की गई थी?
5. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता को लागू किया जाना क्या भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की एक महान उपलब्धि माना जा सकता है?

इकाई तीन : भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव

3.3.1 धार्मिक जीवन ब्रिटिश प्रभाव

3.3.2 भारतीय सामाजिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव

3.3.3 भारतीय नवजागरण में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचलन का योगदान

3.3.4 भारतीय जागृति में प्रेस की भूमिका

3.3.5 भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव

3.3.6 भारतीय कला के विविध आयामों पर पाश्चात्य प्रभाव

3.3.7 आम जन–जीवन पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव

3.4 प्रशासनिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

3.4.1 प्रशासनिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

3.4.2 अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के दुखद परिणाम

3.4.3 आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

3.4.4 राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

3.5. सार संक्षेप

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

3.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में यह चर्चा की जा चुकी है कि भारत में ब्रिटिश शासन ने एक नए युग का सूत्रपात किया था और भारत को आधुनिक युग में प्रविष्ट कराया था। प्रथम खण्ड की पहली दो इकाइयों में हम भारतीय पुनर्जागरण अथवा नवजागरण पर पाश्चात्य प्रभाव से अवगत हो चुके हैं। भारत में धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक चेतना के विकास तथा भारत के आधुनिकीकरण का श्रेय एक सीमा तक ब्रिटिश शासन को दिया जा सकता है।

इस इकाई में हम ब्रिटिश शासन के हानिकारक प्रभावों की चर्चा भी करेंगे। भारत के आर्थिक दोहन, विघटनकारी तत्वों, विशेषकर साम्प्रदायिकता की भावना को भड़काने की नीति, शिक्षा प्रसार के प्रति अत्यन्त सीमित दायित्व का निर्वाहन, राजनीतिक दमन, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक असमानता को बढ़ाने की नीति आदि का विश्लेषण भी इस इकाई में किया जाएगा।

3.2 इकाई के उद्देश्य

ब्रिटिश शासन के लगभग 190 साल के काल में भारतीयों के जीवन और उनके दृष्टिकोण पर व्यापक पाश्चात्य प्रभाव पड़ा और आज भी प्रचुर मात्रा में उसके चिह्न शेष हैं। इस इकाई में आपको भारत में ब्रिटिश शासन के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं राजनीतिक प्रभाव के विषय में बताया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- भारत में पुनर्जागरण काल में धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलनों पर पाश्चात्य सुधारवादी विचारधारा के प्रभाव का आकलन करने में।
- भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद, आधुनिक उद्योग के विकास तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना के विकास पर पाश्चात्य आर्थिक चेतना के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने में।
- भारत में राजनीतिक चेतना के विकास तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर पाश्चात्य प्रभाव से परिचित होने में।
- भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पाश्चात्य प्रभाव का मूल्यांकन करने में।

3.3 धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव

3.3.1 धार्मिक जीवन ब्रिटिश प्रभाव

भारत में 19वीं शताब्दी में धार्मिक पुनर्जागरण का श्रेय आमतौर पर ब्रिटिश प्रभाव को दिया जाता है। अंग्रेज़ों के सम्पर्क में आने के बाद भारतीयों को अपनी धार्मिक कुरीतियों, धार्मिक विकृतियों तथा धार्मिक अनाचार के आलोचनात्मक विश्लेषण करने की प्रेरणा मिली।

हर बात को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखने की प्रवृत्ति ने किसी भी धार्मिक परम्परा व अनुष्ठान को आँख मूंदकर स्वीकार करने अथवा उनका पालन करने पर गतिरोधक का काम किया। मध्यकाल में कबीर और गुरु नानक जैसे सुधारक इस प्रकार के अभियान में संलग्न रहे थे किन्तु 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीयों के धार्मिक पतन पर गम्भीर प्रहार ईसाई मिशनरियों ने किए। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों की धार्मिक कुरीतियो, पुरोहितों तथा मौलवियों के धार्मिक एवं सामाजिक प्रभुत्व और धर्म के नाम पर हो रहे अनाचार को उजागर किया। ईसाई मिशनरियों ने भारत में ईसाई धर्म के मानव प्रेम, मानव सेवा, धार्मिक एवं सामाजिक समानता के बल पर लाखों भारतीयों को ईसाई बना लिया। धार्मिक क्षेत्र में भारत पर यह एक महत्वपूर्ण पाश्चात्य प्रभाव था। ब्रिटिश सरकार ने ईसाई मिशनरियों को न केवल अपना धर्म प्रचार करने की खुली छूट दी अपितु उन्हें हर सम्भव सहायता भी प्रदान की और धर्म परिवर्तित कर ईसाई बनने वालों को अनेक सुविधाएं भी प्रदान कीं। बेंटिंग तथा डलहौज़ी के काल में हिन्दुओं के सम्पत्ति के उत्तराधिकार के नियमों में धर्म परिवर्तित कर ईसाई बनने वालों को ध्यान में रखकर परिवर्तन किए गए। 1857 के विद्रोह का एक प्रमुख कारण ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार था किन्तु इस विद्रोह के दमन के बाद भी अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई मिशनरियों को शासक वर्ग का वरद हस्त प्राप्त रहा।

विक्टोरिया मेमोरियल

19 वीं शताब्दी में पाश्चात्य प्रभाव ने ब्रह्म समाज को सबसे पहले धार्मिक परिष्कार के लिए प्रेरित किया। राममोहन राय ने जॉन डिग्बी के सम्पर्क में आकर पाश्चात्य दर्शन साहित्य और धर्म का गहन अध्ययन किया। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज पाश्चात्य बौद्धिकतावाद से प्रभावित धार्मिक आन्दोलन था। इसमें धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, लिंग और शिक्षा या आर्थिक स्थिति का कोई भी बन्धन आस्तिकों के लिए नहीं रखा गया। इसमें ईश्वर के निर्गुण–निराकार रूप की उपासना का प्रावधान था। ईसाई धर्म की भांति प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और मानव सेवा को इसमें ईश्वर भक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप स्वीकार किया गया था। एकेश्वरवाद के प्रचार हेतु राममोहन राय ने अपने अनुयायी विलियम एडम के साथ कलकत्ते में यूनिटेरियन मिशन की स्थापना की । ब्रह्म समाज के नेता केशब चन्द्र सेन की संगत सभा पर ईसाई मिशनरियों की प्राणिमात्र की सेवा के भाव का स्पष्ट प्रभाव था। संगत सभा में जाति के बन्धनों और यज्ञोपवीत धारण करने, जन्मोत्सव, नामकरण, अन्त्येष्टि जैसे संस्कारों के परित्याग पर बल दिया गया। ब्रह्म समाज से प्रेरित प्रार्थना समाज तथा वेद समाज पर भी पाश्चात्य बौद्धिकतावाद का प्रभाव पड़ा था।

अलीगढ़ आन्दोलन के प्रवर्तक सैयद अहमद खान को प्रगति में बाधक परम्पराओं और धर्म के नाम पर पतन की ओर ढकेलने वाली मानसिकता स्वीकार्य नहीं थी। अपने पत्र *तहज़ीब–उल–अख़लाक* में प्रकाशित अपने लेखों में उन्होंने बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखे बिना किसी कार्य को अपना धर्म समझ कर करने की मनोवृत्ति की आलोचना की थी। अहमदिया आन्दोलन के प्रवर्तक मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादिनी भारत में प्रचलित इस्लाम की परम्पराओं तथा मान्यताओं को व्यावहारिकता का जामा पहनाना चाहते थे। 1851 में आंग्ल शिक्षा प्राप्त पारसियों ने रहनुमाई मजदेआसन सभा (धार्मिक सुधार संघ) की स्थापना की। इस सभा पर पाश्चात्य बौद्धिकतावाद का स्पष्ट प्रभाव था और यह धार्मिक परम्पराओं के नाम पर धार्मिक कुरीतियों का खुलकर विरोध करने का साहस रखती थी।

1.धार्मिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव की चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

.

3.3.2 भारतीय सामाजिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव

उपयोगितावादी विचारधारा का जनक जेरेमी बेंथम (1748–1832) को माना जाता है। भारत को उनके अनुयायियों ने उनके सिद्धान्तों को परखने के लिए एक प्रयोगशाला के रूप में प्रयुक्त किया। भारतीयों को एक अर्धसभ्य बर्बर जातियों के समूह के रूप में मानकर उन्होंने 'व्हाइट मैन्स बर्डेन' की विचारधारा के अन्तर्गत उनको सभ्य बनाने का प्रयास किया और उनकी धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों, उनके अंधविश्वासों और उनके शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उनमें धार्मिक–सामाजिक चेतना तथा धर्मनिर्पेक्ष शिक्षा का विकास किया। उपयोगितावादी विचारधारा ने ब्रिटिश भारतीय प्रशासन को भी प्रभावित किया। 'ग्रेटैस्ट प्लेज़र फ़ॉर ग्रेटेस्ट नम्बर' की अवधारणा के अन्तर्गत भारत और भारतीयों के विषय में जानकारी हासिल कर उनका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिकतम कल्याण करने की प्रवृत्ति ने भारतीय इतिहास, धर्म, नीति, न्याय, साहित्य और संस्कृति के पुनरावलोकन और पुनरोत्थान

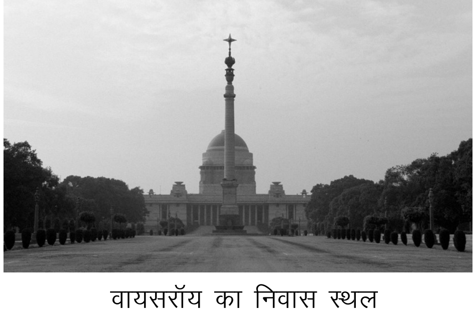

वायसरॉय का निवास स्थल

का मार्ग प्रशस्त किया। फ़ोर्ट विलियम के प्रधान न्यायधीश सर विलियम जोन्स ने 1784 में 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की। बाद में बम्बई और लन्दन में भी 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की गई। *मनुस्मृति, भगवद् गीता,* आदि प्राचीन ग्रंथों का अनुवाद किया गया। उपयोगितावादियों ने 'वेलफ़ेयर स्टेट' अर्थात् लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के अन्तर्गत जन–कल्याण को राज्य का दायित्व माना। भारत में बंगाल के गवर्नर जनरल बनने से पहले बेंटिंग ने बेंथम के अनुयायी जेम्स मिल से भेंट के समय उससे कहा था कि वास्तव में बेंथम ही गवर्नर जनरल के रूप में कार्य करेंगे। लॉर्ड विलियम बेंटिंग के शासनकाल में सोशल लेजिसलेशन की नीति के अन्तर्गत 1829 के रेग्यूलेशन 17 द्वारा सती प्रथा जैसी अमानुषिक सामाजिक कुरीति का उन्मूलन किया गया और नर बलि तथा बालिका वध पर प्रतिबन्ध लगाया गया। लॉर्ड डलहौज़ी के शासन काल में 1856 में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दी गई। 1872 में केशब चन्द्र सेन के प्रयास से 'नेटिव मैरिज एक्ट' पारित हुआ जिसमें अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता दी गई। 1892 में बी0 एम0 माल्बरी के प्रयासों से 'एज ऑफ कन्सेन्ट एक्ट' के अन्तर्गत पति द्वारा शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बालिका वधू की न्यूनतम आयु 12 वर्ष निर्धारित कर दी गई और 1929 में हरविलास शारदा के प्रयास से शारदा एक्ट के अन्तर्गत बाल विवाह को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इस प्रकार सती प्रथा के उन्मूलन के अगले 100 साल तक ब्रिटिश सरकार ने सोशल लेजिसलेशन की नीति अपना कर भारत के समाज सुधार आन्दोलन पर अपनी गहरी छाप छोड़ी। ब्रिटिश शासन में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। पर्दे के चलन में कमी आई और स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ। जात–पांत के बन्धनों में शिथिलता आई और एक नए प्रभावशाली मध्यम वर्ग का उदय हुआ।

2. भारतीय सामाजिक जीवन पर ब्रिटिश प्रभाव की चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

.

3.3.3 भारतीय नवजागरण में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचलन का योगदान

ईसाई मिशनरियों ने अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने बालिकाओं तथा दलित समाज के लिए स्कूलों की स्थापना की। राजा राममोहन राय जैसे सुधारकों ने पाश्चात्य शिक्षा से लाभान्वित होकर ही सामाजिक,

धार्मिक सुधार एवं शिक्षा प्रसार का अभियान चलाया था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार–प्रसार से भारत में सामाजिक, वैचारिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चेतना का अभूतपूर्व विकास हुआ। राजा राममोहन राय ने धर्मनिर्पेक्ष आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा को भारतीयों के उत्थान की आवश्यक सीढ़ी माना। उन्होंने गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणिविज्ञान, प्राकृतिक दर्शन, न्याय आदि विषयों के शिक्षण को आवश्यक माना तथा संस्कृत एवं फ़ारसी शिक्षा पद्धति के द्वारा पण्डित और मौलवी तैयार करने की अनुपयोगी परम्परा का विरोध किया।

दार्शनिक सुकरात तथा बेकन की शिक्षण पद्धति और ह्यूम की तार्किक प्रणाली से प्रभावित, यूरोपियन पुर्जागरण की बौद्धिकता के पोषक, युवा बंगाल आन्दोलन के सूत्रधार, हिन्दू कॉलेज के युवा अध्यापक हेनरी लुई विलियम डेरोज़ियो ने अपने विद्यार्थियों को बंगाल में नवजागरण का प्रसार करने के लिए तैयार किया। उसने परम्पराओं और धार्मिक–सामाजिक संस्कारों को अपनाने से पहले उनको बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखे जाने पर ज़ोर दिया। डेरोज़ियो तथा उसके अनुयायियों, रंजन मुखर्जी, राम गोपाल घोष तथा कृष्णमोहन बनर्जी आदि ने प्राचीन एवं पतनोन्मुख प्रथाओं, कर्म काण्डों, रीति रिवाजों मूर्तिपूजा में विश्वास और पुरोहितवाद में आस्था की भर्त्सना की। उनका तर्कवाद पाश्चात्य विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित था। युवा बंगाल आन्दोलन के अनुयायी राजनीति में बेंथम के अनुयायी थे और राजनीतिक अर्थ–व्यवस्था में वह एडम स्मिथ के अनुयायी थे। डेरोज़ियो ये प्रभावित होकर हिन्दू कॉलेज के छात्रों ने वॉल्तेयर, लॉक, बैकन, ह्यूम, रीड, ब्राउन तथा टॉम पेन से प्रेरणा प्राप्त की थी। *ग्यानेन्वेषण, बैंगाल स्पेक्टेटर, हिन्दू पायोनियर, हेस्पेरस, इक्वायरर* और *दि क्विल* पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दू कॉलेज के छात्रों ने भारत की समकालीन दशा, राजनीति के विज्ञान, सरकार, न्यायशास्त्र, भारत में यूरोपीय उपनिवेशवाद, स्त्री शिक्षा, स्वतन्त्रता और विदेशियों के अधीन भारत जैसे विषयों पर चर्चा की।

1813 के चार्टर एक्ट में उपयोगितावादियों ने अपने प्रभाव का प्रयोग कर भारत में शिक्षा के प्रसार हेतु 1 लाख रुपये वार्षिक की धनराशि का आवंटन निर्धारित कराया। अंग्रेज़ों ने भारत में धर्मनिर्पेक्ष आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा का प्रचलन किया। बेंथम ने बेंटिंग को लिखे पत्र में भारत में उपयोगी शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया था और बेंटिंग ने भी शिक्षा प्रसार को भारत के जागरण का सबसे बड़ा उपाय माना था। लॉर्ड मैकॉले के विचार से पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही भारतीयों में जागृति आ सकती थी। उसका उद्देश्य था कि वह पाश्चात्य शिक्षा प्रदान कर –

भारतीयों का एक ऐसा वर्ग विकसित करे जो कि केवल अपने रक्त और वर्ण में ही भारतीय हो परन्तु अपनी अभिरुचियों, विचारों, अपने नैतिक आदर्शों और अपनी बौद्धिकता में अंग्रेज़ हो।

लॉर्ड डलहौज़ी ने जन–शिक्षा प्रसार की महत्ता को समझा था। उसने भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के विकास की नीति अपनाई थी। चार्ल्स वुड

के 1854 के डिस्पैच को ब्रिटिश भारतीय उच्च एवं माधमिक शिक्षा के इतिहास में मैग्नाकार्टा अथवा मील का पत्थर कहा जाता है।

अंग्रेज़ों ने 1835 में बंगाल में भारत का पहला मेडिकल कॉलेज खोला। 1845 में बम्बई में ग्रान्ट मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई। पश्चिमोत्तर प्रदेश में रुड़की में 1849 में इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना हुई जिसे 1854 में में टॉमसन इंजीनियरिंग कॉलेज का नाम दिया गया। कलकत्ते तथा पूना में भी इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना की गई। 1858 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।

पाश्चात्य शिक्षा जन–सामान्य के लिए नहीं थी। इस अत्यन्त महंगी और दुरूह शिक्षा प्रणाली का प्रसार अत्यन्त सीमित रहा और इसका लाभ मुख्यतः शहरी उच्च एवं मध्य वर्ग ही प्राप्त कर सका। इस पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग में अहंकार की भावना विकसित हुई और उसने अपने बड़ों का सम्मान करने के स्थान पर उनका उपहास उड़ाना प्रारम्भ कर दिया। अकबर इलाहाबादी ने इस प्रवृत्ति पर बहुत सटीक व्यंग्य किया था –

हम ऐसी कुल किताबें, काबिले ज़ब्ती समझते हैं,
जिन्हें पढ़कर के बेटे, बाप को खब्ती समझते हैं।

(हम ऐसी शिक्षा पद्धति पर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हैं जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी अपने से बड़ों का सम्मान करने के स्थान पर उनको पागल समझने लगते हैं।)

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त पहली पीढ़ी का अपने धर्म, सामाजिक परम्पराओं, रीति रिवाजों, वेशभूषा, खान–पान, शिष्टाचार के प्रति अवज्ञा का भाव उत्पन्न हुआ। मन्दिर में जाकर देवी को साष्टांग प्रणाम करने के स्थान पर उन्हें 'गुड मॉर्निंग! मैडम' कहकर सम्बोधित करना और गो–मांस खाना, मदिरा पीना, इन सबको सभ्यता की निशानी मानने की प्रवृत्ति ने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग को अपने ही बड़े–बूढ़ों से अलग कर दिया। अकबर इलाहाबादी ने इन नव सभ्यों पर कटाक्ष करते हुए कहा है –

हुए इस क़दर मोहज़्ज़ब, कभी घर का मुहं न देखा,
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।

(पाश्चात्य सभ्यता में रंगकर वो सभ्य जीवन के इतने आदी हो गए कि उन्होंने अपनी सारी उम्र होटलों में काट दी और सफ़ाई का उन्हें इतना ख़याल था कि मरने के लिए उन्होंने अस्पताल चुना।)

अंग्रेज़ों ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के प्रसार का दायित्व स्वीकार नहीं किया और आमतौर पर इसका भार भारतीयों पर ही छोड़ दिया। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी जानने वाले कम वेतन पर काम करने वाले बाबुओं की भर्ती करना था। अंग्रेज़ों ने जानबूझ कर तकनीकी शिक्षा के प्रसार की उपेक्षा की और आमतौर पर कला और कानून के विषयों को ही पाठ्यक्रम में महत्ता दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में मात्र 15 प्रतिशत साक्षरता थी।

3.3.4 भारतीय जागृति में प्रेस की भूमिका

मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने प्रेस की अद्‌भुत शक्ति के विषय में कहा है –

खैंचो न कमानों को, न तलवार निकालो,
ग़र तोप मुकाबिल हो तो, अखबार निकालो।

1780 में हिकी के *बैंगाल गज़ट* से भारत में आधुनिक पत्रकारिता का प्रारम्भ माना जा सकता है। भारतीय भाषाओं में पत्रों का प्रकाशन उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। पहले प्रगतिशील पत्र के रूप में राममोहन राय के पत्र *सम्बाद कौमुदी* का उल्लेख आवश्यक है। उदार पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा ने राजा राममोहन राय को सरकार की आर्थिक, प्रशासनिक तथा न्याय प्रशासन की नीतियों की आलोचना करने का साहस प्रदान किया। राजा राममोहन राय तथा अन्य जागरूक भारतीयों ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का महत्व अंग्रेज़ों के सम्पर्क में ही जाना। मैटकॉफ़ जैसे उदार प्रशासक ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को भारत में स्थापित किया जिसके फलस्वरूप भारत में प्रेस ने देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया। सामाजिक एवं राजनीतिक जागृति में पत्र–पत्रिकाओं के योगदान की विस्तार से चर्चा, पहले हम कई इकाइयों में कर चुके हैं।

3. भारतीय जनजागरण में प्रेस की क्या भूमिका रही है? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

.

3.3.5 भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय साहित्यकारों पर पाश्चात्य प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। ब्रिटिश शासन से पूर्व साहित्य मुख्यतः काव्य तक सीमित था और सन्त साहित्य के अतिरिक्त आम जनता से इसका बहुत सीमित सम्बन्ध था। अंग्रेज़ी शासन की यह एक बड़ी देन थी कि इसमें साहित्य का सम्बन्ध आम जनता से हो गया और साहित्यकारों ने दरबारी सीमाओं को लांघकर आम जनता के जीवन, उसकी आकांक्षाओं और उसकी समस्याओं को अपनी रचनाओं में महत्व दिया। अब साहित्य सृजन केवल काव्य तक सीमित नहीं रहा। गद्य के विकास के साथ निबन्ध, कहानी, उपन्यास और इतिहास जैसी विधाओं का भी विकास

हुआ। 1800 में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से भारतीय भाषाओं के साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। विलियम कैरी के नेतृत्व में बंगला में आधुनिक लेखन का प्रारम्भ हुआ। रामराम बसु ने प्रतापादित्य, राजीब लोचन मुखोपाध्याय ने कृष्ण चन्द्र राय तथा मृत्युंजय विद्यालंकार ने प्राचीन काल से लेकर वारेन हेस्टिंग्स के काल के ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे। आधुनिक बंगाल काव्य का प्रारम्भ ईश्वर चन्द्र गुप्त द्वारा हुआ जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। माइकिल मधुसूदन दत्त के *मेघदूत वध काव्य* पर यूरोपीय साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बंकिमचन्द्र के ऐतिहासिक उपन्यासों पर वॉल्टर स्कॉट का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। रबीन्द्रनाथ टैगोर पर भी अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी साहित्यकारों ने पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर आम जनता के लिए साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया। असमिया में लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ, उड़िया में फ़कीर मोहन सेनापति, मराठी में हरिनारायण आप्टे, गुजराती में नर्मदा शंकर नर्मद और गोवर्धनराम त्रिपाठी, तमिल में वेदनायकम पिल्लई तथा बी0 आर0 राजाराम अय्यर, तेलगु में वीरेश लिंगम पंतलु और गुरजाड, मलयालम में चन्दु मेनन, उर्दू में रतननाथ सरशार, अल्ताफ़ हुसेन हाली और हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने पाश्चात्य साहित्य, विशेषकर अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित होकर अपनी–अपनी भाषाओं में स्तरीय साहित्य की रचना की। आगे चलकर अंग्रेज़ी में भी भारतीयों ने पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर उच्च स्तरीय साहित्य का सृजन किया। इनमें तोरुदत्त, अरबिन्दो, रबीन्द्रनाथ टैगोर तथा सरोजिनी नायडू ने काव्य में, माइकिल मधुसूदन दत्त, दर्शन में विवेकानन्द तथा अरबिन्दो ने, कथा साहित्य में मुल्कराज आनन्द, आर0 के0 नारायण आदि ने अमूल्य योगदान दिया।

3.3.6 भारतीय कला के विविध आयामों पर पाश्चात्य प्रभाव

भारतीय कला के विविध आयामों पर व्यापक पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। स्थापत्य कला में गोथिक शैली और मुगल–राजपूत स्थापत्य कला शैली का समन्वय किया गया। इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल तथा नई दिल्ली के वाइसराय रेज़ीडेन्स (वर्तमान राष्ट्रपति भवन), सेन्ट्रल लेजिसलेटिव एसेम्बली (संसद भवन), सचिवालय का उल्लेख किया जा सकता है। विक्टोरिया मेमोरियल पर ताजमहल की शैली की स्पष्ट छाप है और जोधपुर के उम्मेद भवन पर विक्टोरिया मेमोरियल का प्रभाव दिखाई देता है। चित्रकला में राजा रवि वर्मा, अबनीन्द्र नाथ ठाकुर और जेमनी राय की कला पर पाश्चात्य चित्रकला का प्रभाव दिखाई देता है। अमृता शेरगिल की चित्रकला तो पूरी तरह से पाश्चात्य चित्रकला की अनुकृति लगती है। संगीत के क्षेत्र में पाश्चात्य संगीत और वाद्ययन्त्रों को भारतीय संगीत में सम्मिलित किया गया। हार्मोनियम जैसा पाश्चात्य वाद्ययन्त्र भारतीय संगीत का भी अभिन्न अंग बन गया। पण्डित उदय शंकर जैसे नर्तकों ने भारतीय नृत्य शैली और पाश्चात्य बैले का अद्भुत समन्वय कर ख्याति प्राप्त की। आभिजात्य वर्ग में पाश्चात्य नृत्य जैसे बालरूम

डांस पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए आम हो गया।

7. **भारतीय साहित्य तथा कला के विविध आयामों पर पाश्चात्य प्रभाव पर चर्चा करें–**

....

....

....

....

....

....

3.3.7 आम जन–जीवन पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव

भारतीयों ने पाश्चात्य वेशभूषा को उत्साह पूर्वक अपना लिया। कोट, पैंट, कमीज़, टाई, स्कर्ट, गाउन, हैट, जूते, सैण्डिल्स, गॉगिल्स आदि भारतीय वेशभूषा का अन्तरंग अंग बन गए। पाश्चात्य प्रभाव के कारण शहरी महिलाओं में पर्दे का चलन बहुत कम हो गया। महिलाओं के प्रसाधनों में क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक, रूज़, सेन्ट्स, सोप आदि को शामिल किया गया। खान–पान में ब्रेड, केक, पेस्ट्री, बिस्किट्स, आइसक्रीम, विदेशी शराब, सिगरेट, सिगार का प्रयोग किया जाने लगा। घरों में पाश्चात्य शैली की मेज़, कुर्सियां, सोफ़े, ड्रेसिंग टेबिल्स आदि रखे जाने लगे। बोलचाल की भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग आम हो गया और अंग्रेज़ी को सभ्य समाज में सर्वोपरि स्थान मिला। भारत में ग्रेगोरियन कैलेण्डर को अपना लिया गया जो कि आज भी प्रचलित है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) युवा बंगाल आन्दोलन की विचारधारा पर पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव।

(ख) भारतीय जीवन पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) मैकॉले की शिक्षा पद्धति कब लागू की गई?

(ii) विक्टोरिया मेमोरियल कहां पर स्थित है?

3.4 प्रशासनिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

3.4.1 प्रशासनिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

अंग्रेज़ों ने भारत को एकसूत्र में बांधा। समस्त साम्राज्य में एक सी प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, डाक–तार सेवा, एक सी शिक्षा प्रणाली, मुद्रा प्रणाली, एक संगठित सेना, रेलवे के रूप में पूरे देश को जोड़ने वाली यातायात व्यवस्था, पूरे देश में सड़कों का जाल, राज भाषा और समस्त राष्ट्र के सम्भ्रान्त वर्ग की सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का उपहार अंग्रेज़ी शासन की देन थी।

भारत के आधुनिकीकरण में ब्रिटिश प्रशासन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेज़ों

ने भारत को मध्यकालीन निरंकुश राजतन्त्र तथा सामन्ती व्यवस्था के स्थान पर एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली दी। प्रारम्भिक असफल प्रयोगों के बाद लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासन काल में शक्ति के विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर जिलाधीश को न्याय प्रशासन के कार्य से मुक्त किया गया। उसके शासनकाल में ब्रिटिश प्रशासन के तीन प्रमुख स्तम्भों– इण्डियन सिविल सर्विस, भारतीय सेना तथा पुलिस का विकास किया गया। इण्डियन सिविल सर्विस को आदर्श मानकर ही स्वतन्त्र भारत में इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस का गठन किया गया। इसी प्रकार स्वतन्त्र भारत में ब्रिटिशकालीन पुलिस व्यवस्था को ज्यों का त्यों अपना लिया गया। कानून की दृष्टि में सभी को समानता प्रदान की जाने वाली अंग्रेज़ी न्याय–व्यवस्था को भी स्वतन्त्र भारत में अपनाया गया। ब्रिटिश शासन में स्थापित सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट्स भी भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पूर्ववत बने रहे।

इण्डियन सिविल सर्विस, पुलिस सेवा तथा न्याय व्यवस्था सभी में लाल फ़ीताशाही और भ्रष्टाचार का बोलबाला रहा और दुर्भाग्य से आज भी हम उस ब्रिटिश विरासत को ढो रहे हैं।

अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना का आधुनिकीकरण किया। सेना को आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों से युक्त किया गया। सैनिक अनुशासन की एक नवीन परम्परा प्रारम्भ की गई। सेना में धर्म तथा जात–पांत के बन्धन समाप्त कर दिए गए। नौ सेना तथा वायु सेना का भी गठन किया। ब्रिटिश शासन की यह एक बहुत बड़ी देन है कि उसने स्वतन्त्र भारत को एक संगठित, अनुशासित, समर्थ एवं अपने कर्तव्यों के प्रति प्रतिबद्ध थल सेना, नौ सेना एवं वायु सेना प्रदान की।

3.4.2 अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के दुखद परिणाम

भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में ब्रिटिश शासन की निर्णायक भूमिका रही है। भारत में शासन करते समय अंग्रेज़ों की संख्या कभी भी 2 लाख 50 हज़ार से अधिक नहीं हुई। ऐसी स्थिति में उन्होंने फूट डाल कर शासन करने की नीति अपनाई। उन्होंने भाषा, धर्म, राजनीतिक अधिकार और आर्थिक क्षेत्र में हिन्दू–मुस्लिम विवादों को बढ़ावा दिया। सर सैयद अहमद खान को अत्यधिक महत्व देने की शुरूआत से लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों का बांटने के लिए बंगाल का विभाजन करने, 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व देने, 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में मोहम्मद अली जिन्ना की 14 सूत्री मांगों में से लगभग सभी को मान लेने, 1945 में मुस्लिम लीग के विरोध पर शिमला सम्मेलन को भंग करने, 16 अगस्त, 1946 को पाकिस्तान की मांग को लेकर मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के फलस्वरूप उभरे साम्प्रदायिक दंगों के समय उन्हें रोकने का कोई प्रयास न करने और अन्ततः पाकिस्तान की स्थापना की मुसलमानों की मांग को स्वीकृत करने के पीछे अंग्रेज़ों की साम्प्रदायिकता की नीति का हाथ था। अंग्रेज़ों ने साम्प्रदायिकता की भावना को केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच नहीं भड़काया बल्कि

हिन्दू और सिख समुदायों और सवर्ण तथा दलित हिन्दुओं के बीच भी भड़काया। भारत की राजनीतिक एकता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द को नष्ट करने के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई हर नीति में विघटनकारी तत्वों को बढ़ावा दिया गया। सेना की नई व्यवस्था में सैनिकों को जाति, क्षेत्र आदि के नाम पर बांट दिया गया। क़ौमी एकता, धार्मिक एवं जातीय सद्भाव को रोकने का हर सम्भव प्रयास किया गया। उत्तर भारतीयों तथा दक्षिण भारतीयों में फूट डालने के लिए आर्य और अनार्य के मसले पर बहस छेड़ दी गई। जनगणना में देशवासियों के धर्म, जाति, और भाषा का विवरण भी जोड़ा गया। भाषा विवादों को बढ़ावा दिया गया। धर्म और जाति पर आधारित स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए। इस नीति ने शहरी और ग्रामीण वर्ग, अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त वर्ग, उद्योगपति और श्रमिक वर्ग, किसान और ज़मींदार के बीच में दीवार खड़ी करने में अपना योगदान दिया। इस विघटनकारी नीति के कुपरिणाम केवल भारत के विभाजन तक ही नहीं रहे, आज भी हम इस विषबेल के ज़हरीले फल खाने के लिए विवश हो रहे हैं।

8. अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के क्या परिणाम निकले–

....

....

....

....

....

3.4.3 आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

अंग्रेज़ी शासन से पूर्व भारत पूरे विश्व का सबसे धनी देश था। व्यापार सन्तुलन सदैव उसके पक्ष में रहता था परन्तु अंग्रेज़ों ने समृद्ध भारत को दरिद्र बना दिया। 1700 में भारत में विश्व के कुल उत्पादन का 23.1 प्रतिशत उत्पादन होता था जो 1820 में घटकर 15.7 प्रतिशत और 1890 में घटकर 11 प्रतिशत रह गया। भारत की स्वतन्त्रता के समय यह 4 प्रतिशत से भी कम हो गया था। पूरे ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अधिकतर भारतीय भुखमरी की कगार पर रहते थे। ब्रिटिश आर्थिक शोषण, देशी उद्योगों का पतन, उनकी जगह लेने में आधुनिक उद्योगों की विफलता, करों का भारी बोझ और भारत का धन ब्रिटेन को निरन्तर भेजा जाना, कृषि–विकास की उपेक्षा आदि ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था को बिलकुल पिछड़ा हुआ बना दिया था। ब्रिटिश भारतीय सरकार ने भारत के औद्योगिक विकास के लिए कोई कदम नहीं उठाया। भारतीयों को तकनीकी प्रशिक्षण और नवजात भारतीय उद्योग को संरक्षण देने के स्थान पर सरकार ने मुक्त व्यापार की इकतरफ़ा नीति अपना कर भारतीय उद्योग की प्रगति को जानबूझ कर धीमा किया ताकि ब्रिटिश उद्योग को भारतीय बाज़ार पर प्रभुत्व स्थापित करने में और इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए भारत से कच्चा माल प्राप्त करने में

कोई कठिनाई न हो। 1947 में लगभग 33 करोड़ की आबादी में कुल 22 लाख लोग ही आधुनिक उद्योग में लगे थे। उद्योग धंधे चौपट हो जाने से कृषि पर अधिक बोझ पड़ा ग्रामीण बेरोज़गारी बढ़ी और ग्रामीणों की औसत आय में कमी होने से वह कर्ज़ लेकर सूदखोरों के शिकंजे में फंसते चले गए।

ब्रिटिश शासकों की अपव्ययता (वाइसराय का वेतन 25000 पॉन्ड वार्षिक, गवर्नरों का 10000 पॉन्ड वार्षिक था जबकि एक दरोगा का 300 रुपये वार्षिक और एक अर्दली का वेतन 36 रुपये वार्षिक था।), धन के असमान वितरण, भारतीय शासकों, ज़मींदारों, पूंजीपतियों, महाजनों और व्यापारियों के शोषण ने जनता को दरिद्र बनाने में योगदान दिया था। दादा भाई नौरोजी की पुस्तक *पॉवर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया* में भारत के आर्थिक दोहन के कुपरिणामों का उद्‌घाटन किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में लगभग बीस अकाल पड़े । ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी के अनुसार 1854 से 1901 तक अकालों में मरने वालों की संख्या 2 करोड़ 88 लाख थी। ब्रिटिश शासन काल में कुल 24 अकाल पड़े थे जिनमें अधिकांश मानव निर्मित थे। एक तथाकथित सभ्य सरकार ने अकाल के समय में अनाज का निर्यात किया और राजकीय उत्सवों के भव्य आयोजन किए। डब्लू. डब्लू. हंटर के अनुसार लगभग 4 करोड़ भारतीयों को भरपेट भोजन नहीं मिलता था। बेरोज़गारी, बहुत कम वेतन, प्रतिकूल कार्य–परिस्थितियां, कुपोषण, अशिक्षा, महामारी, गंदगी, कुरीतियां यह सब गरीबी के कारण ही फल–फूल रहे थे। खुद को सभ्य कहने वाले अंग्रेज़ों ने भारत की समृद्धि निचोड़ कर उसके निवासियों को पशुवत जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया था। यह ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की ही देन थी कि भारत दुनिया के सबसे पिछड़े और गरीब देशों में गिना जाने लगा था।

9. आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव पर चर्चा कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

....

.

3.4.4 राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव

अंग्रेज़ों ने भारत में अराजकता, अशान्ति और अनाचार समाप्त कर एक सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने का दावा किया था। उन्होंने सामाजिक न्याय, सबको उन्नति के समान अवसर,

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, नागरिक अधिकार, धर्मनिर्पेक्षता, लोक–कल्याणकारी शासन की अवधारणा और लोकतान्त्रिक प्रणाली से भारतीयों का परिचय कराया। 1858 के महारानी विक्टोरिया ने अपने घोषणा पत्र में ब्रिटिश प्रजा और भारतीय प्रजा, अपनी दोनों ही सन्तानों में भेदभाव न करने का आश्वासन दिया था। अब अंग्रेज़ स्वयं राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में भारतीयों की भागीदारी के इच्छुक थे। प्रबुद्ध भारतीय राजा राममोहन राय और गोपालहरि देशमुख लोकहितवादी के काल से ही राजनीतिक सुधारों की मांग कर रहे थे। 1861 इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी प्रारम्भ हुई और लॉर्ड रिपन के शासनकाल में 1882 के लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट एक्ट से जिला परिषद तथा नगरपालिका के स्तर पर भारतीयों स्वशासन प्रदान कर दिया गया। इस सुधार से लगा कि जल्द ही भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी जाएगी परन्तु वास्तविकता में यह उत्तरदायी सरकार के नाम पर एक झुनझुना मात्र था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में स्वयं सरकार ने अपना सहयोग दिया था किन्तु शीघ्र ही उसका कांग्रेस के प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार होने लगा। ब्रिटिश शासन की यह विडम्बना थी कि उसने जिन उदार एवं प्रगतिशील विचारों से भारतीयों को परिचित कराया था, उन्हीं पर आधारित भारतीयों की राजनीतिक एवं संवैधानिक मांगों को कुचलने में उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में मित्र राज्यों ने यह दावा किया था कि वो लोकतन्त्र मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग ले रहे हैं और इसी भावना से 1917 में मॉन्टेग्यू की घोषणा की गई थी जिसमें भारतीयों की स्वशासन की मांग को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया था किन्तु युद्ध समाप्त होते ही युद्ध में निष्ठावान सहयोगी रहे भारत को उपहार में रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड दिए गए। अंग्रेज़ी शासन का राजनीतिक प्रभाव राजनीतिक दमन तक सीमित रहा। रंगभेद, जातिभेद, आर्थिक दोहन, साम्प्रदायिकता की भावना को भड़काना, प्रेस पर प्रतिबन्ध, अपने ही बनाए हुए कानून को तोड़ना (खुदीराम बोस ने 1908 में जज किंग्सफ़ोर्ड की जगह अनजाने में केनेडी परिवार की एक महिला और एक बच्ची की हत्या कर दी थी, तब वह नाबालिग था और ब्रिटिश कानून में नाबालिग को मृत्यु दण्ड दिए जाने का प्रावधान नहीं था परन्तु उसे इस घटना के कुछ ही महीनों बाद फांसी पर चढ़ा दिया गया।) और सुधारों के प्रस्तावों को ऐसे प्रस्तुत करना कि उन पर अमल हो ही न सके, यही ब्रिटिश शासन की राजनीतिक क्षेत्र में भारत को देन थी।

अंग्रेज़ों को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने भारत को कूपमण्डूकता से निकाल कर शेष विश्व से परिचित कराया उसे मध्यकालीन पिछड़ेपन से आधुनिक प्रगतिशील युग में प्रविष्ट कराया। उसकी धार्मिक, सामाजिक कुरीतियों को दूर किया और आधुनिक शिक्षा का प्रचलन किया। परन्तु इन कामों का जो मूल्य अंग्रेज़ों ने भारत से वसूला वह विश्व इतिहास में अपना कोई सानी नहीं रखता।

10. राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश शासन का क्या प्रभाव पड़ा? लिखिये–

....

....

....

....

....

....

....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अंग्रेज़ों की हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य बढ़ाने की नीति।

(ख) भारतीय उद्योग की अवनति के लिए ब्रिटिश सरकार का दायित्व।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) इण्डियन सिविल सर्विस का गठन किस गवर्नर जनरल के काल में हुआ?

(ii) भारत के वाइसराय का वार्षिक वेतन कितना निर्धारित किया गया था?

3.5 सार संक्षेप

अंग्रेज़ों के सम्पर्क में आने के बाद भारतीयों को अपनी धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों, तथा विकृतियों के आलोचनात्मक विश्लेषण करने की प्रेरणा मिली। बेंथम के अनुयायी उपयोगितावादियों ने भारत की धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों, शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सोशल लेजिसलेशन की नीति अपनाई तथा धर्मनिर्पेक्ष अंग्रेज़ी शिक्षा का विकास किया। ब्रिटिश शासन में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। जात–पांत के बन्धनों में शिथिलता आई और एक नए प्रभावशाली मध्यम वर्ग का उदय हुआ।

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त पहली पीढ़ी का अपने धर्म, सामाजिक परम्पराओं, रीति रिवाजों, वेशभूषा, खान–पान, शिष्टाचार के प्रति अवज्ञा का भाव उत्पन्न हुआ। अंग्रेज़ों ने जानबूझ कर तकनीकी शिक्षा के प्रसार की उपेक्षा की।

भारत में प्रेस ने देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय साहित्यकारों पर पाश्चात्य प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। भारतीय कला के विविध आयामों पर व्यापक पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। भारतीयों ने पाश्चात्य वेशभूषा, खान–पान, प्रसाधन आदि को अपना लिया।

अंग्रेज़ों ने भारत को एकसूत्र में बांधा। समस्त साम्राज्य में एक सी प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, डाक–तार सेवा, एक सी शिक्षा प्रणाली, मुद्रा प्रणाली, एक संगठित सेना, रेलवे के रूप में पूरे देश को जोड़ने वाली यातायात व्यवस्था, पूरे देश में सड़कों का जाल, राज

भाषा और समस्त राष्ट्र के सम्भ्रान्त वर्ग की सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का उपहार अंग्रेज़ी शासन की देन थी। अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना का आधुनिकीकरण किया।

भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में ब्रिटिश शासन की निर्णायक भूमिका रही है। अंग्रेज़ों ने समृद्ध भारत को दरिद्र बना दिया। अंग्रेज़ी शासन का राजनीतिक प्रभाव राजनीतिक दमन तक सीमित रहा। किन्तु अंग्रेज़ों ने भारतीयों को लोकतान्त्रिक प्रणाली से परिचित भी कराया।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रेटैस्ट प्लेज़र फ़ॉर ग्रेटेस्ट नम्बरः अधिकतम व्यक्तियों को ज्यादा से ज्यादा सुख (बहुजन हिताय बहुजन सुखाय)।

क़ाबिले ज़ब्तीः ज़ब्त करने योग्य।

खब्तीः पागल

मोहज़्ज़बः सभ्य।

मुक़ाबिलः सामने।

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ

दिनकर, रामधारी सिंह – *संस्कृति के चार अध्याय*, इलाहाबाद, 1984
आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, कलकत्ता, 1959
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969
देसाई, नीरा – *वोमैन इन मॉडर्न इण्डिया*, बम्बई, 1957
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा*, दो भागों मे, बम्बई, 1965

3.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 3.3.3 भारतीय नवजागरण में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचलन का योगदान।
(ख) देखिए 3.3.7 आम जन–जीवन पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव।

2.(i) 1835 में। (ii) कलकत्ता में।

1. (क) देखिए 3.4.2 अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के दुखद परिणाम।
(ख) देखिए 3.4.3 आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव।

2. (i) लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासनकाल में। (ii) 25000 पॉन्ड वार्षिक।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में समाज सुधार आन्दोलन में ब्रिटिश भारतीय सरकार की क्या भूमिका थी?
2. पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल करने वाले भारतीयों पर परम्परावादियों ने किस प्रकार प्रहार किए?
3. भारत के आधुनिकीकरण में ब्रिटिश भारतीय शासन की भूमिका का आकलन कीजिए।
4. ब्रिटिश भारतीय शासन द्वारा भारत को दी गई प्रशासनिक विरासत की महत्ता का आकलन कीजिए।
5. अंग्रेज़ों ने भारत की परम्परागत एकता पर किस प्रकार आघात किया?